

समकालीन कथा साहित्य और आदिवासी महिला की अस्मिता

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

पीएच.- डी. (हिन्दी) उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

कला संकाय



शोध-निर्देशिका

डॉ. (श्रीमती) मनीषा शर्मा
व्याख्याता (हिन्दी विभाग)
जा.दे.ब.रा. कन्या कला,
महाविद्यालय, कोटा (राज.)

शोधार्थी

यास्मीन अख्तर सिद्दीकी

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

2016

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि पीएच.-डी. की उपाधि हेतु प्रस्तुत यास्मीन अख्तर सिद्दीकी द्वारा लिखित शोध-प्रबंध “समकालीन कथा साहित्य और आदिवासी महिला की अस्मिता” मेरे निर्देशन में लिखा गया है। यह शोध मैंने पूरा पढ़ लिया है और मैं इसे पीएच.-डी. की उपाधि के लिए प्रस्तुत करने योग्य समझती हूँ। यास्मीन अख्तर सिद्दीकी का यह शोध कार्य पूर्णतः मौलिक है।

मैं यह प्रमाणित करती हूँ कि कुमारी यास्मीन अख्तर सिद्दीकी ने अब तक कम से कम 200 दिन मेरे मुख्यावास पर रहकर मेरे निर्देशन में कार्य किया है।

हस्ताक्षर

शोध निर्देशिका

वर्तमान पता

डॉ. मनीषा शर्मा

554, छावनी पोस्ट ऑफिस बिल्डिंग

कोटा-324007 (राज.)

डॉ. (श्रीमती) मनीषा शर्मा

व्याख्याता - हिन्दी विभाग

जा. दे. ब.रा. कन्या कला,

महाविद्यालय, कोटा (राज.)

शपथ-पत्र

मैं प्रमाणित करती हूँ कि कोटा विश्वविद्यालय, कोटा के पीएच.-डी. (हिन्दी) में “समकालीन कथा साहित्य और आदिवासी महिला की अस्मिता” विषय पर लिखित शोध-प्रबन्ध मेरे द्वारा किया गया पूर्णतः मौलिक कार्य है। इस समग्र विषय अथवा किसी भी अंश पर कोई भी उपाधि प्रदान नहीं की गयी है।

शोधार्थी

यास्मीन अख्तर सिद्दीकी

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

स्थान : कोटा

दिनांक :

भूमिका

भारतीय संस्कृति एवं इतिहास में आदिवासियों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। आदिवासी समाज विगत अनेक शताब्दियों से तीव्र संक्रमण के दौर से गुजर रहा है। वर्तमान में कोई भी आदिवासी समुदाय गैर-आदिवासियों के सम्पर्क से अछूता नहीं रहा है। यहाँ तक कि बीहड़ एवं अगम्य प्रदेशों में रहने वाले आदिवासी भी बाह्य सम्पर्क के परिणामस्वरूप न्यूनाधिक मात्रा में अवश्य प्रभावित रहा है। सभ्य समाज का सबसे अधिक प्रभाव आदिवासी महिला पर हुआ। समाज में आदिवासी की भूमिका ने साहित्यकार को किस रूप में प्रभावित किया? आदिवासी महिलाओं के विषय में रचनाकारों का सामान्य दृष्टिकोण क्या रहा? तथा अपनी रचनाओं में उन्होंने इनका चित्रण किस रूप में किया है? आदिवासियों महिला की दशा में परिवर्तन कैसे हो? उनकी शिक्षा कैसी हो? इनकी योजना इनकी आर्थिक नीति क्या हो? राजनैतिक हिस्सेदारी में वे क्या चाहती है? इन्हीं प्रश्नों के उत्तर ढूँढने की लालसा ने मुझे इस विषय की ओर आकृष्ट किया।

आदिवासी कथा साहित्य में समकालीन युग में आदिवासी महिलाओं का चित्रण यथार्थ रूप में किया गया है। इनकी पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक स्थिति का चित्रण किया गया है। वर्तमान समय में इनकी जल, जंगल, जमीन से जुड़े मुद्दों का मूल्यांकन किया जा रहा है। प्रस्तुत शोध में मैंने आदिवासी महिला के जीवन संघर्ष को केन्द्रित करते हुए उसकी अस्मिता के प्रश्न पर अध्ययन के पश्चात अपने विचार प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

प्रस्तुत शोध में निम्न अध्याय है- प्रथम अध्याय में इस अध्याय में आदिवासी की परिभाषा, जनसंख्या और विस्तार, आदिवासी समाज का परिचय, निवास स्थान, खानपान, वेशभूषा, भाषा, पर्व व त्योहार, परम्पराएँ-जन्म, विवाह, मृत्यु, आधुनिक समाज और आदिवासी समाज में सांस्कृतिक परिवर्तन, उनकी समस्याओं का संक्षेप में उल्लेख किया गया है। द्वितीय अध्याय में रमणिका गुप्ता, मैत्रेयी पुष्पा, महाश्वेता

देवी, वीणा सिन्हा, संजीव, पुन्नी सिंह, मधु कांकरिया, राकेश कुमार सिंह, एम. वीरप्पा मोयिलि, संजीव बख्शी आदि लेखकों के उपन्यासों के बारे में संक्षिप्त प्रकाश डाला गया है। तृतीय अध्याय में आदिवासी महिला का परिवार में योगदान तथा उसके विविध संबंधों का चित्रण विस्तार से किया गया है। आदिवासी लोक साहित्य और नारी के लोकगीत, लोककथाएँ, लोकपर्व और धार्मिक विश्वास में नारी की स्थिति का चित्रण किया गया है। चतुर्थ अध्याय में आदिवासी नारी पर आधुनिकता का प्रभाव, शिक्षा का प्रभाव, आदिवासी कल्याण परिषद जैसी स्वयंसेवी संस्थाओं का प्रभाव, सरकारी प्रयास का इनके जीवन पर क्या प्रभाव हो रहा है पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। पंचम अध्याय में आदिवासी नारी के पारिवारिक क्षेत्र में, सामाजिक क्षेत्र में, राजनैतिक क्षेत्र में, आर्थिक क्षेत्र में तथा कलाओं के क्षेत्र में संघर्ष करते हुए उनके क्षेत्र को निर्धारित किया है। उपसंहार में निष्कर्ष एवं उपलब्धियों का वर्णन किया गया है। शोध करते समय का क्या लाभ हुआ का अध्ययन किया गया है। शोधावधि में आदिवासी लेखकों के कथा साहित्य में आदिवासी महिला के चित्रण का तो विस्तृत अध्ययन, अन्वेषण किया है, साथ ही समकालीन कथा साहित्य के अध्ययन से ज्ञान वृद्धि अवश्य हुई। शोध की सामग्री को एकत्रित करने में यथासम्भव प्रयास किये गये, कभी-कभी तो शोध सामग्री में अनेक परेशानियों का सामना करना पड़ा। अन्ततः प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से अनेक ग्रंथों के प्रणयन से मैंने अपने शोध कार्य को अन्तिम रूप देने का प्रयास किया।

शोध को पूर्ण करने में मुझे अनेक महानुभावों का सहयोग प्राप्त हुआ है, मैं इनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना अपना कर्तव्य समझती हूँ, किन्तु धन्यवाद मात्र से ही उन्नयन नहीं हो सकती। श्रद्धेय शोध निर्देशिका डॉ. मनीषा शर्मा ने विषय चयन से लेकर शोध पूर्ण होने तक मेरी सभी कठिनाईयों को बड़े प्रेम से दूर किया। इनके सानिध्य में यह कठिन कार्य भी सरल बन गया। इनकी वजह से आज मेरा शोध पूरा हो पाया है। इनमें सहृदयता, प्रेम, सहयोग, दुलार अप्रतिम है, मैं हृदय के अन्तर्मन से इनकी आभारी हूँ।

“शिक्षक है शिक्षा का सागर

शिक्षक बाँटे ज्ञान बराबर

शिक्षक मन्दिर जैसी पूजा

माता-पिता का नाम है दूजा

प्यासे को जैसे मिलता पानी

शिक्षक है वो जिन्दगानी।”

मैं लेखिका डॉ. रमणिका गुप्ता का आभार प्रकट करती हूँ जिन्होंने अपना साक्षात्कार देकर मेरा मार्गदर्शन किया है। डॉ. ए.के. कुरेशी, कमलेश दीक्षित, डॉ. नमिता गोस्वामी आदि ने नैतिक रूप से सहयोग प्रदान किया, मैं उनका भी आभार प्रकट करती हूँ। मेरा प्रारम्भ से ही सपना था की मैं अपने नाम के आगे डॉ. लगाऊँ और आज मेरा सपना साकार हो गया है। इस सबका श्रेय मेरे आदरणीय मम्मी-पापा को जाता है। जिन्होंने मेरे सपनों को साकार करने में पूरा सहयोग दिया है। मैं इनका हृदय से आभार प्रकट करती हूँ। मेरे मित्रों ने भी समय-समय पर मेरा आत्मबल बढ़ाकर मुझे सहयोग प्रदान किया है। मेरे मित्रों में मीनाक्षी शर्मा, प्रिया यादव, अचलेश मीणा, गणेश जांगिड़, रिकेश मीणा ने मुझे सहयोग प्रदान किया। इन सभी का मैं आभार व्यक्त करती हूँ। मैं हिन्दी के उन सभी लेखकों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ, जिनकी कृतियाँ मेरे शोध प्रबन्ध सृजन का आधार बनी है और उन सभी समीक्षकों-आलोचकों को, जिनके ग्रन्थों से सहायता ली गयी है, के प्रति आभार व्यक्त करते हुए आशीर्वाद की कामना करती हूँ। अन्त में मैं कुशल, अत्रुटिपूर्ण एवं तत्परता से टंकण करने के लिए शबनम खान को धन्यवाद देना चाहूँगी जिन्होंने इस शोध ग्रन्थ को साकार रूप दिया वह प्रशंसनीय है। वर्तनी संबंधी अशुद्धियों को शुद्ध करने का मैंने यथासम्भव प्रयास किया है, फिर भी टंकण संबंधी कोई त्रुटियाँ रह गयी हो, तो मैं क्षमा प्रार्थी हूँ।

मैं हिन्दी-विभाग के समस्त गुरुजनों की भी ऋणी हूँ, जिन्होंने समय-समय पर अपना अमूल्य सहयोग प्रदान किया।

शोधार्थी

यारमीन अख्तर सिद्दीकी

अनुक्रमणिका

प्रस्तावना	पृ.सं.
प्रथम अध्याय : आदिवासी विमर्श	1-59
1. भूमिका	
2. आदिवासी की परिभाषा	
3. भारत में आदिवासी जनसंख्या और विस्तार	
4. आदिवासी समाज एक परिचय :-	
(i) निवास स्थान	
(क) मध्यप्रदेश	
(ख) छत्तीसगढ़	
(ग) नागालैण्ड	
(घ) अरुणाचल प्रदेश	
(च) राजस्थान	
(छ) मेघालय	
(झ) गुजरात	
(ज) बिहार	
(ii) खानपान	
(iii) वेशभूषा	
(iv) भाषा	
(v) त्योहार	
(vi) परम्पराएँ	
5. आदिवासी समाजों की समस्याएँ	
6. आधुनिक समाज और आदिवासी समाज में सांस्कृतिक परिवर्तन	
7. सारांश	
द्वितीय अध्याय : हिन्दी का आदिवासी कथा साहित्य	60-117
1. भूमिका	
2. एक सामान्य परिचय	
(अ) उपन्यास	

- (i) डॉ. रमणिका गुप्ता— सीता मौसी
 - (ii) मैत्रेयी पुष्पा— झूलानट
 - (iii) मैत्रेयी पुष्पा— अल्मा कबूतरी
 - (iv) महाश्वेता देवी— जंगल के दावेदार
 - (v) महाश्वेता देवी— चोट्टि मुण्डा और उसका तीर
 - (vi) वीणा सिन्हा— सपनों से बाहर
 - (vii) संजीव— जंगल जहाँ शुरु होता है
 - (viii) पुन्नी सिंह— सहराना
 - (ix) मधु कांकरिया— खुले गगन के लाल सितारे
 - (x) राकेश कुमार सिंह— पठार पर कोहरा
 - (xi) एम. वीरप्पा मोयिलि— कोट्टा
 - (xii) राकेश कुमार सिंह — जो इतिहास में नहीं है
 - (xiii) संजीव बख्शी— भूलन कांदा
 - (ब) कहानी संग्रह
 - (i) रमणिका गुप्ता— बहू जुठाई
 - (ii) महाश्वेता देवी— इतवा मुंडा ने लड़ाई जीती
3. सारांश

तृतीय अध्याय : आदिवासी कथा साहित्य में चित्रित नारी

118—175

1. भूमिका
2. नर—नारी सम्बन्ध, विविध रूप
3. आदिवासी लोकसाहित्य और नारी
 - (i) लोकगीत
 - (ii) लोककथाएँ
 - (iii) लोकपर्व
 - (iv) धार्मिक विश्वास
4. सारांश

चतुर्थ अध्याय : आदिवासी नारी के बदलते आयाम

176—201

1. भूमिका
2. आधुनिकता का प्रभाव
3. शिक्षा का प्रभाव
4. आदिवासी कल्याण परिषद जैसी स्वयंसेवी संस्थाओं का प्रभाव

5. सरकारी प्रयास
- (i) रोजगार का प्रभाव
- (ii) भविष्य की दिशाएँ
6. सारांश

पंचम अध्याय : आदिवासी नारी संघर्ष की विविध दिशाएँ

202—252

1. भूमिका
2. पारिवारिक क्षेत्र में
3. सामाजिक क्षेत्र में
4. राजनैतिक क्षेत्र में
5. आर्थिक क्षेत्र में
6. कलाओं के क्षेत्र में
7. सारांश

उपसंहार

253—259

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

260—264

परिशिष्ट

265—282

प्रथम अध्याय
आदिवासी विमर्श

1. भूमिका
2. आदिवासी की परिभाषा
3. भारत में आदिवासी जनसंख्या और विस्तार
4. आदिवासी समाज एक परिचय :—
 - (i) निवास स्थान
 - (क) मध्यप्रदेश
 - (ख) छत्तीसगढ़
 - (ग) नागालैण्ड
 - (घ) अरुणाचल प्रदेश
 - (च) राजस्थान
 - (छ) मेघालय
 - (झ) गुजरात
 - (ज) बिहार
 - (ii) खानपान
 - (iii) वेशभूषा
 - (iv) भाषा
 - (v) त्योहार
 - (vi) परम्पराएँ
5. आदिवासी समाजों की समस्याएँ
6. आधुनिक समाज और आदिवासी समाज में सांस्कृतिक परिवर्तन
7. सारांश

प्रथम अध्याय

आदिवासी विमर्श

भूमिका

भारत सांस्कृतिक विविधताओं का देश है। यहाँ पर विभिन्न जातियाँ निवास करती हैं। जिनमें आदिवासियों का महत्वपूर्ण स्थान है। आदिवासी हमारी प्राचीन संस्कृति के परिचायक हैं, जो समाज से अलग रहने के कारण पिछड़ गये हैं। आज आदिवासी समाज संकट के कठिन दौर से गुजर रहा है। जल, जंगल और जमीन की समस्या, लोक संस्कृति की समस्या, शिक्षा, स्वास्थ्य और स्त्रियों से जुड़ी समस्याएँ दिनो-दिन गंभीर होती जा रही हैं। शोध के इस अध्याय में आदिवासियों के निवास स्थान, संस्कृति, उनकी समस्याओं का अध्ययन किया गया है।

आदिवासी शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है, आदि और वासी। आदि का अर्थ 'मूल' और 'वासी' का अर्थ 'निवासी' है। अतः आदिवासी से तात्पर्य धरती के मूल निवासी से हैं, जो घने जंगलों, ऊँचे पर्वतों और दुर्गम घाटियों में निवास करते हैं।

आदिवासी उन्हें कहते हैं जो सभ्य जगत से दूर पर्वतों और जंगलों में दुर्गम स्थानों पर निवास करते हैं, समान जनजातीय बोली का प्रयोग करते हैं तथा अधिकांशतया माँस-भक्षी तथा अर्द्ध-नग्न अवस्था में रहते हैं। आदिवासी का शाब्दिक अर्थ है आदिकाल से देश में रहने वाली जाति।

भारत में आदिवासियों को अनेक नामों से पुकारा जाता है ऐबोरिजिनल, इंडिजिनस, देशज, मूल निवासी, जनजाति, वनवासी, जंगली, गिरिजन, बर्बर आदि।

आदिवासी की परिभाषा

आदिवासी की विभिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ दी हैं जो निम्न है-

आदिवासी लेखक माया बोरसे के अनुसार- “आदिवासी समाज ऐसा समाज है जिसके नाम में ही उसकी पहचान छिपी हुई है। आदिवासी शब्द के लिए ‘मूलनिवासी’ शब्द का भी प्रयोग किया जाता है अर्थात् आदिवासी समाज इस भूमि का मूल निवासी है और वही इस भूमि का उत्तराधिकारी भी है।”¹ इन्होंने आदिवासियों को भारत का मूल निवासी माना है।

इम्पीरियल गजेटियर के अनुसार- “एक आदिम जाति परिवारों का एक समूह है, जिसका एक सामान्य नाम होता है, जिसके सदस्य एक सामान्य भाषा बोलते हैं तथा एक सामान्य क्षेत्र में या तो वास्तव में रहते हैं या अपने को उसी क्षेत्र से सम्बन्धित मानते हैं तथा ये समूह अंतर्विवाही होते हैं।”² इनके अनुसार एक जैसी पहचान रखने वाले आदिवासी कहलाते हैं।

क्रोबर के अनुसार- “आदिम जनजातियाँ ऐसे लोगों का एक समूह होता है, जिनकी अपनी एक सामान्य संस्कृति होती है।”³

गिलिन और गिलिन ने अपनी रचना ‘कल्चरल एंथ्रोपोलॉजी’ में जनजाति की परिभाषा देते हुए लिखा है- “स्थानीय जनजातीय समूहों को ऐसा समवाय जनजाति कहा जाता है जो एक सामान्य क्षेत्र में निवास करता है एक सामान्य भाषा का प्रयोग करता है, तथा जिसकी सामान्य संस्कृति है।”⁴

क्रोबर और गिलिन ने आदिवासियों की सामान्य संस्कृति को महत्त्व दिया है।

रिवर्स के अनुसार- “यह एक साधारण प्रकार का सामाजिक समुह है, जिसके सदस्य एक सामान्य बोली का प्रयोग करते हैं तथा युद्ध जैसे सामान्य उद्देश्यों के लिये सम्मिलित रूप से कार्य करते हैं।”⁵

डॉ. मजूमदार ने कहा है कि- “आदिवासी जनजाति परिवारों तथा पारिवारिक वर्गों का एक समूह है, जो सामान्य नाम धारण किए हुए हैं। इसके सभी सदस्य एक ही भूमि पर निवास करते हैं और एक भाषा-भाषी, विवाह की प्रथाओं तथा कारोबार संबंधी एक ही नियम का पालन करते हैं। वे आदान-प्रदान संबंधी पारस्परिक व्यवहार को विकसित करते हैं। साधारणतः आदिवासी जनजाति अन्तर्विवाह सिद्धांत का समर्थन करती है और उसके सभी सदस्य अपनी ही जनजाति के अन्तर्गत विवाह करते हैं। कई गोत्र मिलाकर मिलकर आदिवासी जनजाति की रचना करते हैं। प्रत्येक गोत्र के सदस्यों का परस्पर रक्त-संबंध जुड़ा होता है। इनमें या तो अनेक लघु वर्ग एक वृहत् वर्ग में सम्मिलित हो जाते हैं, अन्यथा उनका वंश परम्परागत सरदार होता है। इस तरह आदिवासी जनजाति को एक राजनीतिक संघ भी माना जाता है।”⁶

वैरियर एल्विन ने अपनी पुस्तक ‘एब्सोरिजनल्स’ में लिखा है कि- “आदिवासी भारत वर्ष की वास्तविक स्वदेशी उपज है, जिनकी उपस्थिति में प्रत्येक व्यक्ति विदेशी है, ये वे प्राचीन लोग हैं जिनके नैतिक आधार और दावे हजारों वर्ष पुराने हैं। वे सबसे पहले यहाँ आए उन पर सबसे पहले विचार होना चाहिए।”⁷ इन्होंने सबसे पहले आए हुए व्यक्तियों को आदिवासी माना है।

डॉ. रमणिका गुप्ता के अनुसार- “बिना जंगल, जमीन, अपनी भाषा, जीवन शैली, मूल्यों के बिना आदिवासी, आदिवासी नहीं रह सकता। आदिवासी इस देश का मूल निवासी है।”⁸

डॉ. विनायक तुमराम के अनुसार- “एक विशेष पर्यावरण में रहने वाला, एक-सी बोली बोलने वाला, समान जीवन, शैली से सजा, एक से देवी-देवताओं को मानने वाला, समान सांस्कृतिक जीवन यापन करने वाला परन्तु अक्षर ज्ञान रहित मानव समूह यानी आदिवासी है।”⁹ इन्होंने आदिवासियों की परिभाषा अलग ढंग से दी है।

रत्नाकर भेंगरा तथा सी.आर. बिजोय के अनुसार- “आदिवासी के शाब्दिक के शाब्दिक अर्थ से ज्ञात होता है आदि निवासी यानी किसी स्थान पर निवास करने वाला या ‘प्रथम निवासी’।”¹⁰

इस प्रकार सभी विद्वानों के विचारों में मतभेद पाया जाता है। फिर भी भारत के अधिकांश लोग इन्हें अनुसूचित जनजाति के नाम से जानते हैं। सामान्य रूप से आदिवासी उसे कहते हैं जो जंगलों में अपना जीवन यापन करते हैं। समान भाषा का प्रयोग करते हैं। समान सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन जीते हैं तथा जल, जंगल, जमीन से जुड़े हुए हैं।

भारत में आदिवासी जनसंख्या और विस्तार

यद्यपि भारत के आदिवासी समाज देश की जनसंख्या का केवल 8.2 प्रतिशत ही है। ये आदिवासी देश के प्रत्येक प्रांत में पाए जाते हैं। देश के उत्तर-पूर्वी भाग में मंगोल प्रजाति के लक्षणों वाले आदिवासी अलग-अलग राज्यों में पाए जाते हैं। इसी प्रकार आदिवासियों का एक विशाल क्षेत्र देश के मध्य भाग में निवास करता है। जिनमें झारखण्ड, बिहार, छत्तीसगढ़, उड़ीसा और मध्यप्रदेश, राजस्थान, महाराष्ट्र और गुजरात को भी जोड़ दे तो यहाँ के आदिवासी समाज देश की कुल आदिवासी जनसंख्या के 87 प्रतिशत के लगभग होंगे। इसके अलावा अन्य राज्यों में भी आदिवासी पाए जाते हैं।

जनसंख्या के अनुपात की दृष्टि से आदिवासी जनसंख्या का प्रतिशत प्रत्येक राज्य में भिन्न है। उदाहरणार्थ लक्षद्वीप एवं मिजोरम में आदिवासी लोग उन प्रदेशों की जनसंख्या के 90 प्रतिशत से भी अधिक है। उत्तर-पूर्व के राज्यों-मेघालय, नागालैण्ड की जनसंख्या में यह प्रतिशत 80 से अधिक है। इसके बाद अरुणाचल प्रदेश, दादरा एवं नगर हवेली में भी लगभग दो-तिहाई लोग आदिवासी हैं। असम, मणिपुर, सिक्किम, त्रिपुरा, मध्यप्रदेश एवं उड़ीसा में इनका प्रतिशत बीस से तीस के बीच है। गुजरात, राजस्थान, महाराष्ट्र तथा अण्डमान एवं निकोबार द्वीप समूहों में इनका प्रतिशत दस के लगभग है। छह अथवा इससे भी कम प्रतिशत की आदिवासी जनसंख्या वाले राज्यों में हिमाचल प्रदेश, कर्नाटक, पश्चिमी बंगाल, केरल, तमिलनाडु, गोवा तथा दमन व दीव आते हैं।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि भारत के प्रायः हर प्रांत में आदिवासी निवास करते हैं, यद्यपि उनकी जनसंख्या का प्रतिशत प्रत्येक प्रांत की जनसंख्या के कुल योग से भिन्न-भिन्न है।

विभिन्न राज्यों एवं केन्द्रशासित प्रदेशों में 2001 ई. की जनगणना के अनुसार आदिवासियों की जनसंख्या को निम्नलिखित तालिका में दर्शाया गया है-

क्र.सं.	भारत/राज्य	कुल जनसंख्या	आदिवासी जनसंख्या	कुल जनसंख्या में आदिवासियों का प्रतिशत
1.	भारत	1,02,70,15,247	8,43,26,240	8.2
2.	मिजोरम	8,91,058	8,39,310	94.5
3.	लक्षद्वीप	60,595	57,321	94.5
4.	नागालैण्ड	19,90,036	17,74,026	89.1
5.	मेघालय	23,06,069	19,92,862	85.9
6.	अरुणाचल प्रदेश	10,91,117	7,05,158	64.2
7.	दादर व नगर हवेली	2,20,451	1,37,225	62.2
8.	छत्तीसगढ़	2,07,95,956	66,15,596	31.8
9.	त्रिपुरा	31,91,168	9,93,426	31.1
10.	झारखण्ड	2,69,09,428	70,87,068	26.3
11.	उड़ीसा	3,67,06,920	81,45,081	22.1
12.	सिक्किम	5,40,493	1,11,405	20.6
13.	मध्यप्रदेश	6,03,48,023	1,22,33,474	20.3
14.	गुजरात	5,05,96,992	74,81,160	14.8
15.	राजस्थान	5,64,73,122	70,97,706	12.6
16.	असम	2,66,38,407	33,08,570	12.4

17.	जम्मू एवं कश्मीर	1,00,69,917	11,05,979	10.9
18.	महाराष्ट्र	9,67,52,247	85,77,276	8.9
19.	दमन एवं दीव	1,58,059	13,997	8.8
20.	अण्डमान निकोबार द्वीप समूह	3,56,265	26,429	8.3
21.	आंध्रप्रदेश	7,57,27,541	50,24,104	6.6
22.	कर्नाटक	5,27,33,958	3463,986	6.6
23.	पश्चिम बंगाल	8,02,21,171	44,06,794	5.5
24.	हिमाचल प्रदेश	60,77,248	2,44,578	4.0
25.	उत्तरांचल	84,79,562	2,56,129	3.0
26.	केरल	33,18,38,619	3,64,189	1.1
27.	तमिलनाडू	6,21,10,839	6,51,321	1.0
28.	बिहार	8,28,78,796	7,58,351	0.9
29.	उत्तर प्रदेश	16,60,52,859	1,07,963	0.1
30.	गोवा	13,43,998	566	

स्रोत : भारतीय जनगणना 2001, जनगणना निदेशालय, नई दिल्ली

तालिका से स्पष्ट होता है कि 2001 की जनगणना के अनुसार भारत के राज्यों में सबसे अधिक आदिवासी जनसंख्या का प्रतिशत मिजोरम तथा लक्षद्वीप में, नागलैण्ड, मेघालय, अरुणाचल प्रदेश तथा दादर एवं नगर हवेली राज्यों संघ क्षेत्र में पाया जाता है। मणिपुर, त्रिपुरा तथा छत्तीसगढ़ ऐसे राज्य हैं। जहाँ की लगभग एक तिहाई जनसंख्या आदिवासी समुदाय की है।

आदिवासी समाज एक परिचय

भारत में विभिन्न धर्म, जाति और समुदाय के लोग निवास करते हैं। इनमें कई आदिवासी भी हैं जो आदिकाल से यहाँ पर रहते हैं। विभिन्न स्थानों पर निवास करने वाले आदिवासी निम्न हैं-

(i) निवास स्थान

(क) मध्यप्रदेश :-

मध्यप्रदेश में कई आदिवासी निवास करते हैं। इनकी संख्या कुल आबादी का लगभग एक चौथाई भाग है। मध्यप्रदेश के प्रमुख आदिवासी हैं-

गोंड आदिवासी

यह भारत की सर्वाधिक प्रमुख आदिवासियों में से एक है। गोंड आदिवासी मध्यप्रदेश के शहडोल, उमरिया, छिंदवाड़ा, जबलपुर, सिवनी, बैतूल, कटनी, डिंडौरी, मंडला आदि जिलों में निवास करते हैं। ये खेती तथा अन्य कार्य करके जीवन यापन करते हैं। इनकी प्रमुख खेती धान, कोदो, कुटकी, तिलहन, चावल, मक्का, तिली, गेहूँ, चना, राई, मसूर, अलसी है, गोंड आदिवासियों में गोदना गोदवाने का चलन है। ये लोग अपने पूरे शरीर पर गोदना गोदवाते हैं।

बैगा आदिवासी

इन आदिवासियों को मध्यप्रदेश का स्थाई निवासी कहा जाता है। ये मध्यप्रदेश के मंडला, डिंडौरी, शहडोल, उमरिया, बालाघाट आदि जिलों में रहते हैं। बैगा आदिवासी समाज में यह कथा प्रचलित है कि महाभारत काल में कीचक नाम के वनवासी राजा थे। कीचक राजा ने आदिवासियों की रक्षा की थी। इसलिए बैगा कीचक राजा और कीचक रानी की लकड़ी की मूर्ति बनाकर पूजा करते हैं। बैगा आदिवासियों में

झाड़-फूँक द्वारा बिमारी का इलाज किया जाता है। इसीलिए इन्हें ओझा या गुनिया भी कहा जाता है। बैगा आदिवासियों की 7 प्रमुख उपजातियाँ हैं- बिंझवार, भारोटिया, नारोटिया, रायभैना, कठभैना, कोडवान तथा गोंडवान आदि।

भील आदिवासी

भील शब्द की उत्पत्ति द्राविड़ भाषा के 'बील' शब्द से हुई है, जिसका अर्थ होता है 'कमान'। अर्थात् जो तीर-कमान का प्रयोग करते हैं भील कहलाते हैं। ये झाबुआ, खरगोन, मंदसौर, रतलाम आदि जिलों में रहते हैं। ये लोग पहले शिकार करके जीवन यापन करते थे। अब खेती के द्वारा धन कमाते हैं। भील आदिवासियों में गोदने गोदवाने की प्रथा है तथा तरह-तरह के गोदने गोदवाए जाते हैं।

सहरिया आदिवासी

सहरिया आदिवासी मध्यप्रदेश के ग्वालियर, गुना, शिवपुरी, मुरैना, भिंड, दतिया आदि जिलों में निवास करते हैं। ये अनाज एकत्रित करने के लिए मिट्टी के बड़े बरतनों को चित्रों से सजाते हैं। सहरिया का अर्थ है शेर के साथ रहने वाला। ये पहले शिकार करते थे लेकिन अब खेती करके अपना जीवन यापन करते हैं। इनमें भी गोदना गोदवाने का प्रचलन है।

कोल आदिवासी

कोल आदिवासी मध्यप्रदेश के रीवा शहडोल, उमरिया, जबलपुर, कटनी, मंडला, डिंडौरी आदि जिलों में निवास करते हैं। इन आदिवासियों का देवी-देवताओं पर अटूट विश्वास है।

कोरकू आदिवासी

कोरकू आदिवासी मध्यप्रदेश के रायसेन और सिहोर जिले में निवास करते हैं। ये पहले शिकार करते थे लेकिन अब खेती करके अपना जीवन निर्वाह करते हैं। कोरकू आदिवासी रावण और मेघनाद की पूजा करते हैं।

भारिया आदिवासी

भारिया आदिवासी छिंदवाड़ा, सिवनी और मंडला जिलों में निवास करते हैं। ये घन जंगलों और घाटियों के बीच में रहते हैं। ये पेड़ों की छालों से रस्सी तथा पत्तों से कलात्मक वस्तुएँ बनाते हैं।

खैरवार आदिवासी

खैरवार आदिवासी मध्यप्रदेश के सीधी, शहडोल, उमरिया, छतरपुरा, पन्ना आदि जिलों में रहते हैं। ये आदिवासी प्रमुख रूप से खैर के वृक्ष से कत्था निकालकर अपना जीवन गुजारते हैं।

पारधी आदिवासी

ये जबलपुर, कटनी, हरदा, होशंगाबाद, सिवनी आदि जिलों में निवास करते हैं। पारधी का अर्थ शिकार करना होता है। पारधी आदिवासियों के पूर्वज हैं। ये जाल बिछाकर पशु-पक्षियों का शिकार करते थे। अब खेती-मजदूरी करके जीवन निर्वाह करते हैं।

पनिका आदिवासी

पनिका आदिवासी मध्यप्रदेश के सीधी शहडोल, उमरिया आदि जिलों में निवास करते हैं। इनमें कबीर पंथ के अनुयायी पाए जाते हैं। ये लोग कपड़ा बुनने का व्यवसाय करते हैं।

भैना आदिवासी

भैना आदिवासी शहडोल, उमरिया, मंडला, डिंडोरी आदि जिलों में रहते हैं। खेती करके अपना जीवन यापन करते हैं।

कमार आदिवासी

मध्यप्रदेश के प्रमुख आदिवासियों में कमार आदिवासियों का महत्वपूर्ण स्थान है। आर्थिक दृष्टि से यह अत्यधिक पिछड़े हुए हैं। मुख्य रूप से खेती करना ही इनका व्यवसाय है।

(ख) छत्तीसगढ़ :-

गोंड आदिवासी

गोंड आदिवासी छत्तीसगढ़ के दक्षिण क्षेत्र में पाई जाती है। जनसंख्या की दृष्टि से ये सबसे बड़ा आदिवासी समूह है। ये पूरे छत्तीसगढ़ में निवास करते हैं। गोंडों में सर्वाधिक सुंदर संस्कृति विकसित है। इनका प्रमुख मनोरंजन नृत्य व गायन है। इनका प्रमुख व्यवसाय कृषि व लकड़हारे का कार्य करना है। इनकी कृषि प्रणाली डिप्पा कहलाती है। ये बहुत ईमानदार होते हैं। अपने सांस्कृतिक व सामाजिक जीवन के लिए बस्तर क्षेत्र के गोंड आदिवासी महत्वपूर्ण माने जाते हैं।

बैगा आदिवासी

बैगा आदिवासी मंडला जिले के चाड़ा के घने जंगलों में बसे हुए हैं। इन आदिवासियों में नृत्य को प्रमुख स्थान दिया गया है। इनके प्रमुख नृत्य बैगानी करमा, बिलमा तथा परधौनी है। ये जितने प्रकार के नृत्य करते हैं वैसे संभवतः किसी ओर किसी ओर आदिवासियों में मिलते हैं।

हल्बा आदिवासी

यह आदिवासी रायपुर, दुर्ग तथा बस्तर जिलों में निवास करती है। हल्बा आदिवासियों की बस्तरहा, छत्तीसगढ़ीया तथा मरेथिया उपशाखाएँ हैं। मरेथिया आदिवासियों पर मराठी का प्रभाव दिखाई देता है। हल्बा आदिवासी कुशल किसान भी होते हैं। अधिकांशतया ये लोग शिक्षित होकर ऊँचे पदों पर आसीन हो गए हैं। आधुनिक समाज के सम्पर्क में आने के कारण इनके रीति-रिवाजों में भी परिवर्तन आया है। कुछ हल्बा आदिवासी कबीरपंथी भी हो गए हैं।

मुरिया आदिवासी

ये आदिवासी बस्तर जिलों में निवास करती है। ये अपने सौंदर्यबोध, कलात्मक रुझान और कला परम्परा में विविधता के लिए प्रसिद्ध है।

अन्य आदिवासी

छत्तीसगढ़ में उपर्युक्त आदिवासियों के अलावा कोरबा, उरौंव, भतरा, कँवर, कमार, माड़िय, मुड़िया, भैना, भारिया, बिंझवार, धनवार, नगेशिया, मंझवार, खैरवार, भुंजिया, पारधी, खारिया, गड़ावा या गड़वा भी निवास करते हैं।

(ग) नागालैण्ड :-

नागा आदिवासी

नागा नागालैण्ड के प्रमुख आदिवासी है। समस्त नागालैण्ड में ही इनका निवास स्थान है। इनका निवास ऊँचे पर्वतों और चोटियों पर होता है। ये अपने शौर्य व पराक्रम के लिए जाने जाते हैं। ये हमेशा एक समूह में रहते हैं। नागाओं में सामूहिक भाईचारे की भावना होती है।

नागाओं की विभिन्न उपजातियाँ होती है, जो निम्न है-

लोथा नागा

ये आदिवासी नागालैण्ड के बोखा जिले में निवास करते हैं। ये लोग प्रकृति के ज्यादा नजदीक रहते हैं। इनके महीनों के नाम प्रकृति, त्योहारों अथवा उत्सवों के नाम पर होते हैं। कृषि करके ये अपना जीवन निर्वाह करते हैं। ये अपने त्योहारों व उत्सवों को उत्साहपूर्वक मनाते हैं। ये सूअर की बलि चढ़ाते हैं। इन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया था, लेकिन इतिहास ने इन्हें विशेष महत्त्व प्रदान नहीं किया।

चांग नागा

ये आदिवासी नागालैंड के तुमसांग जिले में रहते हैं। ये मिट्टी के बर्तन बनाने का व्यवसाय करते हैं। इनके बनाए हुए बर्तनों को खाना बनाने तथा खाद्य सामग्री के संकलन में उपयोग किया जाता है। इनके त्योहारों में इनकी संस्कृति की झलक दिखाई देती है। इनकी संस्कृति अभी तक अपने मौलिक स्वरूप को बनाए हुए है।

यिमचुंगर नागा

इनका मूल व्यवसाय कृषि है। ये कृषि कार्यों से जोड़कर ही अपने त्यौहार न उत्सव को बड़े धूमधाम से मनाते हैं। ये आदिवासी स्वभाव से सरल होते हैं। ये नागालैंड के अंदर के भागों में निवास करते हैं, इसीलिये अपनी संस्कृति को बचाए हुए हैं।

रेंगमा नागा

नागा आदिवासियों में इनकी संख्या सबसे कम है। ये कई गोत्रों में विभाजित होते हैं तथा अपने गोत्र के बाहर विवाह करते हैं। इनका स्वभाव सरल व मधुर होता है। ये लोग अपनी प्रतिष्ठा और आदिवासी पहचान के बारे में सजग होते हैं। संगीत, नृत्य, मद्यपान का इनके जीवन में विशेष महत्त्व है। लेकिन आधुनिक प्रभाव के कारण इनकी संस्कृति प्रायः लुप्त होती जा रही है।

सेमा नागा

ये आदिवासी नागालैंड के जुनहेबतो जिले में मुख्य रूप से रहते हैं। इनमें शिक्षा का सर्वाधिक प्रसार हुआ है। नागा आदिवासियों में अधिक प्रगति इन्होंने ही की है। इनमें 22 गोत्र समूह होते हैं तथा गोत्र के अंदर विवाह करना मना होता है। अधिकांश सेमा नागा झूम कृषि करते हैं। मधुमक्खी पालन भी इनका प्रमुख कार्य है। आधुनिकता के प्रभाव में आकर इनकी संस्कृति भी लुप्त होती जा रही है।

संगतम नागा

इन आदिवासियों की संख्या सर्वाधिक कम होती है। ये दो या तीन विशेष समुहों में बंटे होते हैं। रंगीन वस्त्र निर्माण की कला में ये निपुण होते हैं।

जीमी नागा

ये आदिवासी नागालैण्ड के कोटिया जिले में पाए जाते हैं। असम राज्य के उत्तरी कछर पर्वतीय जिलों में भी इनका निवास स्थान है। ये विशेष रूप से कला प्रेमी होते हैं।

ओ नागा

ये नागालैण्ड के मोकोच्युंग जिले में सर्वाधिक संख्या में निवास करते हैं। ये सर्वाधिक साक्षर होते हैं। ये लोग नागालैण्ड में राजनीतिक एवं प्रशासनिक क्षेत्रों पर अपना वर्चस्व बनाए हुए हैं। इनमें बौद्धिक क्षमता अधिक पाए जाने के कारण इन्हें नागा बंगाली के नाम से भी पुकारा जाता है। इनकी आदिवासी संस्कृति वर्तमान में लुप्त होने के कगार पर है।

फोम नागा

ये आदिवासी ओ नागा के निवासियों के पास ही रहते हैं। इनकी स्त्रियाँ बुनाई के कार्य में दक्ष होती हैं। ये मिट्टी के कलात्मक बर्तन भी बनाते हैं। लेकिन ये कृषि व्यवसाय के द्वारा ही अपना जीवन यापन करते हैं।

तेंगखुल नागा

जनसंख्या की दृष्टि से ये नागा आदिवासियों में तीसरे स्थान पर आते हैं। शिक्षा के क्षेत्र में ये ओ नागा से दूसरे स्थान पर है। इन पर ईसाई मिशनरियों का अधिक प्रभाव पड़ा है, जिसके फलस्वरूप इनकी आदिवासी संस्कृति का तीव्र गति से

पतन होता जा रहा है। इनका प्रमुख व्यवसाय कृषि है। पाश्चात्य प्रभाव के कारण इनकी संस्कृति अब अतीत की वस्तु बनकर रह गई है।

अंगामी नागा

ये आदिवासी नागालैण्ड के कोहिमा जिले में निवास करते हैं इन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

कोनयक नागा

ये नागालैण्ड के मौन जिले में निवास करते हैं। इनकी जनसंख्या सर्वाधिक पाई जाती है। साक्षरता की दृष्टि से ये सर्वाधिक पिछड़े हुए हैं। इनमें पर्याप्त सूझ-बूझ व प्रतिभा पाई जाती है। वर्तमान में इन्हें नग्न नागाओं के नाम से जाना जाता है। ये मिट्टी के बर्तन निर्माण के लिए जाने जाते हैं।

चके सांग नागा

ये आदिवासी नागालैण्ड के फेक जिले में पाए जाते हैं। ये कृषि व्यवसाय द्वारा अपना जीवन यापन करते हैं। बढ़ईगिरी में भी इन्हें कुशलता पाई जाती है। इनकी आदिवासी संस्कृति के मूल स्वरूप में परिवर्तन आ गए है।

(घ) अरुणाचल प्रदेश :-

मिशमी आदिवासी

इन्हें दैंग आदिवासी भी कहते हैं। इनमें तीन कबीले पाए जाते हैं- इदु मिशमी, दिगारु और मिजू मिशमी। मिशमी लोग मध्य अरुणाचल प्रदेश के पूर्वोत्तर छोर में निवास करते हैं। जो ऊपरी और निचली दिबांग घाटि, लोहित और अनजाब जिलों पर विस्तृत है। ये पहले बर्मा में निवास करते थे, किंतु बाद में भारत में आकर निवास करने लगे। सबसे पहले इदु मिशमी आये तथा अंत में मिजू मिशमी आए थे।

हसो आदिवासी

इन्हें आका के नाम से भी जाना जाता है। ये पश्चिमी सियांग जिले के थ्रिजनों, भालुकपोंग, बुरागाँव, जमीरी, पलीजी और कुजी क्षेत्रों में निवास करते हैं। किंतु ये पूर्व सियांग जिले के कुछ भागों में भी बसे हुए हैं। हर गाँव में एक मुखिया का चुनाव किया जाता है। हसों समाज दो भागों केवतसुम और केतसुम में बँटा हुआ है।

(इ) हिमाचल प्रदेश :-

गड्डी आदिवासी

हिमाचल प्रदेश के आदिवासियों में गड्डी आदिवासियों को सामान्य रूप से जाना जाता है। इनकी जनसंख्या लगभग 60 हजार है। यह मानते हैं कि ये उत्तरी भारत के मैदानी इलाको से आकर यहाँ बसे हैं एवं निम्न राजपूत जाति से सम्बन्ध रखते हैं।

गड्डी आदिवासी अर्द्ध खानाबदोश होते हैं। क्योंकि ये छह माह अपने मवेशियों के लिए चारा खोजने हेतु इधर-उधर भटकते रहते हैं तथा शेष छह माह अपने गाँव में रहते हुए कृषि करते हैं। ये कुत्ते, भालू और शेर से जानवरों की रक्षा करते हैं। ये इन पशुओं का उपयोग ऊन, खाने के लिए, बलि चढ़ाने के लिए तथा बेचने के लिए करते हैं। भेड़-बकरियों के ऊन को ये लोग कातते हैं और उनसे कपड़े कालीन बनाकर बेचते हैं तथा अपना जीवन यापन करते हैं।

गूजर आदिवासी

हिमाचल प्रदेश में गूजरों को अनुसूचित जनजाति में रखा गया है। ये लोग पशुपालक आदिवासी हैं और भैंसों को पालते हैं। ये वर्षभर खानाबदोश जीवन यापन करते हैं और पशुओं के साथ एक जंगल से दूसरे जंगल या एक घाटी से दूसरी घाटी अथवा एक घास के मैदान से दूसरे घास के मैदान को आते जाते रहते हैं। हिमाचल

प्रदेश के गूजर मुसलमान होते हैं। इनके खानाबदोशी स्वभाव ने इन्हें आधुनिकता के प्रभाव से दूर रखा है। ये अधिक रूढ़िवादी होते हैं और अपने रीतिरिवाज आदि परिवर्तन के विरोधी होते हैं।

कनौरा आदिवासी

इन्हें किन्नरा या किन्नर नाम से भी जाना जाता है। ये पूर्व हिमालय के सीमावर्ती किन्नौर जिले में बसते हैं। ये आदिवासी मिश्रित रक्त के हैं क्योंकि ये मूल रूप से उत्तरी भारत से सम्बन्ध रखते हुए भी इन लोगों ने तिब्बती व गुरखा लोगों से विवाह सम्बन्ध बना लिए थे और इस प्रकार मंगोल प्रजाति के लक्षणों को प्राप्त कर लिया। ये गोरे रंग के होते हैं। ये चरवाहे होते हैं। भेड़-बकरियों को पालकर इन्हीं से अपना गुजर-बसर करते हैं।

पंगवाल आदिवासी

ये हिमाचल प्रदेश की पांगी घाटी में निवास करते हैं। ये दो वर्गों में बँटे हुए होते हैं उच्च वर्ग एवं निम्न वर्ग। प्रत्येक उपवर्ग चार उपवर्गों में बँटा होता है। एक ही वर्ग के चारों उपवर्गों के सदस्य आपस में विवाह संबंध स्थापित करने में स्वतंत्र होते हैं। ये धार्मिक कर्मकाण्डों का अनिवार्य रूप से पालन करते हैं।

लाहूली आदिवासी

हिमाचल प्रदेश की कुल्लू घाटी में इनका निवास स्थान है। इन्हें लाहोला के नाम से भी जाना जाता है। ये मुख्य रूप से कृषक होते हैं, खेती का अधिकतर कार्य महिलाएँ करती हैं। ये नाग देवता तथा अन्य देवी-देवताओं की पूजा करते हैं।

मूल रूप से ये उत्तरी भारत के प्रजातीय तत्त्व से सम्बन्ध रखते हैं तथा इन लोगों ने तिब्बती लोगों से वैवाहिक संबंध स्थापित किए तथा मिश्रित प्रजाति के रूप में सामने आए हैं।

(च) राजस्थान :-

भील आदिवासी

भील शब्द की उत्पत्ति 'बील' से हुई है, जिसका अर्थ 'कमान' होता है। यह सबसे प्राचीन व दूसरी सबसे बड़े आदिवासी है। ये उदयपुर, चित्तौड़गढ़, डूंगरपुर, बाँसवाड़ा आदि जिलों में बसते हैं।

कर्नल जेम्स टॉड ने भीलों को वनपुत्र कहा था। इनके द्वारा मैदानी भागों को जलाकर झूमटी कृषि की जाती है। भीलों के मुखिया को गमेती कहते हैं। भील टोटम नामक कुल देवता की पूजा करते हैं। ये झूम कृषि भी करते हैं।

मीणा आदिवासी

मीणा शब्द 'मीन' धातु से बना है। मीणा का शाब्दिक अर्थ 'मछली' होता है। यह सबसे बड़े आदिवासी है। जयपुर, सवाई माधोपुर, उदयपुर आदि जिलों में इनका निवास-स्थान है। सर्वाधिक मीणा जयपुर में निवास करते हैं। जीणमाता मीणों की लोकदेवी है। मीणाओं में नाता प्रथा प्रचलित है, जिसके अन्तर्गत स्त्री अपने पति और बच्चों को छोड़कर अन्य पुरुष से विवाह कर लेती है। ये दो वर्गों में बँटे हुए हैं- प्रथम वर्ग जमींदारों का तथा द्वितीय वर्ग चौकीदारों का है। इनमें संयुक्त परिवार की प्रथा पाई जाती है। ये लोग मांसाहारी होते हैं।

गरासिया आदिवासी

गरासिया आदिवासी अपने को चौहान राजपूतों का वंशज बताती है। ये सिरोही, गोगुंदा (उदयपुर), बाली (पाली) आदि जिलों में बसते हैं। इन आदिवासियों का मुखिया सहलोट कहलाता है। गरासियों के अनाज भण्डार को सोहरी कहते हैं। इनमें सफेद रंग के पशुओं को शुभ माना जाता है। इनमें व्यक्ति की मृत्यु पर जो स्मारक बनाए जाते हैं, उसे हूरे कहते हैं।

सहरिया आदिवासी

इनका निवास स्थान बारां जिले की किशनगंज तथा शाहाबाद तहसीलों में है। इनकी बस्तियों को सहराना कहा जाता है। सहरिया आदिवासियों के मुखिया को कोतवाल कहते हैं। ये राजस्थान के एकमात्र आदिम आदिवासी हैं।

सहरिया शब्द की उत्पत्ति 'सहर' से हुई है, जिसका अर्थ 'जगह' होता है। ये लोग जंगलों से कंदमूल एवं शहद एकत्रित कर अपना जीवन यापन करते हैं। ये लोग जड़ी-बूटियों से विभिन्न प्रकार की दवाईयाँ बनाते हैं। भारत सरकार ने केवल इन्हीं आदिवासियों को आदिम आदिवासी समूह की सूची में रखा है, क्योंकि ये राज्य के सर्वाधिक पिछड़े आदिवासी हैं।

कंजर आदिवासी

कंजर शब्द की उत्पत्ति 'काननचार' या 'कनकचार' से मानी जाती है। जिसका अर्थ है 'जंगलों में विचरण करने वाला'। कंजर झालावाड़, बारां, कोटा और उदयपुर जिलों में निवास करते हैं।

ये अपराध प्रवृत्ति के लिए कुख्यात हैं। ये अपराध करने से पहले ईश्वर का आशीर्वाद लेते हैं, जिसे पाती माँगना कहते हैं। इनके मुखिया को पटेल कहा जाता है। ये घरों में दरवाजे नहीं लगाते तथा घर से भागने के लिए पीछे की तरफ खिड़की जरूर बनवाते हैं।

डामोर आदिवासी

ये आदिवासी बाँसवाड़ा और डूंगरपुर जिले की सीमलवाडा पंचायत समिती में बसते हैं। ये लोग अंधविश्वासी होते हैं। इनका मुखिया 'मुखी' कहलाता है। ये लोग मांस और शराब का अत्यधिक सेवन करते हैं।

कालबेलिया आदिवासी

ये साँप पकड़ने का व्यवसाय करते हैं। ये लोग सपेरे होते हैं तथा साँप का खेल दिखाकर अपना जीवन यापन करते हैं। राजस्थान का कालबेलिया नृत्य यूनेस्को की विरासत सूची में शामिल किया गया है।

कथौड़ी आदिवासी

ये आदिवासी बारां जिले और दक्षिणी-पश्चिमी राजस्थान में रहते हैं। ये खेर के वृक्षों से कथा तैयार करके अपना जीवन-निर्वाह करते हैं। इनके व्यवसाय से ही इनकी जाति का पता चलता है।

(छ) मेघालय :-

गारो आदिवासी

गारो आदिवासी मेघालय के गारो पहाड़ियों के कामरूप तथा असम के गोल पाड़ा जिले में बसते हैं। इनको दो भागों में बाँटा जा सकता है। प्रथम वे जो पहाड़ियों में रहते हैं तथा झूमिंग कृषि करते हैं। दूसरे वे जो मैदान में रहते हैं तथा मछली पकड़कर जीवन गुजारते हैं। प्रथम को स्थानीय बोली में पहाड़ियाँ और दूसरे को उम्बदानी कहते हैं।

पहाड़ पर रहने वाले मुख्य रूप से खेती करते हैं। जंगलों को जलाकर वह दो तीन वर्ष तक खेती करते हैं, फिर उसे छोड़कर दूसरे जंगलों को जलाकर खेत तैयार करते हैं।

खासी आदिवासी

मेघालय की जयंतिया और खासी की पहाड़ियों में खासी आदिवासी निवास करते हैं। ये मुख्यतः कृषि कार्य करते हैं। ये भी झूमिंग कृषि करते हैं। शिकार करना व मछली मारना इनका मुख्य व्यवसाय है।

(झ) गुजरात :-

डब्ला आदिवासी

ये गुजरात के महत्त्वपूर्ण आदिवासी हैं। ये लोग सूरत जिले के प्रत्येक तालुका तथा ब्रीच और थाना जिले के कुछ भागों में निवास करते हैं। ये कृषि करके अपना जीवन यापन करते हैं। प्राचीनकाल में ये लोग बंधुओ मजदूरों की तरह कृषि कार्य करते थे। इनकी तीन श्रेणियाँ पाई जाती है-

(अ) हिन्दू डब्ला

(ब) बोहारिया डब्ला

(स) पारसी डब्ला

उपर्युक्त तीनों श्रेणियों के आदिवासियों में कोई विशेष अंतर नहीं पाया जाता है।

(ज) बिहार :-

बहेलिया आदिवासी

बिहार में इन्हें 'भूल' कहा जाता है। ये लोग केवल शिकार करके एवं पक्षियों को पकड़कर ही अपना जीवन निर्वाह करते हैं। ये अपने शिकार के खोज में एक जंगल से दूसरे जंगल में घूमते रहते हैं।

ये अधिकांशतः हिंदू धर्म को तथा कुछ इस्लाम धर्म को मानते हैं। अब ये धीरे-धीरे आधुनिक समाज के सम्पर्क में आते जा रहे हैं।

लोघ आदिवासी

ये बिहार से लेकर पश्चिम बंगाल तक बसे हुए हैं। ये 'सावर' आदिवासियों के वंशज माने जाते हैं। ये खेतों में मजदूरी करके अपना जीवन यापन करते हैं। लोघ आदिवासियों को अपराधी आदिवासियों में माना जाता है। अशिक्षा और पिछड़ेपन के कारण इनकी स्थिति दयनीय है।

रजवार आदिवासी

ये आदिवासी बिहार तथा पूर्वी अवध में रहते हैं। ये मेहनत-मजदूरी करके अपने बच्चों का लालन-पालन करते हैं। ये हिंदू धर्म को मानते हैं एवं धार्मिक कार्यों में ब्राह्मण पुरोहित को बुलाते हैं। अधिकतर रजवार दूसरे के खेतों में कार्य करते हैं। इनमें पितृवंशीय गोत्र संगठन पाया जाता है।

मूसाहार आदिवासी

ऐसा कहा जाता है कि ये चूहा भक्षी होते हैं, पर इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिलता है। मूसाहार आदिवासियों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है- प्रथम श्रेणी के अन्तर्गत वे लोग आते हैं जो घूमकर अपना जीवन व्यतीत करते हैं तथा अपने परिवार के साथ एक जंगल से दूसरे जंगल में घूमते रहते हैं। दूसरे श्रेणी में वे मूसाहार आते हैं जो गाँवों में बसकर स्थायी जीवन व्यतीत करते हैं। ये जादू-टोनों में विश्वास करते हैं।

बेदिया आदिवासी

ये बिहार की एक अन्य आदिवासी है। इनको दो भागों में बाँटा गया है- एक घुमंतू और दूसरा स्थायी। ये कार्यों के आधार पर अनेक उपभागों में बंटे हुए हैं। जैसे-कलाबाज, जादूगर, चिड़ीमार, सपेरा आदि। वर्तमान समय में ये मछली पकड़ने के जाल व काँटे, कंधा, सूई, जस्ता के आभूषण बनाकर जीविका उपार्जन करते हैं।

खानपान

आदिवासियों का निवास जंगल में होता है, इसलिए भोजन के रूप में वनों से प्राप्त फल तथा कृषि पर आश्रित रहते हैं। ये महुआ, कंद, मूल, फल आदि का सेवन करते हैं। ये कोदो, ज्वार, बाजरा, चना, चावल, मक्का, गेहूँ, कुटकी, सावाँ आदि की कृषि करते हैं। महुए की शराब का अत्यधिक सेवन त्योहारों एवं उत्सवों के अवसर पर होता है।

मेघालय के खासी आदिवासियों का प्रमुख भोजन चावल व सूखी मछलियाँ हैं। चावल की कमी होने पर ये ज्वार को शामिल करते हैं। ये सभी जंगली जानवरों का शिकार करके उनका माँस खाते हैं। इनमें कुत्ते को पवित्र जानवर माना जाता है। दूध, घी और मक्खन से भी ये लोग परहेज करते हैं। शराब इनका प्रमुख पेय पदार्थ है, जो चावल व ज्वार से बनाई जाती है। “अनाजों में ‘उखावीयाँग’ नामक पौधे की जड़ मिलाकर वे दो तरह की शराब बनाते हैं, जिन्हें वे खा-इद-हीयर और खा-इद-उम कहते हैं। खा-इद-हीयर विशेष पुष्टकर और नशीला होती है। खा-इद-उम-प्रत्येक उत्सव और पर्व के अवसर पर उपयोग में आती है। देशी-शराब का प्रचलन बहुत है।”¹¹

सहरिया आदिवासी कंद-मूल, फल और हरी सब्जियों का मुख्य रूप से सेवन करते हैं। ज्वार, बाजरा, मक्का और चने का उपयोग नियमित भोजन के रूप में करते हैं। सहरियाओं में कढ़ी-रोटी भी बनाई जाती है। जिसे ये बड़े चाव से खाते हैं। सहरिया आदिवासियों की महिलाएँ विभिन्न प्रकार की चटनियाँ बनाती हैं। इन्हें पेड़-पौधों, जड़ी-बूटियों आदि का ज्ञान होता है। त्योहारों पर बेसन की बाटी बनाई जाती है।

गोंड आदिवासी मुख्य रूप से अपने भोजन में कोदो को शामिल करते हैं, जिसे पकाकर बनाए जाने वाले भोजन को भात और पेज कहते हैं। शाक-सब्जी जंगली फल-फूल तथा माँस-मछली का भी सेवन करते हैं। ये कंद मूल को सुखाकर रख लेते हैं तथा बाद में इसे भूँककर खाते हैं। त्योहार के समय मीठा चावल दाल-रोटी, खिंचड़ी आदि बनाते हैं।

भारिया आदिवासी मुख्य रूप से शाक-सब्जी का सेवन करते हैं। लौकी, कद्दू, सेम, चना, बरवटी, टिंडा आदि सब्जियों की खेती करते हैं। आलू, शंकरकंद, सेतकंद, बरहाकंद आदि कंद-मूल भी ये अपने भोजन में शामिल करते हैं। वर्षा के दिनों में आम के बीज की रोटी और महुआ खाते हैं। त्योहार के समय मक्का, ज्वार, गेहूँ के आटे की रोटी और आटे में महुआ मिलाकर मीठा पकवान बनाते हैं त्योहारों पर चावल में गुड़ डालकर खीर भी बनाई जाती है।

नागाओं की लहाटा जाति का प्रिय भोजन चावल व माँस है। ये लगभग सारे जानवरों का शिकार करके उसका माँस खाते हैं। मनुष्य का माँस खाने वाले जानवरों का माँस कुछ लहोटा नहीं खाते हैं। ये माँस को छोटे-छोटे टुकड़ों में काटकर तथा आग में सेककर इसे वर्ष भर सुरक्षित रखते हैं। ये चावल की बनी शराब का अत्यधिक सेवन करते हैं।

अंगामी नागाओं का मुख्य आहार चावल है। चावल के साथ मांस का भी उपयोग किया जाता है। ये गाय, सूअर और मुर्गे के मांस का सेवन करते हैं। ये हाथी, मिथन, बिल्ली आदि के मांस को भी बड़े चाव से खाते हैं। ये दिन में दो बार खाना खाते हैं। ये आदिवासी 'जू' नामक शराब पीते हैं। ये शराब चावल से बनाई जाती है तथा कई प्रकार की होती है।

कमार आदिवासी जंगली फल, पौधे, जड़, कंद एवं साग हेतु पत्तियाँ अपने भोजन में शामिल करते हैं। ये भोजन विभिन्न मौसमों में उपलब्ध होता है। तेंदू एवं आचार, महुआ का फूल एवं आम भी मुख्य रूप से ये अपने भोजन में सम्मिलित करते हैं। खाने वाले कंद को इकट्ठा करने एवं उसका उपयोग करने का इनके जीवन में विशेष स्थान है। कुन्दुरु काँदा, कुरु काँदा, केरु काँदा आदि का उपयोग अपने भोजन में करते हैं।

मध्यप्रदेश के भील आदिवासी मक्का, प्याज, ज्वार, जौ, सौवा, लावा, कूरा, माँस आदि को अपने भोजन में शामिल करते हैं। मदिरा ये बड़े शोक से पीते हैं। ये मकई, जौ, महुआ आदि की कच्ची शराब बनाकर देवी-देवताओं पर चढ़ाते हैं तथा स्वयं भी इसका सेवन करते हैं।

सभी आदिवासियों में शराब सेवन और मांस-मछली का मुख्यतया प्रयोग किया जाता है।

वेशभूषा

सजने-संवरने का प्रचलन प्राचीन काल से चला आ रहा है। वेशभूषा का अर्थ होता है, मानव शरीर पर धारण की गई वह वस्तु जिससे शरीर के रूप में परिवर्तन आ जाए। वेशभूषा में कपड़ें और शृंगार दोनों आते हैं। व्यक्तित्व को आकर्षक बनाने के लिए वेश-भूषा का महत्त्वपूर्ण स्थान रहता है। हर मनुष्य अच्छा दिखने के लिए अच्छे कपड़े पहनना चाहता है।

सभी समाज जाति तथा क्षेत्र की अपनी अलग-अलग वेशभूषा संबंधी विशेषताएँ होती हैं। वेशभूषा की यही विशेषता व्यक्ति को उसके वर्ग का प्रतिनिधि बनाती है। वेशभूषा के द्वारा आदिवासी विशेषताओं का भी पता लगाया जा सकता है। वस्त्रों को पहनने का ढंग वस्त्रों के प्रकार की भिन्नता तथा रंग सभी आदिवासियों को एक-दूसरे से अलग रखती है। आदिवासियों की भिन्न-भिन्न वेशभूषा है, जो निम्न प्रकार से है :-

भील आदिवासी :-

भीलों को शृंगार करना अधिक अच्छा लगता है। ये गहरे रंग के कपड़ें पहनते हैं। भील स्त्रियाँ लाल, पीले, कथई, काले रंग के बूटेदार कपड़ों के लहंगे पहनना पसंद करती हैं। वे घुटनों तक लम्बे घाघरे भी पहनती हैं। लहंगे के साथ पोलका पहनती हैं, जिसे झुलड़ी कहा जात है। ये लम्बा दुपट्टा ओढ़ती हैं, जिसे ओढ़नी कहा जाता है। ओढ़नी और लहंगे को भी रंगीन धागों की कढ़ाई, काँच तथा विभिन्न आकृतियाँ बनाकर सजाया जाता है।

भील पुरुष सिर पर रंगीन साफा बाँधते हैं। उस पर 'गोफर' लिपटी रहती है। ये घुटनों तक लम्बी धोती पहनते हैं और साथ में बंडी पहनते हैं। बंडियों पर रंग-बिरंगे धागों से कढ़ाई की जाती है तथा दूसरे रंगों के कपड़ों के टुकड़ों से फूल-पत्ती की आकृतियाँ बनाई जाती हैं।

गोंड आदिवासी :-

गोंड आदिवासियों में गोदना गोदवाने का प्रचलन है। कई महिलाएँ अपने पूरे शरीर पर गोदना गोदवाती हैं। गोंड स्त्रियाँ काँछ लगाकर साड़ी पहनती हैं। वे ढीला, बड़ा ब्लाउज भी पहनती हैं, जिसे पोलका कहते हैं। ये हरे, लाल, जामुनी आदि रंगों के कपड़े पहनना अधिक पसंद करती हैं।

गोंड पुरुष घुटनों तक लंबी धोती पहनते हैं, उसे बंडी कहते हैं। ये ज्यादातर नीले और काले रंग की बंडी पहनते हैं। कंधे पर एक कपड़ा जिसे पिछोरा कहा जाता है, उसे डालते हैं तथा सिर पर एक कपड़ा मूरेठा बांधते हैं।

माड़िया आदिवासी :-

माड़िया महिलाएँ कमर से लिपटी हुई साड़ी पहनती हैं, जो घुटनों से कुछ ऊपर रहती है। अपने गाँव में औरतें यही एक साड़ी पहने रहती हैं। लेकिन गाँव से बाहर जाते समय कमर के ऊपरी हिस्से पर साड़ी के छोर को लपेट लेती हैं। साथ ही तौलियाँ अथवा लूंगी भी कंधे से बाँधकर निकलती हैं।

माड़िया पुरुष कमर पर लपेटकर धोती पहनते हैं। यही एक कपड़ा इनका वस्त्र होता है। आवश्यकता पड़ने पर एक गमछा भी अपने कंधे पर डाल लेते हैं।

सहरिया सहरिया आदिवासी :-

सहरिया स्त्रियाँ लहंगा, घाघरा, लूगड़ा, पेट्या तथा सलूखा (ढीला, बड़ा ब्लाउज) पहनती हैं। ये वस्त्रों में विभिन्न रंग के वस्त्र पहनती हैं।

सहरिया पुरुष घुटनों तक लंबी धोती के साथ रंगीन कमीज पहनते हैं। ये सिर पर साफा बाँधते हैं।

भिलाला आदिवासी :-

भिलाला आदिवासी महिलाएँ बूटदार कपड़ों के लहंगे पहनती है। ये घुटनों तक लम्बे घाघरे भी पहनती हैं। जिसे ये लहंगे के ऊपर से लपेटकर सिर पर पल्ले की तरह लाकर ओढ़ती है। इनके वस्त्रों पर रंग-बिरंगे धागों से कढ़ाई की जाती है तथा दूसरे रंगों के कपड़ों के टुकड़ों से फूल-पत्ती आदि की आकृतियाँ बनाई जाती है।

भिलाला पुरुष सिर पर रंगीन साफा बाँधते हैं। घुटनों तक लम्बी धोती के साथ बंडी पहनते हैं।

भारिया आदिवासी :-

भारिया आदिवासी की महिलाएँ लाल रंग की सेंदरी साड़ियाँ और पोलका पहनती है। वृद्ध महिलाएँ साड़ी को घुटनों पर लपेटकर पहनती है। ये जरी अथवा रेशमी किनार वाली सादी साड़ियाँ पहनती है। ये लहंगे के साथ लंबा दुपट्टा भी ओढ़ती है।

भारिया पुरुष धोती, कुर्ता, बंडी और सिर पर पगड़ी पहनते हैं।

बैगा आदिवासी :-

बैगा आदिवासी गहनों और वस्त्रों में कम रुचि रखते हैं तथा ये सादगी पसंद होते हैं। महिलाएँ घुटनों तक लम्बी साड़ी पहनती है।

बैगा पुरुष लंगोटी पहनते हैं। इच्छा होने पर वे लंगोटी के साथ बंडी व साफा भी पहन लेते हैं।

कोरकू आदिवासी :-

कोरकू आदिवासी सादा कपड़े पहनना अधिक पसंद करते हैं। कोरकू महिलाएँ रंग-बिरंगे घाघरे और चोली पहनती हैं।

कोरकू पुरुष घुटनों तक सफेद धोती पहनते हैं। धोती के साथ वे सूती बंडी अथवा कुर्ता पहनते हैं।

अगरिया आदिवासी :-

यह गोंडों की उपजाति है। अगरिया महिलाएँ काँछ लगाकर साड़ी पहनती हैं। ये ढीला, बड़ा पोलका पहनती हैं। ये हरे, लाल, नीले, जामुनी आदि गहरे रंगों के कपड़े पहनना पसंद करती हैं।

अगरिया पुरुष घुटनों तक लम्बी धोती पहनते हैं। कंधे पर एक गमछ डालते हैं, जो सिर पर बाँधने के काम भी आता है। कभी-कभी सिर पर अलग कपड़ा बाँधते हैं तथा कंधे पर एक गमछ अलग से डालते हैं।

कोल आदिवासी :-

कोल आदिवासी महिलाएँ साड़ी और सलूखा पहनती हैं। ये कसे हुए छोटे ब्लाउज भी पहनती हैं। ये सादी और छीट दोनों प्रकार की साड़ियाँ पहनना पसंद करती हैं।

कोल पुरुष घुटनों तक धोती पहनते हैं। धोती के साथ कुर्ता और कुर्ते के ऊपर सदरी भी पहनते हैं। कंधे पर गमछ डालते हैं। इनकी सदरी का रंग काला, नीला, भूरा या कथई होता है। किंतु धोती सफेद रंग की ही पहनते हैं, कुर्ता भी ज्यादातर सफेद या हल्के रंग का ही होता है।

गारो आदिवासी :-

गारो महिलाएँ कपड़ों का टुकड़ा साये की तरह कमर के चारों ओर लपेटे रहती हैं, जिसे रिर्कींग कहा जाता है।

पुरुष साधारणतः नीले रंग का टुकड़ा जिसे 'गांडो' कहते हैं, को अपनी कमर में लपेटे रहते हैं। इसकी किनारी लाल रंग की होती है। इनमें सिर पर पगड़ी पहनने का रिवाज है।

स्त्री और पुरुष दोनों ही कानों में काँसे की बनी बालियाँ पहनते हैं। पुरुष 12 से 20 और महिलाएँ 50 बालियाँ तक पहनती हैं। अधिक बालियाँ पहनने के कारण महिलाओं के कान दो हिस्सों में फट जाते हैं। कान के ऊपरी वाले हिस्सों में छोटी तथा पतली बालियाँ पहनी जाती हैं। चाँदी की चूड़ियाँ और मूँगे की मालायें भी पहनी जाती हैं। अपने पति की मृत्यु होने पर औरतें गहने त्याग देती हैं।

खासी आदिवासी :-

खासी आदिवासियों में अनेक प्रकार की पोशाकें पहनी जाती हैं। ये मुख्य रूप से रंगीन पोशाक पहनना पसन्द करते हैं। खासी पुरुष बंडी (बिना आस्तीन का कोट) पहनते हैं। ये कमर में लंगोट लटकाते हैं। किंतु अब मिशनरियों के प्रभाव में आकर इनकी पोशाक में परिवर्तन होने लगा है। सफेद पगड़ी अब वृद्ध लोग पहनते हैं, इसकी जगह अब दो पलिया टोपी ने ले ली है।

खासी महिलाओं की पोशाकें सभी को आकर्षित करती हैं। ये रंग-बिरंगे वस्त्रों से पूरे शरीर को ढँके रहती हैं। "का-जम्पीयन नामक पोशाक वे पूरे शरीर में लपेटकर कमर में बांधे रहती हैं। इसका एक हिस्सा घुटने तक लटकता रहता है। वे भूरे रंग के रेशमी कपड़ों का एक टुकड़ा जिसे का-जैनवसेन कहते हैं पहने रहती हैं। का-जैनवसेन के ऊपर का-जैनकुप नामक पोशाक होती है। यह गले पर आगे और पीछे लटकती होती है। सिर पर कपड़ों का दूसरा टुकड़ा रहता है जिसे 'का-टैप-मोह-सलीह' कहते हैं।"¹² खासी महिलाएँ आभूषण प्रेमी भी होती हैं। सोने और मोती से बने गहने पहनती हैं।

ल्होटा आदिवासी :-

ल्होटा आदिवासियों की नृत्य व शिकार करने की पोशाके अलग-अलग हैं। स्त्रियाँ बाजू पहनती हैं। गले में हार पहनती है। ल्होटा पुरुष कमर में लंगोटी पहनते हैं, जिसे 'लेगटा' कहते हैं।

अंगामी आदिवासी :-

अंगामी आदिवासी महिलाओं की साड़ी नीले रंग की होती है। ये काली किनारीदार सफेद साड़ी भी पहनती है। अंगामी महिलाएँ बिना बांह की 'बोडिस' भी पहनती है। अविवाहित लड़कियाँ सिर पर बाल नहीं रखती है और विवाहित औरतों के बाल अच्छे से सजे होते हैं।

अंगामी पुरुष लाल या काले रंग की किनारी वाली धोती पहनते हैं। किनारी चौड़ी और पतली दोनों हो सकती है। इसके अलावा रंग-बिरंगी किनारी वाली धोती भी पहनी जाती है। वर्षा ऋतु में ये पत्ते के बने टोपे और कोट पहनते हैं।

अंगामी पुरुष और स्त्री उत्सव के समय अधिक रंग-बिरंगे वस्त्र पहनते हैं। स्त्री और पुरुष दोनों ही आभूषण प्रिय होते हैं। मूंगा, मोती तथा सीप की मालायें पहनी जाती है। पूर्वी अंगामी का सबसे प्रिय आभूषण हाथी दाँत का बना बाजू है।

भाषा

भाषा मानव की सबसे बड़ी ताकत है। भाषा की ताकत मनुष्य को पशु-जगत से पूर्णतया अलग करती है। भाषा के द्वारा ही मानव अपने मन के भावों को प्रकट कर पाता है। सामाजिक आदान-प्रदान या अंतःक्रिया में भाग लेता है, साहित्य का निर्माण करता है। भाषा के द्वारा ही मानव की मानवता महान् है। भाषा मनुष्य की वह ताकत है, जिसके द्वारा वह अपने विचारों को व्यक्त करता है।

श्री स्टर्टीवेण्ट ने भाषा को परिभाषित करते हुए कहा है कि- “भाषा मुँह से उच्चारण किए जाने वाले संकेतों की वह व्यवस्था है जिसके द्वारा एक सामाजिक समूह के सदस्य सहयोग तथा अन्तःक्रिया करते हैं।”¹³ इसमें भाषा को सामाजिक कार्यों में सहयोग प्रदान करने वाली बताया है।

भाषा-परिवार के आधार पर भारतीय आदिवासियों का वर्गीकरण निम्न ढंग से किया जाता है-

(अ) आस्ट्रिक भाषा परिवार :-

इस भाषा परिवार में मध्यम एवं पूर्वी भारत की कोल तथा मुण्डा समूह की भाषाएँ और बोलियाँ आती हैं। सन् 1951 की जनगणना के अनुसार इस प्रकार भाषाएँ बिहार, उड़ीसा, बंगाल और आसाम में प्रचलित संथाली, मुन्दारी हो, खरिया, भूमिज, गारो तथा खासी भाषाएँ या बोलियाँ हैं। कोर्कू भाषा मध्यप्रदेश और बरार के आदिवासी समूहों में बोली जाती है तथा साथरा और गाडवा भाषा उड़ीसा के आदिवासियों में बोली जाती है। इसके अलावा आसाम के खासियों तथा निकोबार द्वीप-निवासियों की भाषा भी आस्ट्रिक भाषा-परिवार में आती है। इन आदिवासियों का मौखिक साहित्य समृद्ध है तथा लिपिबद्ध करने का प्रयास किया जा रहा है।

(ब) द्राविड़ भाषा-परिवार :-

इस भाषा-परिवार में मध्य तथा दक्षिणी भारत के आदिवासी आते हैं। इस भाषा-परिवार में तेलगू-कन्नड़, तमिल और मलयालम के अतिरिक्त दो अन्य भाषाएँ भी आती हैं, जिनका विकास अधिक नहीं हुआ, पर इनको बोलने वाले सभ्यता की दृष्टि से अधिक उन्नत हैं। ये लोग, तू लूस तथा कुर्ग-निवासी कोटाग हैं। इनको आदिवासियों में नहीं रखा गया है।

गोंड आदिवासी मध्यप्रदेश, हैदराबाद तथा आंध्र राज्यों में निवास करते हैं तथा द्राविड़ भाषा बोलते हैं। उड़ीसा के कंध आदिवासी, बिहार और उड़ीसा के कुरुख और ओराँव तथा बिहार की राजमहल पहाड़ियों के माल्टो कुई भाषा बोलते हैं, जो कि इस भाषा-परिवार के अन्दर आती हैं। टोडा, मलेर, पोलिया, सवर, कोया, पनियन, चेंचू, कादर आदि आदिवासी भी द्राविड़ भाषा बोलते हैं।

(स) चीनी-तिब्बती भाषा-परिवार :-

इस भाषा-परिवार में नेपाल, दार्जिलिंग, त्रिपुरा, काचर, मणिपुर, पूर्वी कश्मीर, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, भूटान, उत्तर-पूर्वी बंगाल, असम तथा सिक्किम आदि स्थानों में निवास करने वाले आदिवासी आते हैं। हिमाचल की तलहटी तथा असम के ज्यादातर आदिवासी तिब्बती-चीनी तथा चीनी-बर्मी भाषाओं को बोलते हैं। आरंभ में इन भाषाओं को दो भागों में बाँटा गया था-तिब्बती चीनी तथा श्यामी चीनी। लेकिन अमेरिकी विद्वान रॉबर्ट रोजर ने इन्हें सात भागों में बाँटा है- साइनिटिक, पेनिक, बोडिक, बारिक, डाइक अथवा थाई, केरनिक, बर्मी आदि।

उपरोक्त वर्गीकरण थोड़ा-बहुत सैद्धांतिक ही कहा जा सकता है क्योंकि अनेक भारतीय आदिवासी ऐसी भी हैं जो अपनी मूल भाषा के अलावा एक-दो अन्य भाषाओं को भी बोल सकते हैं। उदाहरण के लिए मध्य क्षेत्र के अधिकतर आदिवासी

दो भाषाएँ—एक तो अपनी और दूसरी हिन्दुस्तानी या उड़िया या बंगाली भाषा बोलते हैं। इसी प्रकार ओरॉव और मुण्डा आदिवासी हिंदुस्तानी भाषा बोल लेते हैं तथा बंगाली भाषा को भी बोल लेते हैं।

सन् 1951 की जनगणना के अनुसार भारत और आदिवासियों की भाषाओं को चार प्रमुख भाषा-परिवार में विभक्त किया जा सकता है। जो निम्न है—

(अ) इण्डो-यूरोपियन अथवा आर्यन भाषा-परिवार :-

इस भाषा-परिवार के अन्तर्गत हिन्दी, बंगाली, पंजाबी, गुजराती, उड़िसा आदि उत्तरी भारत की प्रमुख भाषाएँ आती हैं।

(ब) द्राविड़ियन भाषा-परिवार :-

इस भाषा-परिवार के आदिवासी मध्य और दक्षिणी भारत में निवास करते हैं। इसमें कन्नड़, तमिल, तेलगू और मलयालम आदि प्रमुख साहित्यिक भाषाएँ आती हैं। इसके अलावा इसमें कुछ अन्य भाषाएँ भी आती हैं। जिनका अधिक महत्त्व नहीं है और दक्षिणी भारत तथा मध्य व पूर्वी भारत में बसने वाले आदिवासियों में बोली जाती है।

अन्य दो भाषा परिवारों का भारत में अधिक विकास नहीं हुआ है और ये पिछड़े हुए आदिवासियों में बोली जाती हैं। ये दो भाषा-परिवार निम्न हैं।

(स) आस्ट्रिक भाषा-परिवार :-

इसको दो शाखाओं में बाँटा गया है— एक आस्ट्रो-एशियाटिक शाखा दूसरी आस्ट्रोनेशियन शाखा। आस्ट्रो-एशियाटिक शाखा के अन्दर मध्य और पूर्वी भारत की कोल या मुण्डा बोलियाँ, निकोबार द्वीप-निवासियों की बोली तथा स्याम और इण्डोचीन में प्रचलित भाषाएँ आती हैं।

आस्ट्रोनेशियन शाखा के अन्दर इण्डोनेशिया की राष्ट्रभाषा तथा मलाया, माइक्रोनेशिया, मेलानेशिया तथा पॉलीनेशिया की भाषाएँ आती हैं।

(द) चीनी-तिब्बती भाषा-परिवार :-

इस भाषा-परिवार में हिमालय के दक्षिणी ढालों, उत्तरी पंजाब से भूटान, उत्तरी तथा पूर्वी बंगाल और आसाम में बसने वाले इण्डो मंगोलॉयड प्रजाति के लोगों में प्रचलित आदिवासी भाषाएँ आती हैं।

इस प्रकार भारतीय आदिवासियों में अनेक प्रकार की भाषाएँ बोली जाती हैं। इन भाषाओं का सबसे पहले प्रयास ईसाई धर्म प्रचारकों ने आदिवासियों से सम्पर्क करने के लिए किया था क्योंकि ये आदिवासियों को ईसाई धर्म में परिवर्तित करना चाहते थे। आदिवासियों का आधुनिक समाज से सम्पर्क होने के कारण उनका प्रादेशिक भाषाओं से भी सम्पर्क होने लगा। उदाहरण के लिए बंगाल में संथाल और मुंडा क्रमशः बंगाली और हिंदी समझ और बोल सकते हैं। भोटिया आदिवासी भी पहाड़ी और हिंदी बोलते हैं, लेकिन ये अपनी मूल भाषा को भूलते जा रहे हैं। इस प्रकार भाषा के द्वारा संस्कृति का प्रचार एक क्षेत्र में होता है। भाषा के प्रसार के द्वारा सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति पर भी प्रभाव पड़ता है।

त्योहार

भारत में आदिवासी समाज में अनेक प्रकार के त्योहार मनाए जाते हैं। हर समाज में पारिवारिक और सामाजिक खुशियाँ मनाने के लिए त्योहार का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वैसे ही आदिवासी समाज में त्योहारों को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। आदिवासी त्योहारों को मनाकर अपने देवी-देवताओं को प्रसन्न करते हैं। त्योहारों के समय ये अच्छे-अच्छे पकवान बनाकर देवी-देवताओं को भोग लगाते हैं। भारत के आदिवासियों के प्रमुख त्योहार निम्नलिखित हैं :-

चढ़ाई :-

ये त्योहार उत्तरप्रदेश की थारु आदिवासियों द्वारा मनाया जाता है। ये चैत और बैसाख वर्ष में दो बार आता है। मुख्य रूप से महिलाएँ गाँव के बाहर देवी-देवताओं की पूजा करके इस त्योहार को मनाती हैं।

हरेली :-

इसे बैगा और भील आदिवासी मनाते हैं। हरेली शब्द 'हरियाली' से बना है। इस त्योहार में परिवार वाले अच्छी फसल होने के लिए कुटकी दाई की पूजा करते हैं। यह त्योहार वर्षा ऋतु में बड़े ही उल्लास के साथ मनाया जाता है।

बिदरी :-

बैगा आदिवासी के गुनिया कोदो, कुटकी तथा कुछ अन्य अनाज को इकट्ठा करके आपस में मिला लेते हैं। फिर इन्हें सरई अथवा महुए के पेड़ के नीचे एक बरतन में उगा देते हैं। जहाँ पर ठाकुर देवता की मूर्ति रखी होती है। ठाकुर देवता को गाँव की रक्षा करने वाले देव के रूप में भी पूजा जाता है। गुनिया इसमें से कुछ बीज खेतों के बीचोंबीच बो देते हैं और ठाकुर देवता से अच्छी फसल होने की प्रार्थना करते हैं। यह त्योहार ग्रीष्म ऋतु की फसल पककर तैयार होने से पहले एक उत्सव के रूप में मनाया जाता है।

भगोरिया :-

भील आदिवासियों का प्रसिद्ध नृत्य है भगोरिया। फागुन माह में होली के त्योहार से पहले इसे मनाया जाता है। इस त्योहार पर भगोरिया हाट लगाया जाता है। जिसमें कपड़े, जेवर, बरतन आदि सामानों की बिक्री की जाती है। इस त्योहार पर आदिवासी हाट में गोदना गोदवाते हैं। विवाह योग्य लड़के-लड़कियाँ अपने माता-पिता के साथ हाट में आते हैं। लड़के-लड़कियाँ नए कपड़ें, जेवर पहनकर टोलियों के रूप में नाचते गाते हाट बाजार पहुँचते हैं। इसी नृत्य में विवाह तय किये जाते हैं। भगोरिया नृत्य में लड़के-लड़कियाँ एक साथ नाचते हैं। नाचते समय ही ये एक-दूसरे को पसंद कर लेते हैं। फिर ये अपने-अपने साथी के साथ हाट से बाहर चले जाते हैं। इस हाट में युवक-युवतियाँ अपनी मनपसंद खरीददारी करते हैं।

ख्यानिया :-

रक्षाबंधन से सात दिन पहले ये त्योहार अगस्त माह में मनाया जाता है। स्त्री-पुरुष बाँस की टोकरियों में मिट्टी भरकर उसमें गेहूँ बो देते हैं। सात दिन में गेहूँ उग आता है। रक्षाबंधन के दूसरे दिन गेहूँ को काटकर एक-दूसरे को देते हैं, इससे भाईचारा और प्रेमभाव बढ़ता है। इस त्योहार पर अच्छी फसल होने की प्रार्थना की जाती है।

दशेहरा :-

इस त्योहार का नाम हिंदू दशहरा से मिलता-जुलता है, परन्तु यह त्योहार दशहरा से बिल्कुल भिन्न है। अक्टूबर के महिने में दशेहरा का त्योहार बड़े उल्लास के साथ मनाया जाता है। यह त्योहार अच्छी फसल के लिए मनाया जाता है। अक्टूबर माह में वर्षा ऋतु का समापन हो जाता है तथा शरद ऋतु का आगमन होता है। इसके साथ ही किसान खेतों में कार्य करना शुरू कर देते हैं।

मेला मडई :-

मडई शब्द की उत्पत्ति हिंदी के 'मंडप' शब्द से हुई है। आदिवासी समाज में यह त्योहार दोगुन देव और चंडी देवी के विवाह के रूप में मनाया जाता है। ये विवाह का मंडप या मडई बनाते हैं और नाचने-गाने वालों को बुलाते हैं। नाचने गाने वालों को चंडी-दल नाम से जाना जाता है। वर्षा ऋतु की फसल पककर तैयार होने पर यह त्योहार मनाया जाता है। दीवाली के बाद मडई मेला लगता है। जिसका उद्घाटन गाँव का मुखिया करता है।

गल :-

सभी आदिवासी अपने रीति-रिवाजों से त्योहार मनाते हैं। गल त्योहार केवल भील आदिवासियों द्वारा ही मनाया जाता है। इस त्योहार को मनाने के लिए होली के कई सप्ताह पहले ही तैयारियाँ शुरू हो जाती हैं, ये गल देवता की पूजा करते हैं। भीलों में यह माना जाता है कि गल देवता की पूजा करने से वे खुश होकर रोग, कष्ट, मुसीबतों से उनकी रक्षा करते हैं।

चैत गल :-

यह त्योहार अक्टूबर महीने में शरद पूर्णिमा से शुरू होता है और नवम्बर में कार्तिक पूर्णिमा तक चलता है। इस त्योहार में एक खुले मैदान में लकड़ी का एक ऊँचा खंभा गाड़ा जाता है। इस लकड़ी के खंभे को तेल मलकर चिकना किया जाता है। इस खंभे के ऊपरी छोर पर एक पोटली बाँध दी जाती है। जिसमें रूपए-पैसे, मिठाई और नारियल बंधे होते हैं। उत्सव आरम्भ होने पर अविवाहित लड़के इस खंभे पर चढ़कर पोटली को खोलने का प्रयास करते हैं। खंभे पर तेल लगा होने के कारण उस पर चढ़ना बहुत मुश्किल होता है। गाँव की लड़कियाँ खंभे को घेरकर खड़ी रहती हैं। जब कोई लड़का खंभे पर चढ़ने की कोशिश करता है, तो लड़कियाँ उसे पतली छड़ियों से मारती हैं। जो लड़का खंभे पर चढ़कर पोटली खोल लेता है, वही विजयी होता है। विजेता को

गाँव के लड़के कंधों पर बैठकर जुलूस निकालते हैं। मुख्य रूप से अविवाहित लड़के-लड़कियों द्वारा इस त्यौहार को मनाया जाता है।

फगुआ :-

होली के समय फगुआ त्योहार को मनाया जाता है। यह त्योहार तीन दिन तक चलता है। इस त्योहार में सभी आयु-वर्ग के लोग मिलकर नृत्य करते हैं। इस नाच को फगुआ नाच कहा जाता है। यह भगोरिया नृत्य की तरह ही होता है

पर्व और त्योहार मनाने से जीवन में उत्साह का संचार होता है। प्रत्येक आदिवासी समाज में त्योहार बड़े हर्षोल्लास के साथ मनाए जाते हैं।

परम्पराएँ

वैदिक ग्रंथों में सोलह संस्कारों का वर्णन मिलता है। किंतु हमारे जीवन में सबसे प्रमुख तीन प्रकार के संस्कार होते हैं- जन्म, विवाह और मृत्यु। ये तीनों संस्कार मनुष्य के जीवन पर प्रभाव डालते हैं। जब शिशु जन्म लेता है, तब उसके जीवन का शुभारंभ होता है। शिशु जब बड़ा होता है तो उसका विवाह किया जाता है। विवाह के पश्चात् उसके शिशु के जन्म के रूप में दूसरी पीढ़ी का जन्म होता है। शिशु के जन्म पर खुशियाँ मनाई जाती है तथा विवाह को उत्सव की तरह मनाया जाता है। मृत्यु परम्परा का स्थान सबसे अंत में आता है। आदिवासी समुदाय द्वारा भी जन्म, विवाह और मृत्यु संस्कारों को माना जाता है तथा सारी परम्पराएँ निभाता है आदिवासी समुदाय की प्रमुख परम्पराएँ निम्नलिखित हैं-

जन्म संस्कार :-

आदिवासी समुदायों में जन्म के संबंध में अलग-अलग परम्पराएँ हैं। आदिवासियों में जन्म से सम्बन्धित अलग-अलग कथाएँ भी प्रचलित है। किंतु सभी धारणाओं और कथाओं का सारांश एक ही है। सामान्यतया सभी आदिवासी समाज

यह मानते हैं। कि माँ के पेट में आने से पहले ईश्वर बच्चे को स्वयं बनाता है। जैसे-दंडामी माड़िया मानते हैं कि भगवान यह तय करता है कि किस आत्मा को बच्चे के रूप में किस घर में पैदा होने के लिए भेजना है। तत्पश्चात् वह अपने एक दूत को उस घर में भेजता है। इस दूत को जनमबीमा कहा जाता है। जिस समय जनमबीमा उस घर में आता है, ठीक उसी समय लिंगो डेंगो लिंग और बोड़खाँ बेट शक्तियाँ आपस में मिलती है। उसी समय भगवान सूप से फटक कर आत्मा को माँ के पेट में भेज देता है। यही आत्मा गर्भ के रूप में माँ के पेट में पलती है और नो महिने पश्चात् शिशु के रूप में जन्म लेती है।

आदिवासियों में शिशु के जन्म के समय गुनिया को बुलाया जाता है। जो किसी भी प्रकार की कठिनाई को झाड़-फूँककर दूर करता है। गुनिया जाँच करके अपने अनुभव के आधार पर यह भी बता देता है कि शिशु का जन्म कब होगा तथा जन्म देने वाली माँ को कितनी पीड़ा सहनी पड़ेगी।

नामकरण संस्कार :-

नाम रखे जाने से मनुष्य को दुनिया में अपनी एक नई पहचान मिलती है। शिशु के जन्म के बाद नाम रखा जाना प्रत्येक समाज में महत्त्वपूर्ण होता है। इसी कारण नामकरण के कार्य को परम्परा के रूप में मनाया जाता है। आदिवासी परिवार शिशु के नामकरण संस्कार के दिन अपने सगे संबंधियों और गाँववासियों को अपने घर पर आने का निमन्त्रण देते हैं। इस अवसर पर सभी अतिथियों को महुए से बना पेय पिलाया जाता है। शिशु के नाम रखने का कार्य गुनिया करता है। गुनिया शिशु के नाम रखने के संबंध में घर के बड़े-बुजुर्गों से भी सलाह लेता है। बच्चे के नामकरण के बाद सभी अतिथियों को उपहार देकर विदा किया जाता है।

भील आदिवासी समाज में नामकरण परम्परा अलग तरीके का होता है। शिशु के जन्म के तीसरे दिन माँ सुबह उठकर नहाती-धोती है। फिर वह अपने घर के मुख्य द्वार पर आकर खड़ी हो जाती है। इस समय उसकी दृष्टि पहली बार जिस वस्तु

पर पड़ती है, उसी वस्तु के आधार पर शिशु का नाम रख दिया जाता है। इस प्रकार देखा जाए तो भीलों में अपने शिशु का नाम रखने का अधिकार माँ को होता है।

बच्चे की शारीरिक विशेषताओं जैसे-शरीर का रंग, बालों का रंग, आँखों का रंग, कद-काठी आदि के आधार पर भी नामकरण कर दिया जाता है।

विवाह संस्कार :-

प्राचीन समय में आदिवासी समुदाय में बाल-विवाह की प्रथा थी। तब वे सात-आठ वर्ष की उम्र में ही बच्चे का विवाह कर दिया करते थे। आधुनिक काल में यह प्रथा समाप्त हो गई है। अब बच्चों के बालिग हो जाने पर ही उनका विवाह किया जाता है। सभी आदिवासी समुदायों में विवाह की परम्परा अलग-अलग तरीके से निभाई जाती है। आदिवासियों में दो प्रकार की विवाह पद्धति प्रचलित हैं-

1. माता-पिता द्वारा तय विवाह

2. युवाओं द्वारा स्वयं तय किया गया विवाह

1. माता-पिता द्वारा तय किया गया विवाह :- इस प्रकार के विवाह का प्रचलन सभी आदिवासी समुदायों में है। इसमें माता-पिता लड़के के लिए योग्य लड़की और लड़की के लिए योग्य लड़के की तलाश करते हैं। माता-पिता आपस में मिलकर लड़का और लड़की का विवाह तय करते हैं।

दंडामी माड़िया आदिवासियों में लड़की को अवसर दिया जाता है कि वह लड़के से मिलकर उसे परख ले। यदि लड़की को लड़का पसंद आता है तो रिश्ता पक्का समझा जाता है। यदि लड़की को लड़का पसंद नहीं आता है तो वह अपने माता-पिता से इस बारे में स्पष्ट बता देती है। इस पर लड़की के माता-पिता लड़की के मना करने का कारण पूछते हैं। यदि उन्हें लगता है कि लड़की का निर्णय सही है, तो वे उस लड़के के सम्बन्ध को मना करके दूसरा रिश्ता ढूँढना आरम्भ कर देते हैं

2. युवाओं द्वारा स्वयं तय किया गया विवाह – कुछ आदिवासी समुदायों में युवाओं द्वारा अपने लिए जीवनसाथी चुनने की स्वतंत्रता रहती है। इस तरह की व्यवस्था भील आदिवासियों के भगोरिया उत्सव में देखी जाती है।

भील आदिवासियों के जीवन में भगोरिया उत्सव का अत्यधिक महत्त्व है। इसी उत्सव में विवाह योग्य युवक और युवतियाँ एक-दूसरे से मिलते हैं तथा साथ-साथ नृत्य करते हैं। एक-दूसरे को पसंद करते हैं तथा एक-दूसरे को जीवन-साथी के रूप में चुनते हैं। भगोरिया उत्सव के समय मेले की तरह एक हाट लगता है। इस मेले में युवा अपने माता-पिता के साथ आते हैं। मेले के बीचों बीच एक नृत्य का आयोजन किया जाता है। जिसमें सभी युवक और युवतियाँ साथ-साथ नृत्य करते हैं। नृत्य करते समय युवक अपने हाथों में धनुष-बाण रखते हैं। नृत्य करने वाले युवक-युवतियों के मध्य एक युवक अपने हाथ में एक बाँस रखे रखता है, जिसमें लकड़ी की चिड़ियाँ बंधी होती हैं। वह धागे से चिड़ियों की चोंच और दुम बारी-बारी से खींचता है जिससे चिड़ियाँ फुदकती हुई प्रतीत होती है।

नृत्य के दौरान यदि कोई युवक और युवती आपस में एक-दूसरे को पसंद कर लेते हैं तो युवक-युवती को गुलाल लगाकर इस बात को बता देते हैं। इसके बाद युवक के परिवार वाले युवती के घर एक तीर और एक चोली भेजते हैं। लड़की के परिवार वाले यदि चोली रख लेते हैं और तीर लौटा देते हैं तो यह मान लिया जाता है कि लड़की वालों को यह रिश्ता मंजूर है। यदि तीर रख लिया जाता है और चोली लौटा दी जाती है तो यह रिश्ता अस्वीकार करना माना जाता है। सामान्यतया भगोरिया उत्सव में लड़का और लड़की द्वारा एक-दूसरे को पसंद कर लेने के बाद विवाह कर दिया जाता है।

विवाह स्तम्भ :-

प्रायः सभी आदिवासियों में विवाह के अवसर पर घर के आँगन में विवाह स्तम्भ खड़ा किया जाता है। कोरकू आदिवासियों में विवाह स्तम्भ को खाम कहा जाता है। यह आम, महुआ या हल्दू लकड़ी का बनाया जाता है। इस पर फूल-पत्ते,

बेल-बूटे, गोत्र चिह्न तथा गोदना की आकृतियाँ भी बनाई जाती हैं। कोरकुओं द्वारा माना जाता है कि खाम पर गोत्र चिह्न अथवा गोदना की आकृतियाँ बनाने से उनके पूर्वज खुश होते हैं तथा विवाह की परम्परा बिना किसी विघ्न के पूरी हो जाती है।

भारिया आदिवासियों में हल्दू वृक्ष की लकड़ियों से स्तम्भ बनवाया जाता है। ये विवाह स्तम्भ पर दीपक रखने का स्थान तथा ज्यामितीय आकृतियाँ बनाते हैं।

गोंड आदिवासी इसे खांभ अथवा खांब कहते हैं। गोंडों में यह मान्यता प्रचलित है कि पहला खांभ उनके प्रमुख भगवान महादेव ने स्वयं बनाया था। यह स्तम्भ सामान्यतया साल की लकड़ी का बनाया जाता है। इसमें पशु-पक्षी, मानव आदि के चित्र बनाए जाते हैं।

बैगा आदिवासी विवाह स्तम्भ को सजन कहते हैं। ये विवाह स्तम्भ बनाने के लिए चार वृक्ष (चार-चिरौंजी वाला वृक्ष) का उपयोग करते हैं। इनका मानना है कि चार वृक्ष में दूल्हा देव और दूल्ही देवी का वास रहता है। विवाह स्तम्भ के ऊपरी भाग में वे मंदिर के कलश जैसी आकृति तथा दूल्हा देव-दूल्ही देवी के चित्र बनाते हैं।

मृत्यु संस्कार :-

सभी आदिवासी समुदायों में यह मान्यता है कि यमराज मृत्यु का देवता है। यमराज सभी व्यक्तियों की आयु का लेखा-जोखा रखता है तथा आयु पूरी हो जाने पर व्यक्ति को अपने पास बुला लेता है। दाह-संस्कार करने की परम्परा लगभग सभी आदिवासी समुदायों में पाई जाती है। परिवार के किसी सदस्य की मृत्यु हो जाने पर गाँव वालों तथा अन्य रिश्तेदारों के पास इसकी सूचना भेजी जाती है। सभी व्यक्ति एकत्र होकर मृतक को श्मशान भूमि में ले जाते हैं। जहाँ विधि-विधानपूर्वक उसके शव को अग्नि में जलाकर उसका दाह संस्कार कर दिया जाता है।

आदिवासियों में मृत्यु के बाद स्मृति-स्तम्भ लगाने की भी परम्परा है। यह स्मृति स्तम्भ व्यक्ति विशेष की मृत्यु के बाद उसकी स्मृति में लगाया जाता है। कोरकू

आदिवासी स्मृति स्तम्भ को मंडा, मुंडा, मांडो अथवा गाथा पटिया कहते हैं। यह स्मृति स्तम्भ आम, सागौन अथवा सेमहल की लकड़ी का बनाया जाता है। इस स्मृति-स्तम्भ पर प्रायः चंद्रमा, सूरज तथा घुड़सवार के चित्र बनाए जाते हैं।

दंडामी माड़िया आदिवासियों में अपने पूर्वजों की याद में स्मृति स्तंभ लगवाते हैं। ये इन स्मृति-स्तम्भों को बीत, उरुसकाल, खंभ तथा मट्ट आदि कहते हैं। बीत स्तम्भ को छोटे-छोटे पत्थरों के ढेर से बनाते हैं। उरुसकाल को एक फीट से पंद्रह-बीस फीट लम्बे लम्बे शिला खंड पर बनाते हैं। खंभ को लकड़ी अथवा पत्थर से बनाते हैं। मट्ट मठ के आकार का मंदिर जैसा स्तम्भ होता है।

मुरिया आदिवासियों में स्मृति स्तंभ को गायत्री खंभ कहते हैं। ये स्तम्भ महुआ की लकड़ी से बनाया जाता है। स्मृति स्तम्भ की बेल-बूटे, फूल-पत्ते तथा ज्यामितीय आकृतियों से सजावट की जाती है। कुछ स्मृति स्तंभ पर त्रिशूल और मगरमच्छ का सिर भी बना होता है।

भील-भिलाला आदिवासियों में किसी की अस्वाभाविक मृत्यु हो जाने पर उसकी स्मृति में स्मृति-स्तम्भ लगाया जाता है। अस्वाभाविक मृत्यु से तात्पर्य है कि यदि किसी को शेर अथवा किसी जंगली जानवर ने मार दिया हो, पानी में डूबकर मरा हो, आग से जलकर मृत्यु हुई हो, पेड़ से गिरने से मृत्यु हुई हो अथवा लड़ाई-झगड़ों में मृत्यु हुई हो। इनमें मृतक को जलाने और दफनाने दोनों ही परम्परा पाई जाती है। भील स्मृति स्तम्भ को गाथा कहते हैं। गाथा लकड़ी और पत्थर दोनों के बनाए जाते हैं। गाथा में तलवारधारी वीर पुरुष, घुड़सवार युद्ध के दृश्य, शिकार के दृश्य आदि बनाए जाते हैं। इस पर सूरज और चांद की आकृतियाँ भी बनाई जाती हैं।

इस प्रकार आदिवासी समुदाय सदियों से अपनी परम्पराओं को बनाए रखे हुए हैं।

आदिवासी समाजों की समस्याएँ

सभी मानव समाज कभी भी समस्या विहीन नहीं रहे। किसी न किसी रूप में इनकी समस्याएँ बनी हुई हैं। भारत के आदिवासियों की समस्याएँ बहुत ही कठिन हैं, और उनके रीति-रिवाज, रहन-सहन, सभ्यता, आचार-विचार, संस्कृति, धर्म, ललित कला आदि में सुधार की जबरदस्त जरूरत है। सभ्य समाज से सम्पर्क में आने के कारण उनके सामने अनेक समस्याएँ खड़ी हो गई हैं। बाहरी संस्कृति के सम्पर्क में आने के कारण वे अपनी संस्कृति का त्याग करते जा रहे हैं।

श्री मजूमदार और मदान के अनुसार आदिवासियों की समस्याओं को निम्नलिखित दो भागों में बाँटा जा सकता है।

- (अ) वे समस्याएँ जो भारत के आदिवासियों और दूसरे सभी ग्रामीण समुदायों में समान हैं।
- (ब) वे समस्याएँ जो केवल आदिवासी समाज में ही पाई जाती हैं। इस वर्ग की समस्याएँ सांस्कृतिक, धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक हैं।

अतः हमारे लिए इन समस्याओं के सभी पहलू पर गौर करना अति आवश्यक है। आदिवासियों की समस्याओं के अनेक कारण निम्नलिखित हैं—

(1) ईसाई मिशनरी :-

ईसाई मिशनरियों ने आदिवासी बहुल प्रदेशों में जाकर अनेक सेवा-कार्यों का आयोजन किया, जिससे उनके जीवन में आशा व ज्ञान के प्रकाश का संचार हुआ लेकिन इसके कारण आदिवासी समाजों को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा। सेवा कार्यों की आड़ में ईसाई मिशनरियों ने ईसाई धर्म का प्रचार करना शुरू कर दिया और इसके लिए उन लोगों ने आदिवासियों की अज्ञानता व पिछड़पन का पूरा फायदा उठाया। इससे आदिवासियों के जीवन में संस्कृतीकरण की अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो गईं।

(2) जंगलों में निवास स्थान :-

भारत के अधिकांश आदिवासी दुर्गम स्थानों पर निवास करते हैं। पहाड़ी भागों तथा घने जंगलों में रहने के कारण ये यातायात व संचार के साधनों से बहुत दूर हैं। अधिक दूर रहने के कारण आदिवासियों को स्वयं अपने जीवन यापन के साधन जुटाने पड़ते हैं, जो अपने आप में एक समस्या है। यातायात के अभाव में इनकी समस्याओं का निराकरण करना बहुत मुश्किल है।

(3) नवीन शासन व्यवस्था :-

अंग्रेजों के शासनकाल से ही आदिवासी बहुल क्षेत्रों में नवीन शासन व्यवस्था को लागू किया गया। जिससे अनेक प्रशासन, वनों के अफसर, कचहरी से सम्बन्धित अधिकारी, सुधार अधिकारी आदि आदिवासी क्षेत्रों में गये। इनमें से अधिकांश अधिकारी आदिवासियों की संस्कृति से अनभिज्ञ थे। उन्होंने अपने व्यवहार से आदिवासियों में असंतोष उत्पन्न कर दिया। जिससे वे लोग न तो नवीन शासन व्यवस्था को ग्रहण कर पाए न ही उनको छोड़ सके।

(4) बाहरी समूहों द्वारा शोषण :-

आदिवासियों के जीवन में बाहरी स्वार्थी समूहों द्वारा भी समस्याएँ भी उत्पन्न हुईं। विभिन्न बाहरी समूह जैसे महाजन, ठेकेदार, व्यापारी आदि आदिवासी लोगों के पिछड़ेपन और अशिक्षा से लाभ उठाकर उन्हें लगातार अपनी ओर आकर्षित करने में लगे हुए हैं। इसके कारण विभिन्न आर्थिक और सामाजिक समस्याएँ उत्पन्न हो गई हैं। उदाहरण के लिये, व्यापारियों ने इनके समाज में पाउडर लिपिस्टिक का प्रचलन तो कर दिया, पर आदिवासियों की गरीबी ने इसी के आधार पर पारिवारिक तनाव उत्पन्न हो गया। परिवार में उन पत्तियों की स्थिति गिर गई जो गरीबी के कारण अपनी पत्नी के लिए पाउडर-लिपिस्टिक लाकर नहीं दे सकते हैं।

(5) आधुनिक सभ्य समाज से संबंध :-

आदिवासियों के जीवन पर एक ओर तो हिंदू सभ्यता और दूसरी ओर पाश्चात्य सभ्यता का गहरा प्रभाव पड़ा है। वास्तव में आदिवासियों के जीवन में समस्याएँ उसी दिन से शुरू हो गईं जबसे इन्होंने आधुनिक सभ्य समाज से सम्पर्क स्थापित किया। ये दोनों ही संस्कृति आदिवासियों के लिए विदेशी हैं, जिससे पहले वे बिल्कुल अनजान थे। भोले-भाले आदिवासी इनकी चमक-दमक से आकर्षित हो गए। पर दोनों के मध्य अंतर की खाई इतनी ज्यादा थी कि वे इसके साथ अनुकूलन नहीं बैठ पाए। इससे अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो गईं।

(6) आदिवासी क्षेत्रों में खान, वन-सम्पत्ति आदि का होना :-

आदिवासी क्षेत्रों में खान, चाय बगान, वन सम्पत्ति होने के कारण इनके आस-पास, मिल, खान से सम्बन्धित कार्य तथा अनेक उद्योग धंधे शुरू हो गए। उद्योग धंधे शुरू होने के कारण नागरिक संस्कृति का विकास हुआ और उसके पास में रहने के कारण या वहाँ के उद्योगों में श्रमिक के रूप में कार्य करने के कारण आदिवासियों को नागरिक संस्कृति के सम्पर्क में आना पड़ा। इससे इनकी संस्कृति धीरे-धीरे विलीन होने लगी। इससे मालिकों ने इनका शोषण करना आरम्भ कर दिया, जिससे एक गंभीर समस्या उत्पन्न हो गई।

आदिवासियों की समस्याएँ निम्न लिखित हैं :-

- (1) आर्थिक समस्याएँ
- (2) सामाजिक समस्याएँ
- (3) धार्मिक समस्याएँ
- (4) सांस्कृतिक समस्याएँ

(5) स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ

(6) शिक्षा संबंधी समस्याएँ

(1) आर्थिक समस्याएँ :-

भारत के अधिकांश आदिवासी आर्थिक समस्या से जूझ रहे हैं। अन्य नागरिकों की तुलना में इनकी आर्थिक स्थिति अधिक खराब है। आदिवासियों के सीमित आर्थिक साधन थे तथा उनमें किसी भी प्रकार का सुधार न होने के कारण इनकी अर्थव्यवस्था अधिक खराब होती गई। आदिवासियों की प्रमुख आर्थिक समस्याएँ निम्नलिखित हैं-

(अ) स्थानान्तरिक कृषि के समस्या :-

आदिवासी लोग प्रायः खेती पर निर्भर रहते हैं। लेकिन इनमें प्रायः सभी लोग आदिम तरीके से कृषि करते हैं, जिसे स्थानान्तरित कृषि कहते हैं। स्थानान्तरित कृषि से जमीन खराब होने के साथ ही साथ पैदावार भी कम होती है। फिर भी आदिवासी इसे छोड़ना नहीं चाहते थे। इससे उन्हें भूखे मरना पड़ता था। लेकिन आज यह समस्या गंभीर रूप से इनके सामने है।

(ब) भूमि-व्यवस्था-सम्बन्धी समस्या :-

प्रारम्भ से ही आदिवासियों का भूमि पर अधिकार था। जिसका प्रयोग वे मनचाहे तरीके से करते थे। परंतु अब वन-विभाग के नए कानूनों ने इनकी आजादी को छीन लिया है, अब वे मनचाहे तरीके से जंगल को काटकर स्थानान्तरित खेती नहीं कर सकते हैं। नई भूमि-व्यवस्था द्वारा दी गई भूमि पर बसकर आदिवासियों द्वारा खेती नहीं की जाती क्योंकि ये खेती को धर्म का अंग मानते हैं और जमीन को जोतकर खेती करने से डरते हैं। इस प्रकार भूमि पर इनका अधिकार नहीं रहा।

(स) अर्थव्यवस्था-सम्बन्धी समस्या :-

वर्तमान समय में आदिवासी अर्थव्यवस्था में बहुत से परिवर्तन हुए हैं। उनमें प्रमुख परिवर्तन यह है कि वे लोग मुद्रा रहित से मुद्रा सहित अर्थ-व्यवस्था में आ रहे हैं, व्यापारी वर्ग, मादक वस्तुओं के विक्रेता आदि सीधे-सीधे आदिवासियों के क्षेत्रों में आकर बस जाते हैं तथा उनका शोषण करते हैं। 'रेसेस एण्ड कल्चर्स ऑफ इंडिया' पुस्तक में आदिवासियों में व्यापार करने वाले एक एजेण्ट की रिपोर्ट का वर्णन करते हुए डॉ. डी.एन. मजूमदार ने लिखा है कि- "क्रांतिवर्धक औषधियों, पाउडर, लिपिस्टिक, साबुन और तेल की माँग कम से कम 800 प्रतिशत अधिक बढ़ गई है और गर्भ निरोधक वस्तुओं की माँग तो इतनी अधिक बढ़ गई है कि सम्पूर्ण खासी भूमि में रबड़ की वस्तुओं का ब्लैक मार्केट होने लगा है।"¹⁴ व्यापारी वर्ग इस बात का अधिक लाभ उठाते हैं।

(द) ऋणग्रस्तता की समस्या :-

व्यापारी वर्ग तथा साहूकारों ने आदिवासियों के क्षेत्रों में प्रवेश करके इनकी अज्ञानता व अशिक्षा का लाभ उठाकर इनका अत्यधिक शोषण किया है। अशिक्षित आदिवासियों को रुपया उधार देकर ये इनसे मनमाना ब्याज लेते हैं। कर्ज न चुका पाने पर ये इनकी जमीन को हड़प लेते हैं। पीढ़ी-दर-पीढ़ी इनका कर्जा चलता रहता है। जिससे अनेक पीढ़ियाँ कर्ज के बोझ में दबी रहती। ऋणग्रस्तता से सम्बंधित ये समस्या आदिवासियों की प्रमुख समस्या है।

(य) वनों से सम्बन्धित समस्या :-

पहले आदिवासियों का जंगल पर पूरा अधिकार होता था और वे वन-सम्पत्तियों के मालिक हुआ करते थे। जंगली वस्तुओं, पशु-पक्षियों, वृक्ष आदि सभी चीजों पर इनका पूरा हक होता था। वर्तमान में इन सभी चीजों पर सरकार का नियंत्रण हो गया है और ठेकेदारों ने लकड़ी या कोयला निकालने का काम भी अपने हाथ में ले लिया है। ये ठेकेदार आदिवासियों के भोलेपन का लाभ उठाकर उनका शोषण करते हैं।

कठिन मेहनत करने के बाद भी उन्हें उतनी मजदूरी नहीं मिल पाती है जिससे वे अपना जीवन यापन अच्छे से कर सकें।

(र) औद्योगिक श्रमिकों की समस्या :-

कारखानों, चाय के बगीचों तथा खानों में काम करने वाले आदिवासी मजदूर अपना जीवन-यापन भी ठीक से नहीं कर पाते हैं। इनकी हालत और भी अधिक बदतर है। कठिन मेहनत करने के बाद भी इन्हें उतनी मजदूरी नहीं दी जाती है, जिसके वे हकदार हैं। आवास आदि की व्यवस्था नहीं होने और काम करने की दशा भी विचारणीय है। कभी-कभी परेशान होकर ये अपने गाँवों की ओर लोट जाते हैं। “वास्तव में असंगठित और अस्थिर जनजातीय श्रमिक आज अपने उचित अधिकारों को भी नहीं जानते और इसी कारण वे पशुओं की भाँति काम करते रहते हैं और पशु ही समझे जाते हैं, पशुओं के नमूने की तरह ही दिखाए जाते हैं और उसी तरह नियन्त्रित भी होते हैं।”¹⁵ उद्योग प्रायः नगरों में ही होते हैं। अशिक्षित होने के कारण ये नगरों की कुरीतियों को सबसे पहले अपनाते हैं जो इनकी समस्याओं का कारण बन जाती है।

(2) सामाजिक समस्याएँ :-

आधुनिक सभ्य समाज के सम्पर्क में आने के कारण आदिवासी समाज में विभिन्न समस्याएँ उत्पन्न हो गई हैं। विभिन्न सामाजिक समस्याएँ निम्नलिखित हैं-

(अ) युवा गृहो की समाप्ति :-

आधुनिक सभ्य समाज की संस्कृतियों ने आदिवासियों के मन में युवागृह के लिए हीनता का भाव भर दिया है, ये युवागृह लड़के और लड़कियों के मनोरंजन के केंद्र ही नहीं थे बल्कि उनके सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक जीवन तथा कर्तव्यों के संबंध में उन्हें शिक्षा देने की महत्त्वपूर्ण संस्था भी थी। युवा गृहों की समाप्ति से आदिवासियों के जीवन में बहुत ही हानिकारक प्रभाव देखे जा सकते हैं।

(ब) वैवाहिक नैतिकता का पतन :-

आदिवासी समाजों में सभ्य समाज के सम्पर्क में आने से विवाह-पूर्व और विवाह के बाहर यौन संबंध बनाए जाते हैं। जिससे तलाक की संख्या भी इनमें बढ़ती जा रही है।

(स) बाल-विवाह :-

आदिवासी समाजों में विवाह अधिक आयु में ही होता था, किंतु हिंदुओं के सम्पर्क में आने के कारण उनमें भी बाल-विवाह का प्रचलन बढ़ता जा रहा है। बाल-विवाह स्वयं ही एक सामाजिक समस्या है, जिसे हिन्दू समाज सदियों से झेलता आ रहा है।

(द) कन्या मूल्य :-

धन की महिमा आज आदिवासियों के जीवन में इस हद तक बढ़ गई है कि पहले जो कन्या-मूल्य वस्तुओं के रूप में दिया जाता था, वही अब हिन्दुओं के प्रभाव में आने के कारण धन के रूप में मांगा जा रहा है। दिनों-दिन वह भी इतना बढ़ता जा रहा है कि साधारण लोगों के लिए विवाह करना कठिन होता जा रहा है। इसी कारण कन्या-हरण की समस्या भी बढ़ती जा रही है।

(र) वेश्यावृत्ति, गुप्त रोगों का बढ़ना :-

आदिवासियों की गरीबी व भोलेपन का फायदा उठाकर तथा धन का लोभ दिखाकर विदेशी व्यापारी, ठेकेदार, एजेण्ट आदि उनकी महिलाओं के साथ अनुचित यौन सम्बन्ध बना लेते हैं। जिसके कारण आगे चलकर वेश्यावृत्ति, गुप्त रोग जैसी सामाजिक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं जो आदिवासी मजदूर औद्योगिक केंद्रों में कार्य करने जाते हैं वे भी वेश्यावृत्ति आदि में फँस जाते हैं और गुप्त रोगों की चपेट में आ जाते हैं और जब वे अपने गाँव जाते हैं तो उन रोगों को अपनी महिलाओं में भी फैला देते हैं।

(3) धार्मिक समस्याएँ :-

आदिवासियों पर धार्मिक क्षेत्र में दो धर्म, हिन्दू और ईसाई धर्म का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। एक ओर भील और गोंड हिंदू धर्म से प्रभावित है तो दूसरी ओर बिहार तथा आसाम के आदिवासी ईसाई धर्म से प्रभावित है। आदिवासियों में धर्म को विभिन्न सामाजिक और आर्थिक समस्याओं को सुलझाने के साधन के रूप में काम लिया जाता है। नए धर्मों को अपनाने से इन्हें नए विश्वास और संस्कार तो मिल गए लेकिन उनकी समस्याओं को सुलझाने में वे कारगर नहीं हो पाए। इससे आदिवासियों में असंतोष की भावना पनप गई। आदिवासियों की एकता पर भी धर्म परिवर्तन का प्रभाव पड़ा।

राजस्थान के भील आदिवासियों ने हिन्दू धर्म के प्रभाव से एक धार्मिक आंदोलन भगत आंदोलन चलाया; जिसने भीलों को भगत और अभगत दो वर्गों में विभक्त कर दिया। ईसाई धर्म के कारण एक समूह में ही नहीं बल्कि एक ही परिवार में धार्मिक भेदभाव उत्पन्न होने लगा। इससे आदिवासियों की एकता और संगठन टूटने लगा है और साथ ही साथ पारिवारिक तनाव, भेदभाव, लड़ाई-झगड़े बढ़ते जा रहे हैं।

(4) सांस्कृतिक समस्याएँ :-

आदिवासियों के बाहरी संस्कृतियों के सम्पर्क में आने के कारण विभिन्न सांस्कृतिक समस्याएँ उत्पन्न हो गई हैं। जिसके कारण आदिवासी संस्कृति आज संकटमय स्थिति से गुजर रही है। प्रमुख सांस्कृतिक समस्याएँ निम्नलिखित हैं-

(अ) आदिवासी ललित कलाओं का पतन -

बाहरी संस्कृतियों के प्रभाव में आने के कारण आदिवासियों की ललित कलाओं का पतन होता जा रहा है। उनकी ललित कलाएँ, संगीत, नृत्य, लकड़ी पर नक्काशी आदि का दिनों-दिन हास होता जा रहा है। नागा आदिवासियों के युवागृह

के लकड़ी के खम्भों पर बहुत सुंदर काम किया जाता था। युवागृहों के समाप्त होने के साथ-साथ ये कला स्वयं ही नष्ट होती जा रही है।

मुड़िया आदिवासियों में केवल बच्चों के ही पचास से अधिक खेलों का प्रचलन था। इनमें शरीर को संवारने, घर को सजाने की ललित-कलाओं को स्थान दिया जाता है। आदिवासियों में नृत्य कला भी उच्च कोटि की होती है। बाहरी संस्कृतियों के सम्पर्क में आने से इन ललित कलाओं का ह्रास होता जा रहा है।

(ब) विभिन्न आदिवासियों में सांस्कृतिक भिन्नता की समस्या :-

ईसाई मिशनरियों और हिंदुओं के सम्पर्क में आने के कारण आदिवासियों में सांस्कृतिक भिन्नता उत्पन्न हो गई है। एक तरफ ईसाई मिशनरियों ने लालच देकर या अन्य किसी प्रकार से इनको आकर्षित करके धर्म परिवर्तन कराया तथा दूसरी तरफ कुछ आदिवासी लोगों ने हिन्दुओं की जाति-प्रथा के अन्तर्गत अपने को ले आने में सफल हुए, लेकिन ऐसा सभी आदिवासियों ने नहीं किया। जिसके कारण एक आदिवासी के लोगों में आपस में ही सांस्कृतिक विभेद, तनाव और सामाजिक दूरी या गतिरोध उत्पन्न हो गया। दूसरों की संस्कृति को अपनाने वाले लोग अपनी ही संस्कृति को भुलाते गए तथा अपनी संस्कृति को हीन दृष्टि से देखने लगे तथा दूसरों की संस्कृति की नकल करने के कारण, उस संस्कृति की बराबरी भी नहीं कर पाए।

(स) भाषा-सम्बन्धी समस्या :-

बाह्य संस्कृति के सम्पर्क में आने के कारण आदिवासियों में 'दो भाषावाद' की समस्या आ गई। वे अपनी भाषा के साथ-साथ दूसरी भाषा भी बोलने लगे हैं। कुछ समय बाद वे अपनी भाषा को हीन समझने लगते हैं और उसे भूल जाते हैं। इससे अनेक आदिवासियों में परस्पर सांस्कृतिक आदान-प्रदान में अधिक बाधा होती है, इससे उनमें न केवल सामुदायिक भावना का पतन होता है बल्कि उनके सांस्कृतिक मूल्यों और आदर्शों का भी ह्रास होने लगता है। इस तरह से सामाजिक विघटन शुरु होता है।

(द) स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याएँ :-

बाह्य संस्कृतियों के सम्पर्क में आने तथा कुछ परिस्थिति सम्बन्धी कारणों से आदिवासी लोगों में स्वास्थ्य सम्बन्धी विभिन्न समस्याएँ आनी शुरु हो गई है। स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याएँ निम्नलिखित है-

(अ) खान-पान की समस्या :-

आदिवासियों में ताड़, महुआ अथवा चावल से बने मादक पदार्थों का सेवन रोज और पर्व, त्यौहार आदि में किया जाता है। लेकिन इनमें विटामिन बी और सी की मात्रा अधिक होने के कारण ऐसे मादक पदार्थों से नुकसान होने के बजाय ये स्वास्थ्य के लिए लाभदायक अधिक होते थे। परन्तु नवीन शासन व्यवस्था के तहत इन मादक पदार्थों पर प्रतिबंध लगा दिये गए इस कारण विदेशी शराबों का सेवन आदिवासियों में अधिक बढ़ गया। यह शराब अधिक मादक तथा नुकसान दायक होती है, जिसके कारण आदिवासियों के स्वास्थ्य पर इसका बुरा प्रभाव दिखाई देता है। इसी प्रकार अपनी गरीबी के कारण अधिकांश आदिवासियों को संतुलित भोजन नहीं मिल पाता है, जिससे उनका स्वास्थ्य स्तर गिरता जा रहा है और वे अनेक प्रकार के रोगों की चपेट में आते जा रहे हैं।

(ब) अधिक रोग और चिकित्सा का अभाव :-

आदिवासियों में हैजा, चेचक, तपेदिक आदि विभिन्न प्रकार के रोग हो जाते हैं, जो गुणवत्तापूर्ण भोजन की कमी और अन्य वातावरण सम्बन्धी कारणों से होते हैं। इसके अलावा चाय के बगानों और खानों में कार्य करने वाले पुरुषों और महिलाओं में व्यभिचार बढ़ने के साथ-साथ गुप्त रोगों में भी तेजी से वृद्धि हो रही है। चिकित्सा सेवाओं की कमी होने के कारण आदिवासी क्षेत्रों में इन रोगों की समस्या एक गंभीर रूप धारण करती जा रही हैं

निर्धनता, बीमारियों के इलाज के सम्बन्ध में अज्ञानता, चिकित्सकों पर भरोसा न होना, यातायात के साधनों के अभावों में दुर्गम क्षेत्रों में चिकित्सकों का न पहुँच पाना, गंदगी से रहना, पौष्टिक भोजन की कमी आदि इस स्वास्थ्य-सम्बन्धी समस्याओं के प्रमुख कारण। जिससे आदिवासी बिल्कुल अनजान है।

(स) वस्त्र :-

आधुनिक सभ्य समाज के सम्पर्क में आने के कारण आदिवासी अब वस्त्रहीन न रहकर, कपड़े पहनने लगे हैं। लेकिन अधिक निर्धनता के कारण वे एक समय में एक से अधिक वस्त्र नहीं खरीद सकते, जिससे गंदगी और चर्म रोग फैलते हैं। वर्षा ऋतु में ये कपड़े शरीर पर ही भीग जाते हैं तथा शरीर पर ही सूख जाते हैं जिससे चर्म रोग और गंदगी होती है।

(5) शिक्षा-सम्बन्धी समस्याएँ :-

अधिकांश आदिवासी आज भी अशिक्षित व अज्ञानी है। केवल कुछ लोग ही ईसाई मिशनरियों के प्रयासों से अंग्रेजी शिक्षा का ज्ञान प्राप्त कर सके हैं। उनका अशिक्षित होना ही उनकी सारी समस्याओं की जड़ है। अशिक्षित होने की वजह से इनमें विभिन्न प्रकार के अन्धविश्वासों और कुसंस्कारों ने घर कर लिया है।

विभिन्न संवैधानिक प्रावधानों तथा आरक्षण के बाद भी आदिवासी समाज का एक बड़ा भाग सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़ा ही रह गया। अब ऐसे प्रयास किये जाने चाहिये जो जनसामान्य तक पहुँच सके, जिससे इनका विकास हो सके।

आधुनिक समाज और आदिवासी समाज में सांस्कृतिक परिवर्तन

भारत के आदिवासी वर्तमान में तीव्र संक्रमण से गुजर रहे हैं। आधुनिक समाज के सम्पर्क से पूर्णतया तो वे कभी वंचित नहीं रहे, लेकिन बाहर के लोगों से अधिक सम्पर्क भी नहीं रहा। आधुनिकीकरण की इस प्रक्रिया ने उन्हें आज एक मोड़ पर लाकर खड़ा कर दिया है। आवागमन एवं यातायात के साधनों के विकास ने आदिवासी क्षेत्रों में जनसंख्या के दबाव के परिणाम उनकी अर्थव्यवस्था को नष्ट कर दिया। जिससे उन्हें आधुनिक समाज की ओर आना पड़ा। जहाँ आदिवासी निवास करते थे, वहाँ खनिज पदार्थों का बाहुल्य था, जिस कारण से आधुनिक समाज के लोगों की आदिवासियों में रुचि बढ़ती गई। इसके अतिरिक्त सरकारी एवं गैर सरकारी कल्याणकारी संस्थाओं द्वारा उनके जीवन स्तर में सुधार लाना इसका प्रमुख कारण है। उच्च पद पर बैठे अधिकारी उनको सरकारी सेवाओं से वंचित रखते हैं तथा उनका शोषण करते हैं।

कुछ आदिवासियों को छोड़कर अधिकांश आदिवासी वर्तमान में विकास के निम्न स्तर पर अपना जीवन-यापन कर रही है। वे लोग सुदूर, दुर्गम एवं कम उपजाऊ वाले प्रदेशों में निवास करते हैं। निम्न स्तरीय प्राविधिक ज्ञान उनके जीवन स्तर एवं उनकी अर्थव्यवस्था को कभी भी ऊँचा नहीं उठने देता है। आदिवासियों की अर्थव्यवस्था प्राचीन काल से ही प्रकृति पर निर्भर थी। ये प्रकृति से प्राप्त वस्तुओं से ही अपना जीवन-निर्वाह करते हैं। यह प्राकृतिक अर्थव्यवस्था अधिक समय तक नहीं चल सकती है। इन्हें समयानुसार स्वयं को बदलना ही पड़ेगा, जिससे उनका जीवन आगे बढ़ सके। यदि हम यह मान भी ले कि उनका एकांकी स्वच्छंद जीवन तथा प्रकृति एवं वन्य सामग्री पर जो एकाधिकार है वो आदिवासियों के जीवन को कुछ ओर दशाब्दियों तक सरल बना भी पाता है तो भी राष्ट्रीय हित में इसके अनेक नुकसान भी होंगे। जंगलों का उजड़ना एवं इनका स्थान परिवर्तन करना कृषि व्यवस्था एवं राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के लिए नुकसानदायक है।

चाहें जो भी कारण रहा हो, लेकिन आदिवासी समाज, आधुनिक समाज के सम्पर्क में आए बिना नहीं रह सका है। उन लोगों का हिंदुओं तथा अन्य सभ्य समाज के साथ सम्पर्क होने से उनके जीवन में परिवर्तन आने लगा है। विभिन्न आदिवासी समुदाय अपनी संस्कृति की विशिष्टता एवं रहन-सहन के तरीकों को वर्तमान में बनाए रखने की कोशिश कर रहे हैं, परन्तु उनमें परिवर्तन आना प्रारम्भ हो गया है। “हिन्दू समाज का जनजातीय समुदायों पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा है। मानवशास्त्रियों ने इस बात का उल्लेख किया कि इस सम्पर्क का परिणाम आंशिक पृथक्करण से लेकर पूर्ण आत्म सात्करण तक हुआ है। अनेक स्थानों में तो इस बात के प्रमाण हैं कि सम्पूर्ण कबीला हिन्दुओं के जातिगत पद सोपान-क्रम में परिवर्तित हो गया।”¹⁶ जैसे भोटिया आदिवासियों की विभिन्न शाखाएँ अपनी आदिवासी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति के अनुसार स्थानीय हिन्दू जातियों में मिलने लगी है। थारु आदिवासियों के लोग स्वयं को राजपूत मानने में एक हद तक सफल हो गए हैं।

आदिवासी लोगों ने हिंदू जाति व्यवस्था के अन्दर स्वयं को ब्राह्मण होने का दावा प्रस्तुत किया है, कुछ ऐसे भी उदाहरण देखे जा सकते हैं। पश्चिमी बंगाल में निवास करने वाले बौड़ी आदिवासी स्वयं को ब्राह्मण बताते हैं। इनमें कुछ ऐसी पौराणिक गाथाओं का प्रचलन है, जिससे वे हिन्दू पदसोपान क्रम में उच्च जातियों के वंशज होने का दावा प्रस्तुत करते हैं। इसी तरह बंगाल के महाली आदिवासियों ने हिंदू संस्कृति एवं जीवन-विधि को अपना लिया है। इस तरह आधुनिक समाज के प्रभाव में आकर आदिवासी सभ्य समाज के ढंग में रमने लगे हैं।

भक्ति आन्दोलन के प्रभाव स्वरूप मुण्डा आदिवासियों ने हिंदुओं की प्रथाओं एवं रीति-रिवाजों को स्वीकार कर लिया है। मध्य भारत में हुए भगत आंदोलन ने कुछ आदिवासियों में संस्कृतिकरण की प्रक्रिया की शुरुआत की है। इस आंदोलन ने आदिवासियों के धार्मिक एवं सामाजिक जीवन का शुद्धिकरण कर इन्हें ऊँची हिन्दू

जातियों को आदर्श स्वरूप मानने के लिए प्रेरित किया है। गुजरात के डब्ला, धानका आदि आदिवासी समूहों ने ब्राह्मणों को धार्मिक कार्यों के लिए बुलाना शुरू कर दिया है तथा अपने समाज में सामाजिक सुधार शुरू कर दिए हैं।

दक्षिण भारत के अनेक आदिवासी जैसे चैचू, कादर, मुथावान आदि ने अपने पड़ोसी हिंदुओं की प्रथाओं एवं रीति-रिवाजों को अपनाना शुरू कर दिया है। कादर लोग हिंदुओं के देवी-देवता काली, अयप्पन, मारुति आदि की पूजा करने लगे हैं।

इस प्रकार आदिवासी समाज एवं संस्कृति में हिंदुओं के रीति-रिवाज, प्रथा एवं धर्म का अधिक प्रभाव दिखाई देने लगा है। कुछ आदिवासी समुदाय ऐसे हैं, जिनमें परिवर्तन शीघ्रता से हो रहा है। वे समाज अब आधुनिक समाज के तौर-तरीके को अपनाते हुए अपने आपको आगे बढ़ाना चाहता है तथा प्रगति पथ पर चलना चाहता है।

सारांश

आदिवासी सम्पूर्ण भारत में फैले हुए हैं। भारत के आदिवासी समाज देश की जनसंख्या का केवल 8.2 प्रतिशत ही है। ये आदिवासी मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, नागालैण्ड, अरुणाचल प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान मेघालय, गुजरात बिहार आदि राज्यों में निवास करते हैं। आदिवासियों का निवास जंगल में होता है, इसलिए भोजन के रूप में वनों से प्राप्त फल तथा कृषि पर आश्रित रहते हैं। ये महुआ, कंद, मूल, फल आदि का सेवन करते हैं। आदिवासियों को सजने-सँवरने का शोक होता है। वेशभूषा के द्वारा आदिवासियों की विशेषताओं का भी पता लगाया जा सकता है। वस्त्रों को पहनने का ढंग वस्त्रों के प्रकार की भिन्नता तथा रंग सभी आदिवासियों को एक-दूसरे से अलग रखती है। त्योहारों के द्वारा आदिवासी अपनी परम्पराओं को संरक्षित किए हुए हैं।

भारत के आदिवासियों की समस्याएँ बहुत कठिन हैं और उनके रीति-रिवाज, रहन-सहन, सभ्यता, आचार-विचार, संस्कृति, धर्म ललित कला आदि में सुधार की जरूरत है। सभ्य समाज से सम्पर्क में आने के कारण उनके सामने अनेक समस्याएँ खड़ी हो गई हैं। बाहरी संस्कृति के सम्पर्क में आने के कारण वे अपनी संस्कृति का त्याग करते जा रहे हैं। विभिन्न संवैधानिक प्रावधानों तथा आरक्षण के बाद भी आदिवासी समाज का एक बड़ा भाग सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़ा ही रह गया। अब ऐसे प्रयास किये जाने चाहिये जो जनसामान्य तक पहुँच सके, जिससे इनका विकास हो सके।



संदर्भ ग्रंथ सूची -

1. सं. रमणिका गुप्ता : आदिवासी कौन, राधाकृष्ण, पृ.सं.-86
2. डॉ. एस.के.सोनी : राजस्थान के आदिवासी, यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ.सं.-8
3. डॉ. एस.के.सोनी : राजस्थान के आदिवासी, यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ.सं.-9
4. डॉ. हरिशचंद्र उप्रेती : भारतीय जनजातियाँ: संरचना एवं विकास, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पृ.सं.-1
5. वही, पृ.सं.-1
6. डॉ. एस. के. सोनी राजस्थान के आदिवासी, यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ.सं.-9
7. डॉ. हरिशचंद्र उप्रेती : भारतीय जनजातियाँ: संरचना एवं विकास, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पृ.सं.-2
8. डॉ. रमणिका गुप्ता, स्वयं साक्षात्कार द्वारा
9. सं. रमणिका गुप्ता : आदिवासी कौन, राधाकृष्ण, पृ.सं.-27
10. वही, पृ.सं.-36
11. डॉ. हरिशचंद्र उप्रेती : भारतीय जनजातियाँ: संरचना एवं विकास, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पृ.सं.-59
12. डॉ. रामनाथ शर्मा , डॉ. राजेन्द्र कुमार शर्मा : मानव शास्त्र, एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, पृ.सं.-160
13. रवीन्द्रनाथ मुकर्जी : सामाजिक मानवशास्त्र की रूपरेखा, विवेक प्रकाशन, पृ.सं.-377
14. डॉ. रामनाथ शर्मा, डॉ. राजेन्द्र कुमार शर्मा : मानवशास्त्र, एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, पृ.सं.-441
15. डी.एन. मजूमदार : रेसेस एण्ड कल्चर्स ऑफ इंडिया, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बोम्बे, पृ.सं.-395
16. डॉ. हरिशचंद्र उप्रेती : भारतीय जनजातियाँ: संरचना एवं विकास, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पृ.सं.-245

द्वितीय अध्याय
हिन्दी का आदिवासी कथा साहित्य

1. भूमिका
2. एक सामान्य परिचय
 - (अ) उपन्यास
 - (i) डॉ. रमणिका गुप्ता – सीता मौसी
 - (ii) मैत्रेयी पुष्पा – झूलानट
 - (iii) मैत्रेयी पुष्पा – अल्मा कबूतरी
 - (iv) महाश्वेता देवी – जंगल के दावेदार
 - (v) महाश्वेता देवी – चोटिट मुण्डा और उसका तीर
 - (vi) वीणा सिन्हा – सपनों से बाहर
 - (vii) संजीव – जंगल जहाँ शुरु होता है
 - (viii) पुन्नी सिंह – सहराना
 - (ix) मधु कांकरिया – खुले गगन के लाल सितारे
 - (x) राकेश कुमार सिंह – पठार पर कोहरा
 - (xi) एम. वीरप्पा मोयिलि – कोट्टा
 - (xii) राकेश कुमार सिंह – जो इतिहास में नहीं है
 - (xiii) संजीव बख्शी – भूलन कांदा
 - (ब) कहानी संग्रह
 - (i) रमणिका गुप्ता – बहू जुठाई
 - (ii) महाश्वेता देवी – इतवा मुंडा ने लड़ाई जीती
3. सारांश

द्वितीय अध्याय

हिंदी का आदिवासी कथा साहित्य

भूमिका

प्राचीनकाल से ही आदिवासी वनों और पहाड़ों में रह रहे हैं। जीविकोपार्जन के लिए ये वनों पर ही निर्भर रहते हैं। इनकी प्रमुख समस्या जल, जंगल, जमीन से जुड़ी हुई है। विकास के नाम पर विस्थापित करके इन्हें वनों से खदेड़ा जा रहा है। इन सारी समस्याओं का चित्रण आदिवासी साहित्य में हो रहा है।

समय के साथ आदिवासी कथा लेखन आगे बढ़ रहा है। आदिवासी लेखक, कहानी, उपन्यास, व्यंग्य, नाटक आदि विधाओं में लिख रहा है। लेखक अपनी रचनाओं में देश की समस्याओं को उजागर कर रहे हैं। आदिवासी जीवन से जुड़े उपन्यासों व कहानियों का उद्देश्य इस गतिमान समय में जीते हुए आदिवासियों के समग्र पहलुओं को उद्घाटित करना है।

रमणिका गुप्ता, मैत्रेयी पुष्पा, महाश्वेता देवी, वीणा सिन्हा, संजीव, पुन्नी सिंह, मधु कांकरिया, राकेश कुमार सिंह, एम. वीरप्पा मोयिलि, संजीव बख्शी आदि के उपन्यासों व कहानियों में आदिवासियों को चित्रित किया गया है। इस अध्याय में इन सभी लेखकों के कथा साहित्य पर प्रकाश डाला गया है।

एक सामान्य परिचय

डॉ. रमणिका गुप्ता - सीता-मौसी

‘सीता-मौसी’ एक उपन्यास न होकर दो अलग-अलग उपन्यास हैं, ‘सीता’ और ‘मौसी’। ये उपन्यास आदिवासी अंचल के हैं, जो धीरे-धीरे विकसित होकर एक नए औद्योगिक परिवेश में बदल रहे हैं तथा जहाँ आदिवासी संस्कृति खत्म होती जा

रही है। आदिवासी संस्कृति बहुसंख्यक हिन्दू समाज की विकृतियों का शिकार होती जा रही है। आदिवासी समाज मजबूरी में मजदूर बनने को विवश है। इनकी जमीनों और जंगलों को सरकार तथा बाहरी लोगों ने हड़पना शुरू कर दिया। आदिवासी महिला को बाहरी लोग केवल वासना-पूर्ति की वस्तु समझते हैं।

आदिवासी स्त्रियाँ अपनी अस्मिता को बचाने के लिए जूझ रही है। सीता-मौसी उपन्यास की नायिकाएँ सीता और मौसी भी इनमें से एक है। सीता एक आदिवासी महिला है, जो कोयला खदानों में कोयला ढोने का काम करती है। आदिवासी समाज में महिलाओं को अपना जीवन साथी चुनने व छोड़ने की आजादी होती है। सीता के पति की मृत्यु के बाद सीता यूनियन के मुंशी यासीन मियाँ जो कि एक मुसलमान था, आदिवासी रीति-रिवाज से विवाह कर लेती है। यासीन सीता से बहुत प्रेम करता था लेकिन धीरे-धीरे उसका प्रेम समाप्त हो गया और वह उसकी ही जाति की एक लड़की से विवाह कर लेता है। सीता यह सब सोचती हुई कहती है कि- “उन सबके लिए औरत का आधार तब तक मायने नहीं रखता था। सच तो था कि पुरुष-दम्भ ही सीता की त्रासदी का कारण था पर इस सत्य को स्वीकारने की बजाय, सब दूसरे कारण ही ढूँढने में लगे थे। इस मायने में औरत का महत्त्व, उस अनुपाततः अधिक मुक्त समाज में भी नहीं ही था। इस समाज में भी औरत को छोड़ देना, रख लेना मामूली बात है, लेकिन वहाँ औरत को मर्द छोड़ने की छूट है।”¹ इन सबके बावजूद भी सीता टूटती नहीं है, बल्कि व अपने समाज के लिए कार्य करती है। किसान से कामगार बन चुकी सीता किसानों का नेतृत्व करने लगी है।

आदिवासी महिलाओं को सभी तरह से शोषण किया जाता है। इनका सबसे ज्यादा शोषण गैर-आदिवासियों द्वारा ही होता है। सीता भी उसी शोषण का शिकार होती है।

सीता यूनियन की बैठक में भाग लेने लगी है तथा मजदूरों के हकों के लिए संघर्ष करती है। राजनीति के क्षेत्र में भी वह अपनी पकड़ बना रही है तथा जागरूक हो चुकी है। वह इतनी भोली-भाली है कि राजनीति के क्षेत्र में हो रही चापलूसियों का उसे कोई पता नहीं है। इन सबके बाद भी वह राम की सीता को परास्त करके एक नई

सीता बन गई है, जो अपनी अस्मिता के लिए स्वयं लड़ना सीख गई है। “त्याग और तपस्या की प्रतीक सीता जब रामायण के युग से निकलकर आज के संघर्षों में भूख से जूझती हुई जवान होती है तो वह सर्वहारा वर्ग के लिए आधुनिक रावणों से लड़ती है। आज की सीता जूझी है हर रिश्ते से, उमर के हर मोड़ पर। उसने मौत से छीना है जिन्दगी को। सीता अब अपने से बाहर खड़ी सीताओं के लिए लड़ने लगी है। सीता अब एक कतार है, एक शृंखला है, एक पांत है। पांत-जो चुप थी आज तक, बोलने लगी है। पांत-जो जड़ थी सदियों से, अब फुंकारने लगी है। आज की सीता अपने बदलाव की बाढ़ में गली-सड़ी मानसिकता को बहाए ले जा रही है, समुद्र के गर्त में दफनाने के लिए। वह इंतजार में है कि कल जो सूरज निकले, जो हवा बहे, वह उस जैसी सीताओं के हिस्से में भी आए जिससे वे वंचित रही है, सभ्यता के आने के बाद से। सीता ऐसी लपट है जो मनुष्यता के लिए उजाले बाँटती है और दानवता को जलाकर राख करने में समर्थ है।”² सीता गाँव न लौटकर खदानों में ही मजदूरों की आवाज बनकर, स्त्री अस्मिता की पहचान बनकर, किसानों और कि हक की लड़ाई लड़ने के लिए संघर्षरत है।

कोयला-खदानों में काम करने वाली महिलाओं को मुंशी ठेकेदार रखैल के रूप में रख लेते थे और उनका यौन शोषण व आर्थिक शोषण करते थे। सीता के साथ भी कुछ ऐसा ही होता है।

“हालाँकि सीता और यासीन का पाहन ने विधिवत् ब्याह कराया था पर समाज ने उसे ‘रखनी’ संज्ञा ही दी थी। ‘रखनी’ दूसरी औरत होती है और ‘घरनी’ ब्याहता। इसमें एक और परम्परा भी प्रचलित है, जो एक मायने में बहुत अच्छी है। दूसरा मरद करने पर औरत अपने पहले मरद से हुए, जो बच्चे साथ में लाती है, उनका पालन-पोषण करने का जिम्मा दूसरे मरद को लेना पड़ता है। यहाँ औरतें ही कमाई करके घर चलाती हैं, मरद की कमाई सहायक कमाई होती है। मरद अधिकांश तौर पर महुआ, ताड़ी, हँड़िया का काम करता है या लकड़ी काटता, चीरता-फाड़ता है, नहीं तो खेत में हल नादता है। घर की छत वही बनाता है पर बाकी सभी काम औरतें ही करती हैं। महुआ चुनने, चुआमे, बेचने और हँड़िया तक का काम भी औरतें करती हैं।

लकड़ी काटना, बेचना, घर बनाना, लीपना-पोतना, पशु पालना तो जैसे जन्म से ही इन औरतों के खाते में दर्ज हो जाता है। ऐसी औरतें जो मरद के मरने के बाद दूसरा ब्याह करती हैं, उन्हें भी लोग 'घरनी' कहते हैं। 'घरनी' यानी पत्नी के बराबर का दर्जा। पर समाज की मर्जी के विपरीत बिना ब्याह किए जाकर किसी मरद के यहाँ अपनी इच्छा से रह जाने या बैठ जाने वाली औरत अथवा जबरन अगवा करके लालच देकर लाई गई औरत, जिसका घर में कोई दखल नहीं। ऐसी औरतें प्रायः अलग घर में रखी जाती हैं। सीता को समाज ने भी इसी रूप में माना। यह अलग बात है कि सीता ने कभी समाज को मान्यता ही नहीं दी इसलिए उसने अपने-आपको कभी हीन नहीं माना। इसी कारण यासीन उसके घर पर धड़ल्ले से बिना झिझक रहने लगा था-पूरे हक के साथी। वह उसके घर पर कब्जा जमाकर टिक गया था।”³

‘मौसी’ उपन्यास में ‘मौसी’ एक ऐसी नायिका के रूप में उभरकर आई है जो पुरुष भरे समाज में अपने आपको सुरक्षित नहीं पाती है। मौसी अपने विवाह का सपने पाले हुए है लेकिन बदकिस्मती से उसका विवाह नहीं हो पाता है। वह अपनी भाभी के बेटे मोहना को गोद ले लेती है तथा उसका पालन पोषण करती है। लेकिन वही मोहना बड़ा होकर उसके साथ मारपीट करता है तथा उसे छोड़कर चला जाता है।

मौसी को तीन अलग-अलग व्यक्तियों से प्रेम होता है सलीम, भगवान बाबू तथा माधो। लेकिन तीनों ही किसी ना किसी वजह से उसका साथ छोड़कर चले जाते हैं। इन सबके चलते मौसी संघर्ष करना सीख गई है। किसी पुरुष के हाथ की कठपुतली बनने के अलावा व स्वयं अपनी मेहनत से जिन्दा रहना चाहती है। वह स्त्री अस्मिता की एक नई पहचान बना चुकी है। मौसी अपनी स्वतंत्रता को बनाए रखने के लिए गाँव छोड़कर शहर में खटने के लिए आ गई। बहुत से पुरुषों के द्वारा धोखा खाने के बाद मौसी ने अब अकेले रहना स्वीकार कर लिया था।

‘मौसी’ उपन्यास में आदिवासी समाज का चित्रण भी बखूबी किया गया है। इसमें आदिवासियों की विशेषताएँ बताई गई हैं। मजदूर वर्ग की जिजीविषा का चित्रण किया गया है-

“ऐसे भी मजदूर वर्ग खासकर आदिवासी लोग ‘कल’ की योजना बनाने के आदी नहीं होते। वे प्रकृति और उसकी बनाई योजना पर निर्भर करते हैं। प्रकृति की ही नाई उन्हें अपनी मेहनत पर भी पूरा विश्वास रहता है। इनकी खेती, महुआ-सखुआ, जंगल-कटाई, सब का समय प्रकृति द्वारा निर्धारित है। समय पर महुआ-सखुआ फूलेगा-फलेगा-टपकेगा। समय पर बरखा आएगी-धान रोपेंगे या छीटेंगे। कटनी-निकौनी करेंगे। घर धान से भरेगा और बाड़ी-लौकी, कद्दू और निनुआ या भिंडी से। गाय, बकरी बियोयगी। दूध और माँस मिलेगा। प्रकृति की तरह ही सब नियमबद्ध-सा चलता है। उनका जीवन भी केवल आज पर निर्भर करता है-कल पर नहीं। वे नहीं सोचते कल सूरज उगेगा या नहीं, आज वर्षा हुई है-चलो, हल जोतेंगे। इस वर्ष वर्षा नहीं हुई-अकाल पड़ा है-भूखे मरना है या देश छोड़कर परदेश में काम की खोज में जाना है, सवाल उठता है तो फैसला ले लिया जाता है- ‘चलो परदेश चलेंगे-सखुआ के फूल या बीज बीन लेंगे पर जिन्दा जरूर रहेंगे।’ दिनचर्या में खलल पड़ जाए तो भी उन्हें स्वीकार्य है। खलल तो रोज ही पड़ता है। प्रकृति भी तो अपनी चाल-ढाल कभी-कभी बदल ही देती है। सो ऐसे खलल को स्वीकार करना उनकी आदत है। कल काम नहीं मिलेगा तो भूखे-उपासे लौट आएँगे पर भीख नहीं माँगेंगे! जंगल से जड़े उखाड़ कर खाएँगे-मर भी जाएँगे-जैसे जंगल में गाछ मरता है और खेत में ओले पड़ने पर ‘खड़ी’ फसल। बादलों के लिए आकाश अगोरेंगे... जैसे जानवर और पंछी अगोरता है-पपीहा और मोर अगोरता है। बादल बरसेगा तो ये भी चहकेंगे, फुदकेंगे-जैसे चिड़िया चहकती है, फुदकती हैं। पर कल क्या होगा वे यह नहीं सोचते!”⁴

‘सीता-मौसी’ उपन्यास की दोनों महिलाएँ समाज में अपनी एक नई पहचान बनाती हैं तथा पुरुषवादी समाज में जिन्दा रहने के लिए संघर्ष करती हैं।

मैत्रेयी पुष्पा - झूलानट

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास 'झूलानट' में एक अनपढ़ नारी शीलों की स्त्री-शक्ति की अदम्य कहानी है। शीलों जब विवाह कर अपने पति के घर आती हैं, तो उसे पति का प्रेम नहीं मिलता और वह उसे छोड़कर चला जाता है। फिर भी शीलों अपनी पति के प्रेम के लिए न जाने कितने व्रत-उपवास, टोने-टोटके करती हैं और अपने पारिवारिक कर्तव्यों को निभाती हैं।

शीलों गाँव की एक साधारण-सी औरत हैं। न ही वह बहुत सुंदर हैं और न ही बहुत सुघड़ हैं। वह बिल्कुल अनपढ़ हैं। मनोविज्ञान और समाजशास्त्र को वह जानती तक नहीं हैं। पति उसे पसंद नहीं करता है। शीलों के देवर बालकिशन इसके बारे में कहता है कि- “आज सिद्ध कर दिया कि औरत भले उम्र में बड़ी हो, अक्ल में छोटी और टुच्ची होती है।”⁵ इस प्रकार के विचार बालकिशन अपनी भाभी शीलों के बारे में रखता हैं।

तिरस्कार, अपमान और उपेक्षा की मार सहते हुए भी शीलों न कुँ-बावड़ी न आग लगाकर अपने जीवन से छुटकारा पाने के बारे में नहीं सोचती हैं। अपनी पति को वशीकरण के सारे तीर-तरकश टूट जाने के बाद भी उसके पास जीने का निःशब्द संकल्प और श्रम की ताकत और एक अडिग धैर्य होता है। उसके भीतर जीवन जीने की जिजीविषा है और वह जीना चाहती। परंतु उसे लगता है कि उसके हाथ की छठी अंगुली ही उसका भाग्य लिख रही है और उसे ही बदलना चाहिए। एक दिन वह अपनी छठी अंगुली को ही अपने शरीर से अलग कर देती है। बालकिशन शीलों की छठी अंगुली के बारे में सोचता हुआ कहता है कि- “वे पति हैं, भाभी को दगा तले दबा दें या रहम की भीख डाल दें, उनकी मर्जी, उनकी खुशी। इस आँगन में काँटों का छतनार विरह उग आया है, जिसकी छाया में भाभी को बैठना ही होगा। गाँव समाज के चलते या सती देवी का सिंहासन है। भाभी की सभी तारीफ करते हैं और धीरज देते हैं कि उनकी छिंंगुली अंगुली से तेज की लौ निकलेगी, जो इस संसार के दुराचारियों को भस्म कर देगी-वे सीधी बैकूठ जाएगी। मरने के बाद भी उनके गीत गाए जाएंगे।”⁶

आदिवासी समाजों में औरतों को मारना-पीटना आम बात होती है। वे पुरुषों का अन्याय सहती रहती हैं। बालकिशन भी शीलों को मारता-पीटता है। अपनी अम्मा को गाली देने पर शीलों के साथ जैसा व्यवहार करता है- “तड़ाक-तड़ाक दो-तीन तमाचे जड़ दिए पूरी ताकत और हिम्मत के साथ, साली, अम्मा को गाली देती है। बोल, अब बोल।”⁷ इस कथन से इस समाज में औरत को कितना सम्मान दिया जाता है, इस बारे में पता चलता है।

इस उपन्यास में पुरुष अंधविश्वास के बारे में भी बताया गया है बालकिशन एक अंधविश्वासी पुरुष है जो हर काम के लिए व्रत-उपवास, तप आदि करता है। जब शीलो उसे रोकती है तो वह सोचता है- “भाड़ में गई शीलो। साली हर काम में टाँग अड़ाती है। मेरे तप में भी दखल देगी अब ? धोक देने से रोकेगी तो फल पाएगी। रौरव नरक में गिरेगी। अरे! जिस मइया के द्वारे एक तरफ अँधे को आँख, बाँझों को पुत्र, रोगी को निरोग काया मिलती है, तो दूसरी तरफ मइया पापियों का सिर कलम करके मुंडमाल पहन लेती है। इतनी दयालु, त्यागमयी कि अपना सब कुछ लुटा दे भक्त पर और जो रुष्ट हो, तो संहार..जै ऊँचे छतुर वाली। जैकारा सुमिरते ही लगा कि कोठे में चार सूरजों का उजाला भर गया है। आँखें दिपदिपा उठीं, वह रोशनी के मेह में खड़ा नहा रहा है।”⁸ इसी प्रकार बालकिशन सोचा करता था।

शीलो किस तरह से अंधविश्वासों के द्वारा छली जाती है। पति के द्वारा छोड़ दिए जाने पर देवर के साथ ‘बछिया’ दान करके सादे तरीके से विवाह करके उसे देवर की पत्नी बना दिया जाता है।

शीलों कभी न भूले जा सकने वाले स्त्री चरित्रों में से एक है। बेहद आत्मीय और पारिवारिक सहजता के साथ शीलो स्त्री-शक्ति की कहानी है।

मैत्रेयी पुष्पा - अल्मा कबूतरी

मैत्रेयी पुष्पा का उपन्यास 'अल्मा कबूतरी' मध्यप्रदेश के बून्देलखण्ड के जंगलों में बसने वाली जरायमपेशा व खानाबदोश कबूतरा आदिवासियों की उपेक्षित, तिरस्कृत, अपमानित, प्रताड़ित महिला की स्थिति का चित्रण किया गया है। नट, मदारी, कंजर, साँसी, सपेरे, पारदी, हाबूड़े, बनजारे, बावरिया, कबूतरे आदि घुमन्तु आदिवासियों की तरह जीवन यापन करने वाली कबूतरा आदिवासियों के जीवन के विविध पहलू, अंधविश्वास, समस्याओं, विवाह, मृत्यु की परम्पराओं, जीवन संघर्ष, विडम्बनाओं व कज्जाओं की भोग लिप्सा का चित्रण किया गया है। इसमें तीन प्रमुख महिलाओं, कदमबाई, भूरी बाई और अल्मा के माध्यम से इस जाति की स्त्रियों के संघर्षमय तिरस्कृत और शोषित जीवन का वर्णन किया गया है। कदमबाई के पति का अपराध में लिप्त होने की वजह से इसे पति की अनुपस्थिति में अनेक परेशानियों का सामना करना पड़ता है। आजाद भारत में कबूतराओं की लड़ाई आज भी जारी है। कबूतराओं से संबंध रखने वाले कज्जा (उच्च लोग) लोगों को भी बहिष्कृत कर दिया जाता है— जैसे मंसाराम कदमबाई से संबंध रखने के कारण अपने ही परिवार और समाज में हेय दृष्टि से देखे जाते हैं। अगर ये लोग अपने परम्परागत पेशों चोरी, डकैती, सेंधमारी और लूटमार, हत्या से अलग होकर, शिक्षित होकर सम्मानित जीवन जीना चाहते हैं तो उच्च वर्ग के लोग उन्हें आगे बढ़ने नहीं देते हैं। कदमबाई का बेटा राणा व भूरी बाई का पुत्र रामसिंह पढ़-लिखकर आगे बढ़ना चाहते हैं, उच्च शिक्षा प्राप्त करके अधिकारी बनना चाहते हैं तो, कज्जा लोग उनके स्वप्नों को चूर-चूर कर देते हैं।

इस उपन्यास की नायिका अल्मा को जब उसके पिता रामसिंह पढ़-लिख कर कज्जा में शामिल करना चाहते हैं, तब अनेक व्यक्तियों द्वारा उसका यौन शोषण किया जाता लेकिन अनेक संघर्ष करने बाद अल्मा पूर्व डकैत और समाज कल्याण मंत्री रामशास्त्री जैसी मंत्री को अल्मा इतनी प्रभावित करती है कि वह उसे छूने की कोशिश भी नहीं कर पाता है।

अल्मा कदमबाई के पुत्र राणा से प्रेम करती है उसके प्रति निष्ठा और समर्पण का भाव रखती है। अल्मा के बिछोह में राणा मानसिक रूप से विक्षिप्त हो जाता है, इस बात को जानकर अल्मा राणा से मिलने के लिए विकल हो जाती है। अनेक प्रयासों के बाद वह मड़ोरा खुर्द जाकर राणा से विवाह करती है। रामशास्त्री मंत्री की हत्या हो जाने पर वह अपनी जाति के लोगों के आगे बढ़ाने के लिए मंत्री पद की उम्मीदवार बनती है और ऐसे उसका राजनीति में आगमन होता है।

इस उपन्यास में महिलाओं को राजनीति की वस्तु बताया गया है। अल्मा जब सूरजभान की कैद से भाग जाती है तो सूरजभान कहता है कि- “मुश्किल यह है कि विरोधी पार्टी के लोग उसे माँ-बहन का दर्जा देकर छाती कूटेंगे। चाँदी हो जाएगी। समाजसेवी संस्थाएँ अलग झंडियाँ ले-लेकर दौड़ पड़ेगी। उनका चलना, फलना-फूलना ऐसी ही घटनाओं पर टिका रहता है। देखना कि कैसे उस लड़की के हगने-मूतने से लेकर महीनादारी तक का हिसाब रखती है और सबसे ज्यादा करीबी सिद्ध होती है। अनुदान पचाने के नायाब तरीके। अपने-अपने दाँव। ऐसा न होता तो देश के बड़े से बड़े साधु-तांत्रिकों के लंगोट कौन चीर पाता? हमारे मंडल को कमंडल में धरकर बेतवा में सिराने वाले लोग।”⁹ इस बात से यह पता चलता है कि राजनेता वोटों के समय थोड़ा से अच्छा काम करके यश कमाना चाहते हैं, जिससे वे सत्ता में वापस आ पाये।

इस उपन्यास में कबूतरा आदिवासियों की सांस्कृतिक परम्पराओं का भी चित्रण किया गया है। इन आदिवासियों की सबसे अच्छी बात यह है कि ये किसी के मरने पर शोक नहीं मनाते हैं जंगलिया की मृत्यु होने पर उन लोगों की मृत्यु-परम्परा का पता चलता है।

“कुँआरी लड़की से चबूतरा लिपवाया गया। अगरबत्ती जलाई। देवताओं की मढ़िया बनाने के लिये कोरा कपड़ा ताना गया। बारी-बारी से लोग आते। उन्हें काँती पकड़ाई जाती। वे देवी के चबूतरे पर कट्टस का निशान लगाते। पवित्र मंत्र की तरह सबने बोला-कौल जंगलिया का मरण नहीं हुआ, कबूतरा कभी नहीं मरता, रानी पद्मिनी की संतान खत्म नहीं होती। कुनबी मर कर भी नहीं मरते।”¹⁰

वीर देवता की पूजा, मोर देवता की सवारी, बेर की झाड़ी को पवित्र पेड़ मानना, अन्य पुरुष के साथ शारीरिक संबंध को गलत न मानना, नाचने-गाने में कुशलता होना, कबूतरा आदिवासियों द्वारा स्वयं को रानी पद्मिनी व लक्ष्मीबाई का वंशज मानना आदि परम्पराओं का पता हमें इस उपन्यास से चलता है।

आदिवासी गैर आदिवासियों की तरह पढ़ना-लिखना नहीं चाहते। उनके समाज में आज भी पढ़ने-लिखने को बुरा माना जाता है। इस उपन्यास में रामसिंह अपनी पुत्री अल्मा को शिक्षित करके कुछ बनाना चाहता है। इस बात को लेकर कदमबाई को रामसिंह पर गुस्सा आता है, वो अल्मा और राणा का जल्दी से विवाह कर देना चाहती थी। कदमबाई रामसिंह के बारे में सोचती है- “कैसा आदमी है! माना कि नए जमाने की बातें करता है, पर ब्याह नहीं करना था तो लड़के को घेरकर डालने का क्या मतलब ? पास-पास रखकर बालकों को तरसाने में उसे क्या आनंद आ रहा था ? अल्मा कहीं इसी बात पर ही दुखी हो रही हो, ऊपर से डकैतों का आना-जाना और लगा लिया। उसे तो लड़की की चिंता रहनी चाहिए थी। ब्याह करके अपने फरज से उनन्तर होता।”¹¹ माँ को अपने पुत्र की चिन्ता हमेशा ही रहती है।

आदिवासी समाज में महिलाओं का यौन-शोषण आम बात है। इस उपन्यास में अल्मा कई पुरुषों के शोषण का शिकार होती है। अल्मा जब श्रीराम शास्त्री के यहाँ लाई जाती है तो संतोले की बहू कहती है- “अल्मा हमारी जिंदगानी ऐसी ही है बस अपना दुख तुम खोलकर कह दो। दबाकर रखोगी तो बंद मुँह के घाव की तरह भीतर ही भीतर जहर फैलेगा। जहरीली चीज को लोग थूक देते हैं। अपनी देह की हिफाजत हमें ही करनी है।”¹²

इस उपन्यास से औरतों का समाज में क्या दर्जा है, इस बात का भी पता चलता है। इनमें औरतों को गिरवी रख दिया जाता है। कबूतराओं का माना है कि जेवर-गहना-बासन और बेटी मुसीबत के वक्त ही काम आते हैं। संतोले की बहू स्वयं अल्मा को अवध शास्त्री के लिए सजाती है और उसके कमरे तक भी ले जाती है। औरतों के मामले में कबूतरा जाति बदनाम है।

अंत में अल्मा रामशास्त्री की हत्या के बाद मंत्री पद की उम्मीदवार बनकर कबूतराओं की दशा सुधारने की सोचती है। जिसकी उसकी जाति आगे बढ़ सके।

महाश्वेता देवी – जंगल के दावेदार

‘जंगल के दावेदार’ उपन्यास बंगला उपन्यास ‘अरण्येर अधिकारी’ का हिंदी अनुवाद है, जो महाश्वेता देवी ने किया है। इसमें बिहार के विभिन्न जिलों के वनों में बसने वाले आदिवासियों का चित्रण सजीव ढंग से किया गया है। बीरसा मुण्डा के जीवन का खाका प्रस्तुत किया गया है। इसमें बीरसा के बचपन से लेकर उसकी जेल में मृत्यु तक की कथा कही गई है। बीरसा बचपन से ही पढ़कर एक बड़ा आदमी बनना चाहता था। वह पढ़ने के लिए मिशन में पढ़ने जाता है। लेकिन वहाँ पर मुण्डा सरदार को अपशब्द कहे जाने पर वह वहाँ से वापस आ जाता है तथा गाँव आकर लोगों का भगवान बन जाता है। वह पढ़ा-लिखा होने के कारण सभी को सही राह दिखाने लगता है जिससे लोग उसकी बातों पर भरोसा करने लगते हैं। वह जंगल को अपनी माँ मानता है तथा दिक्कू लोगों से अपनी जमीन लेना चाहता है, जिन्होंने उसकी जमीन पर कब्जा कर लिया है। बीरसा सोचता है कि- “धानी ने कहा था कि सब मेरा है, किसी को नहीं दूँगा। अरे जंगल! तुम बताओ न, तुम्हारी दया छीन लेने का हक किसी को नहीं है न! जंगल का पेट चीरकर वह घने-से-घने में घुसा। जंगल तो सारे मुण्डाओं की माँ है। किन्तु बीरसा समझ रहा था कि उसकी जंगल-माँ रो रही है। जंगल ही उत्पीड़ित है-दिक्कू लोगों के हाथों, कानून के हाथों आज बंदी है। जंगल-माँ कह रही थी, मुझे बचा, बीरसा! मैं फिर शुद्ध, पवित्र, निष्कलंक बनूँगी।”¹³ इसमें बीरसा जंगल को दिक्कू लोगों से आजाद कराने का वचन देता है। बीरसा के संघर्ष की कहानी को बड़े ही अच्छे ढंग से उभारा गया है।

बिहार के मुण्डा आदिवासियों के लोकगीतों, उनकी जीजिविषा, जीवन मूल्य, अशिक्षा, अंधविश्वासों का भी इस उपन्यास में जीवन्त चित्रण किया गया है। लोकगीत का एक नमूना देखिये-

“बेठ बेगारी दिते मोर माँधे झरे लौ गो।

जमिंदारेर पेयादा ओइ राते दिने।

ताड़ाय मोरे, काँदि आमि राते दिने ।

बेठ बेगारी दिये मोर एइ हाल गो-

घर नाई, सुख मोरे के दिवे गो ।

काँदि आमि राते दिने ।

चोखेर ललेर मतइ लूनपारा मोर लौ गो ।”¹⁴

इस लोकगीत में बेगार देते-देते आदिवासियों की जो बुरी स्थिति हो गई है, उसका वर्णन किया गया है। इसमें आदिवासियों के पहनावे के बारे में बताया गया है कि- “सब बीरसाइतों का पहनावा था सफेद धोती। घुटनों तक नीची पहने हुई सफेद धोती! पैरों में घर के बने कच्ची लकड़ी के खड़ाऊँ। खड़ाऊँओं का अभ्यास नहीं था, इसलिए उन्हें पैरों में डोरी से कसकर बाँधा गया था। ये केवल पंचायत के वक्त पहननी होती थीं। हर एक के गले में जनेऊ, माथे पर तिलक था।”¹⁵

इस उपन्यास में मुण्डा आदिवासियों की गरीबी का चित्रण किया गया है। बीरसा एक बार श्मशान में जाता है और चाल्की मुण्डानी की कब्र को खोद देता है। चाल्की की चाँदी की अँगूठी और आठ आने जैसे भी उसके साथ दफन कर दिये गए थे। बीरसा चाँदी की अँगूठी और आठ आने जैसे लेकर भाग जाता है। वह शनिवार के हाट में चाँदी की अँगूठी बेच देता है और आठ आने के चावल खरीद लेता है। उसे पेट की आग के आगे और कुछ नहीं दिखा।

बीरसा किसी अंधविश्वास को नहीं मानता था। वह नये जमाने के हिसाब से चलना चाहता है। वो सभी मुण्डाओं को शिक्षित देखना चाहता है। “बीरसा ने एक दुःसाध्य व्रत लिया था मानो वह नदी की धारा को उलटा बहा देना चाहता हो। बाहर से आए हुए लोगों से सीखी हुई करम पूजा और अन्य रीति-नीति, प्राचीन असुर-धर्म की जादू-प्रक्रिया और रक्तोत्सव-सब एकबारगी हटाना चाहता था। धर्म का आचार, तन्त्र-मन्त्र, जादू, रीति-नीति का बोझ छाती पर रहने से मुण्डा लोग सिर न उठा सकेगे-इसीलिए एक सहज, सुनदर कर्मकाण्ड और रुढिगत विश्वासों के बोझ से

रहित धर्म की आवश्यकता है।”¹⁶ बीरसा एक आधुनिक समाज का निर्माण करना चाहता था। जिसमें अंधे कुसंस्कारों से मुण्डाओं को मुक्त करना चाहता था।

इस उपन्यास का नायक बीरसा लोगों का भगवान बन जाता है। लोग अब बीरसा को भगवान मानकर उसके गान गाते थे—

“जमींदार के अत्याचारों की यन्त्रणा से

मानव के दुःख से देश आज उछल रहा है।

चलो, उठा लो धनुक, तीर और बलोया

जीने से मरना भला आज।

हमारे नेता बीरसा भगवान

हमारे लिए ही वे आए यहाँ

जीने से मरना भला आज।

चल तैयार हों तूणीर, तीर और तलवार ले

डोम्बारी पहाड़ पर जमा हों सब

धरती के आबा बात करेंगे वहाँ।

बनदरों की किचकिच से डरेंगे नहीं हम

किसी तरह छोड़ेंगे नहीं जमींदार, महाजन,

बनियों—विदेशियों को

उन्हीं ने तो छीन लिया है हमारा देश!

अपना अधिकार छोड़ेंगे नहीं

चीता, बाघ के दाँतों, साँप के आक्रमण से पाया था देश।

इस सुन्दर देश को उन्होंने छीन लिया।”¹⁷

इस प्रकार के विद्रोह गान मुण्डा गाते थे।

मुण्डा लोग अशिक्षित हैं, इसका फायदा दिकू लोग उठाते हैं। लेकिन भोले-भाले आदिवासियों को ये बात समझ में नहीं आती। उनमें शिक्षा के प्रति अरुचि पाई गई है। बीरसा जब सुगाना से चाईबासा जाकर पढ़ने की बात कहता है, तो सुगाना कहता है- “और पढ़कर क्या करेगा, बाप ? मुण्डा-लड़कों को असभ्य, लँगोटी पहनने वाला समझने लगेगा। जितना पड़ेगा बाप उतना ही दुःख है। मुझे दुःख नहीं है। मैं तो भूखे-नंगे रहकर भिखमंगा होकर रहा। तू बेकार में दुःख पाएगा। बहुत पढ़ने पर भी कोई तुझे बाबू नहीं कहेगा। गाँव में कोई मुखिया नहीं बना देगा। अन्त में खेतन के लड़के की तरह कोयला की खान में कुली बनेगा। मजूर-ठेकेदारों के साथ चाय बागान में चला जाएगा। तू घर में रह। अब कर्ज-उधार कर एक गाय और मोल लूँगा, चराना।”¹⁸ उनका मानना है कि अगर ये लोग पढ़ने-लिखने जाएंगे तो खेत-खलिहानों में काम कौन करेगा।

बीरसा के प्रभाव में आकर मुण्डाओं ने होली पर नाचना, शिकार पर नहीं जाना, घर के वास्तु-देवता, पितरों सबको अर्घ्य देना बंद कर दिया था।

मुण्डा आदिवासी युवक भी पढ़ना चाहते हैं, लेकिन घर के दबाव की वजह से वे पढ़-लिख नहीं पाते। उन्हें घर के लिए काम करके आर्थिक सहयोग देना होता है। इन सबके बाउजूद बीरसा पढ़ने जाता है। वह जानता था पढ़ने से ही उसके जीवन में परिवर्तन आएगा। “पढ़ाई-लिखाई की दुनिया एक नई प्रकार की दुनिया थी। एक-एक अक्षर, एक-एक शब्द पढ़ पाने पर बड़ी विजय का अनुभव होता था रग-रग में उल्लास-तीर से लक्ष्य बेधने का-सा उल्लास! मुखर् लोमड़ी और खट्टे अंगूर की

कहानी जिस दिन उसने पढ़ी, अंग्रेजी पढ़कर समझ पाया, उस दिन बीरसा रो पड़ा। वह पढ़ पाया और समझ सका। एक अपूर्व विजय थी। बीरसा के भाग्य ने उसे दूसरे ही जीवन से बाँध दिया था। उस अनुशासन को हेय करके बीरसा ने दूसरे जीवन में जन्म लिया था। प्रमाणित कर दिया था कि वह पुरुष है- नियति के निर्देश को अमोघ और अन्तिम नहीं मानता!”¹⁹ इस तरह उसके शैक्षणिक जीवन से उसका अनुभव हुआ।

इस उपन्यास में गैर-आदिवासियों द्वारा मुण्डाओं का शोषण उजागर हुआ है। वे कर्ज देकर इन भोले-भाले लोगों को फाँस लेते हैं और उनका आर्थिक शोषण करते हैं। बीरसा इन सबसे मुण्डाओं को आजादी दिलाना चाहता है। बीरसा लोगों को समझाते हुए कहते हैं-“मुण्डा बड़े बन्धनों में फँसे हुए हैं। दिकू लोगों ने मुण्डाओं को उधार-कर्ज-कोयला खान-रेल-जेहल-अदालत वगैरह के हजारों चक्करों में फाँस लिया है। अब हमें सब तरह से आजाद होना पड़ेगा। सारे विदेशियों को भगाएँगे। किसी को कोई लगान नहीं देंगे। सारे जंगल ले लेंगे। जैसे पहले लिये थे, वैसे ही अब लेंगे।”²⁰ बीरसा मुण्डाओं में ऐसे ही विचारों का प्रचार करता था, जिससे ये लोग संगठित होकर लड़े और दिकूओं से अपना हक वापस ले।

इसमें बीरसा मुण्डाओं में एक नयी चेतना भर देता है तथा जीवन भर संघर्ष करने की प्रेरणा देता है, जिससे उच्च वर्ग के लोग उनका शोषण न कर सकें तथा वे आजादी के साथ जियें।

महाश्वेता देवी - चोट्टि मुण्डा और उसका तीर

‘चोट्टि मुण्डा और उसका तीर’ उपन्यास में महाश्वेता देवी ने चोट्टि मुण्डा के जीवन को चित्रित किया है। यह उपन्यास ‘जंगल के दवेदार’ उपन्यास के आगे की कथा है। चोट्टि नदी के किनारे बसे गाँव में चोट्टि मुण्डा निवास करता था। इसी नदी के नाम पर इसका नाम रखा गया था।

इसमें चोट्टि मुण्डा के माध्यम से वर्तमान समय की सच्चाईयों को उजागर किया गया है। दिकू लोग आदिवासियों का शोषण करते हैं तथा उनसे बेगार लेते हैं। अशिक्षित आदिवासी मुण्डा अपना जीवन निर्वाह करने के लिए इनको बेगार देता है तथा शोषित होता है। जबकि इन लोगों को ये तक पता नहीं है कि सरकार ने बेगार प्रथा पर रोक लगा दी है और पीढ़ी दर पीढ़ी ये लोग बेगार देते रहते हैं। चोट्टि मुण्डा के द्वारा आदिवासियों के संघर्षमय जीवन तथा शोषण, उत्पीड़न और उसके खिलाफ उसके तेजस्वी और वीरता के संघर्ष को चित्रित किया गया है।

आदिवासी कल्याण परिषद जैसी कल्पनाएँ भी आदिवासियों को बताई जाती हैं। लेकिन ये सब सिर्फ कागजों में ही चलती है असल जिंदगी से इसका कोई लेना-देना नहीं होता है। “आदिवासी कल्याण और उन्नति के अधिकारी उखड़े हुए मुण्डाओं को कुटीर उद्योग में मदद दे सकते हैं, छिनी हुई जमीन फिर नहीं दिला सकते। छिना राज्य, राजाओं की खास जमीन का मामला बहुत गड़बड़ होता है। उनके दफ्तर का अधिकार नहीं कि खास जमीन का मामला बहुत गड़बड़ होता है। उनके दफ्तर का अधिकार नहीं कि पुराण की जमीन दिला दे। उसके सिवा, चार-चार मुण्डा-उरॉव-दुसाध-कुरमी-गंजू-धोबी के मिलकर रहने से वह इलाका उनके अख्तियार में नहीं आता था। असली आदिवासी अंचल होने से वे उनको कुटीर-उद्योग की उपयोगिता समझा सकते हैं।”²¹ इस प्रकार अधिकारी लोग आदिवासियों को किसी प्रकार की जानकारी नहीं देते तथा अपनी स्वार्थ-सिद्धि करते हैं। सरकार कहने को तो बहुत कुछ करती है लेकिन नाम मात्र के लिए।

इस उपन्यास में मुण्डा आदिवासियों के लोकपर्व रीति-रिवाजों और धार्मिक विश्वासों का बड़े रोचक ढंग से वर्णन किया गया है। लोकपर्व में ये लोग सब कुछ भूलकर उत्सव का आनंद लेते हैं। “बरस में एक बार चोट्टि स्थान आदिवासियों से भर जाता है-विजयादशमी के दिन, चोट्टि मेला में। उस दिन पच्चीस-तीन गाँवों के आदिवासी उस मेले में आते। बाँस के बनाए आकारों पर कागज लगाकर वे लोग बड़े-बड़े बाघ, हाथी, घोड़े बनाते। उनको उठाकर नाचते। लड़कियाँ भी नाचती। महुआ की शराब पीते। वह नाच सवेरे तीन बजे तक चलता। उसके बाद चोट्टि मेला का असली आनंद शुरू होता। मेला एक लम्बे-चौड़े मैदान में लगता। उसी मैदान में आदिवासियों की तीर चलाने की प्रतियोगिता होती। टार्गेट क्रमशः पीछे हटा दिया जाता था। अन्त में जो आखिरी निशाना लगाना होता वह बहुत ही मुश्किल होता। एक-पर-एक दो बाँसों में लोहे के छल्ले बाँधे जाते। इस तरह के तीन छल्ले रहते। उनके पीछे आँख बना बोर्ड रहता। छल्लों में होकर उस आँख का निशाना लगाना होता था”²² आदिवासियों में जीवन के प्रति एक अलग ही उत्साह देखा जाता है।

त्योहारों में इनके जीवन का एक अलग ही रंग दिखाई देता है। ये नाच-गाकर ही जीवन में उमंग भरते हैं। तीर चलाने की प्रतियोगिता में जब ये जीतकर आते हैं तो मांस बनाते और गाते हुए नाचते हैं-

“तुम धनुक उठाओ, निशाना लगाओ

दरोगा को बड़ा भय है

तुम गौरमेन को अर्जी बताओ

दारोगा को बड़ा डर है!

तुम्हें तीर नहीं चलाने दिया

तुमने तीर सिखाया दुखिया मुण्डा को

बेगार वाले दुखिया को हे!

दुखिया ने काटा गुमाश्ता का सिर

डर है दरोगा को हे!

तुम्हें तीर खेलने देगा नहीं।

कौन मुण्डा जानता तीर का मन्तर ?

अकेले तुम जानते हो।

कौन मुण्डा होता गौरमेन का मिला ?

अकेले तुम बने हे।

इससे तुम्हें तीर खेलने न दिया।”²³

इस उपन्यास में मुण्डाओं के अशिक्षित होने के कारण लोग उन्हें किस प्रकार कर्जदार बना लेते थे, इस बात का चित्रण किया गया है- “आदिवासियों का कर्जदार होना बड़ी सीधी बात थी। कागज पर एक बार अँगूठा-निशानी से जन्म तक बेगार देते रहते।”²⁴ ये लोग मजबूरीवश कल्पना से भी कम मजदूरी पर काम कर देते थे। ये लोग अपनी जबान के पक्के होते हैं। जैसा इन्होंने बोल दिया वैसा ही काम करते थे।

इसमें मुण्डा आदिवासी महिलाओं की पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक स्थिति का चित्रण किया गया है। ये सभी कामों में पुरुषों का साथ देती हैं बल्कि पुरुषों से अधिक काम करती हैं। ये महिलाएँ कलाओं के क्षेत्र में भी आगे रहती हैं। चोटिट की पत्नी ने लाल पीले धागों से चटाई बनाई थी। अमलेश और उसकी पत्नी उसे खरीदना चाहते थे। आदिवासी लोग इतने सीधे होते हैं। अमलेश जब चटाई का दाम पूछता है तो चोटिट कहता है- “जंगल की घास से मेरी पत्नी ने चटाई बनाई है। मेरे

भाई की नातिन, भाई नहीं है, ने लाल-पीले धाग दिए हैं। मैं सिर पर लादकर लाया। अब बताइए, इसका दाम कैसे चुकेगा ? जंगल की घास के दाम नहीं और हरमू की माँ की बिनाई का दाम आँका नहीं जा सकता। वह बुढ़िया सबको प्यार से बिनकर देती है।”²⁵ चोटिट इसका दाम लिए बिना ही उन्हें दे देता है।

सरकार इन आदिवासियों के लिए योजनाएँ तो बनाती है, लेकिन वे सिर्फ कागजों में ही चलती है। जब इन्हें समझाया जाता है तो इन्हें समझ में भी नहीं आता। एक आदिवासी अफसर कहता है- “सरकार तो आदिवासियों की भलाई ही चाहती है, नहीं तो दफ्तर नहीं खोलती लेकिन मालिक-महाजन में अधिकतर अशिक्षित हैं। पुरानी आदत नहीं छोड़ेंगे। महाजन के पास जिसके हाथ-पैर बँधे हैं, उनकी भलाई करने के लिए हमें उनकी क्षमता बढ़ानी होगी। कुटीर-उद्योग कब करेंगे ? बेगार देंगे, महाजन के खेत में मेहनत-मजूरी करेंगे। खेती किसानी करने वाली जाति को तुरन्त हाथ का काम सिखाना क्या सम्भव है ?”²⁶ अशिक्षा ही मुण्डा आदिवासियों की दयनीय स्थिति का कारण है।

इस उपन्यास में मुण्डारी जाति और दूसरी अस्पृश्य हिन्दू जातियों के विद्रोह की गाथा है। जो हमारे देश में फैले भ्रष्टाचार का सच उजागर करती है।

वीणा सिन्हा - सपनों से बाहर

वीणा सिन्हा द्वारा रचित उपन्यास 'सपनों से बाहर' चिकित्सा विज्ञान जैसे कठिन विषय पर लिखा गया है। इसका नायक जयदीप सबसे पहले निशिंगंधा से प्रेम करता है, परंतु जयदीप के घरवालों की सोच के चलते उन्हें अलग होना पड़ता है और दोनों के रास्ते अलग-अलग हो जाते हैं। निशिंगंधा के सहज, सरल स्वभाव ने जयदीप को उसकी तरफ आकर्षित किया था। जयदीप निशिंगंधा के बारे में सोचता है। "कितनी सहज थी निशिंगंधा! बिल्कुल नदी की तरह या उगती हुई धूप की तरह या खिलखिलाती धूप की तरह।"²⁷ जयदीप के घरवालों की ऊँची महत्त्वाकांक्षाओं के आगे इनका प्रेम टिक नहीं पाता है।

जयदीप का विवाह उसके घर वाले सुमिता से करते हैं। सुमिता पढ़ी-लिखी, समझदार और उच्च महत्त्वाकांक्षी लड़की थी, वहीं जयदीप एक ईमानदार और सरल तरीके से अपनी जिन्दगी गुजारना चाहता है। दोनों के आपसी मतभेद के चलते जयदीप से अलग हो जाती है।

जयदीप एक ईमानदार डॉक्टर है और वह पूरी ईमानदारी से अपना काम करता है। ईमानदार होने के कारण ही भ्रष्ट अफसर शाही के द्वारा उसका तबादला पन्ना जिले के कटनी से लगे रैपुरा गाँव में कर दिया जाता है। इस गाँव में अधिकांश आदिवासी अभावों में अपना जीवन गुजार रहे हैं। नक्सवाद की समस्या से जूझते ये लोग आधार भूत सुविधाओं से भी वंचित हैं। रैपुरा अस्पताल में पहुँचते ही जयदीप देखता है कि- "एक मरियल सी औरत माथे तक आँचल खींचकर तीन-चार बच्चों को लिये बैठी थी। कपड़े फटे थे और चिप्पी लगाते-लगाते और खराब हो गए थे।"²⁸ इससे इन लोगों की अभावग्रस्तता का पता चलता है।

लभाना आदिवासी शिकार करके अपनी आजीविका चलाते हैं लेकिन वन विभाग के अधिकारी उनसे भी रिश्वत के चमड़ा व माँस तथा उनके द्वारा बनाई गई

वस्तुएँ लेते हैं। जयदीप सोचता है कि- “मनुष्य किस तरह प्रकृति से सांस्कृतिक विकास की अनेक संभावनाएँ प्राप्त करता है। पर्यावरण का प्रभाव विशिष्ट सांस्कृतिक विकास के संदर्भ में नए अर्थ ग्रहण करता है।”²⁹

इस उपन्यास में लमाना जाति के अंधविश्वास, परम्पराओं, पहनावा आदि का भी चित्रण किया गया है। जयदीप गाँव में जाता है तो वहाँ की वेशभूषा देखकर चकित हो जाता है- “पीले नांरगी रंग का घाघरा-चोली पहने एक युवती बस्ती से पानी लेकर आ रही थी। माथे से खींचकर पीछे बंधे बालों की वजह से चौड़ा माथा और भी चौड़ा लग रहा था। कानों के ढार में लगा शीशा धूप में चमक रहा था। लरकिया झूल जाती थी। छोटी-सी नाक में फँसी लौंग काफी बड़ी थी। गुदने से गुदे हाथ चूरा मोगरों और बाकों से भरे थे। चलते समय पाँव के टोलड़ खनखना उठते थे।”³⁰

शिक्षा के अभाव में ये लोग अनेक अंधविश्वासों से घिरे हुए हैं। रूपकुँवर का बेमेल विवाह अघेड़ धनेसर से दूसरी पत्नी के रूप में कर दिया जाता है। रूपकुँवर का मामा धनेसर से कठौत की रकम वसूल करता है। रूपकुँवर के पिता पर जेलर रंगीलाल द्वारा जेल में दैहिक शोषण किये जाने कारण माना की मृत्यु हो जाती है, डॉ. जयदीप को गलत रिपोर्ट देने के लिये कहा है, परन्तु जयदीप ऐसा करने से मना कर देता है। हल्के ठाकुर जयदीप को जान से मारने की धमकी देकर रूपकुँवर के साथ बलात्कार करता है। जिससे रूपकुँवर गर्भवती हो जाती है। डॉ. जयदीप के साथ रूपकुँवर के अवैध सम्बन्ध बताकर गर्भवती होने का आरोप लगाया जाता है। इस कारण गाँव में पंचायत बिठाई जाती है। पंचायत के फैसले के अनुसार धनेसर को दण्ड की रकम भरने तथा पूरी जाति को भोज कराने का आदेश दिया जाता है। इतना सब कुछ हो जाने पर भी जयदीप हिम्मत नहीं हारता तथा धनेसर के मन में अपने लिये जगह बना लेता है। परिणाम स्वरूप धनेसर रूपकुँवर को कटनी एस.पी. से मिलकर बयान देने ले जाता है।

जयदीप जब नेताजी के सामने आदिवासियों के शोषण की बात करता है और बताता है कि गाँव वालों का गलत इलाज हो रहा है, तो नेताजी उसे धमकी देते हैं। नेताजी के साथ काम करने वाला मिसिरजी जयदीप से कहता है- “अपने नायब साहब बहुत नेक हैं। कलेक्टर साहब तक उनका कहा टाल नहीं सकते। हुजूर खुश रहें तो सब ठीक रहता है। आपको भीतर की बात बताऊँ, थानेदार आपसे नाराज है, पोस्टमार्टम की रिपोर्ट में आप जबर्दस्ती उलझ गए। कलेक्टर तक बात पहुँच गई है। कल आपने देख ही लिया। हम तो साहब इधर भी देखते हैं और उधर भी। मालिक लोगों को नाराज करके चैन से रह पाना मुश्किल है।”³¹ जयदीप जैसा ईमानदार डॉक्टर इन भ्रष्ट नेताओं की वजह से कुछ नहीं कर पाते हैं।

जयदीप के माध्यम से भ्रष्ट अफसर शाही का कच्चा चिट्ठा प्रस्तुत किया गया है तथा गरीब आदिवासियों के शोषण का चित्रण किया गया है।

संजीव - जंगल जहाँ शुरु होता है

संजीव रचित उपन्यास 'जंगल जहाँ शुरु होता है' एक महत्त्वपूर्ण उपन्यास है। इसमें भारत-नेपाल सीमा पर स्थित घने वनों में रहने वाले थारु आदिवासियों का वर्णन किया गया है। थारुओं ने अंग्रेजों की गुलामी को कभी स्वीकार नहीं किया था इसीलिये अंग्रेजों ने इन्हें चोर, डाकू आदिवासी बना दिया है।

इस उपन्यास में एक ईमानदार पुलिस अधिकारी कुमार का सामना थारु आदिवासियों से होता है तो उन्हें इनके अनैतिक कामों का पता चलता है। ईमानदारी के साथ कुमार डाकूओं को पकड़ना चाहता है किंतु भ्रष्ट शासन तंत्र में सभी के सामने मुख्यमंत्री द्वारा उसका अपमान किया जाता है। कुमार को ऑपरेशन ब्लैक पॉइथन के अन्तर्गत पश्चिमी चम्पारण में पुलिस उपअधीक्षक नियुक्त किया जाता है। जिसका सामना काली और परशुराम जैसे डाकूओं से होता है, जो किसी मजबूरी के चलते डाकू बने हैं। ये महिलाओं को बेचने का काम करते-करते हथियार बेचने लगते हैं। आदिवासियों में शिक्षा की कमी के कारण ये लोग ऐसे काम करने के लिये मजबूर हो जाते हैं।

रस उपन्यास में पुलिस व्यवस्था पर भी करारा प्रहार किया गया है। पुलिस थारु आदिवासियों को मार-मारकर उन्हें डाकू बना देती है तथा उन्हें विद्रोही बताकर उनका एनकाउंटर करवा देती है। पुलिस वालों के लिए काली के मन में जो गुस्सा भरा है, वो कुमार से इस प्रकार व्यक्त करता है। “अव्वल तो मुकदमा चलेगा ही नहीं, एनकाउंटर के नाम पर मारकर फोटो खिंचवाने का शौक हो तो अलग बात है, दूजे मुकदमें और सजा के बाद मेरी जाति नहीं बदल जाएगी, हालात नहीं बदल जाएंगे, मैं फिर उसी दल-दल में सडूंगा।”³²

आदिवासियों में अशिक्षा के कारण अंधविश्वास इस कदर फैला हुआ है कि उन्हें उनकी बातें ही सही लगती है, उससे अलग हटकर वो सोचना ही नहीं चाहते हैं। जंगल से आवाजें आने पर कुमार का नौकर पारबती कहता है कि- “हजूर, बनसप्ती

देवी हैं, भटका रही है। डाकुओं की देवी हैं। कभी कोई रूप धर लेती है, कभी कोई और ऊ दिन भी ऊ लड़की-लड़की थोड़े ही थी, उन्हीं की माया थी। आँखों पर परदा न डाल देती हैं मैया!”³³ इसी प्रकार थारुओं के धार्मिक विश्वास देखिये- “साँप की डँसी थी दुलारी धीया। न जलाई जा सकती थी, न गाड़ी। बड़े-बूढ़े जो कहते हैं वही करना होता है। बनकटा गाँव के बड़े-बूढ़ों की राय है कि लाश को परवाह (प्रवाहित) कर दिया जाए। कई बार तो गंगा मइया खुद ही खींच लेती है विष और मुर्दा जी उठता है।”³⁴ इन अशिक्षित आदिवासियों को कौन समझाए की मरा हुआ इंसान कभी जिंदा नहीं हो सकता। अशिक्षा के कारण ही आज ये लोग पिछड़ रहे हैं।

वैसे तो आदिवासियों में सामान्यतया छुआछूत को नहीं माना जाता। लेकिन इस उपन्यास में थारुओं में छुआछूत को बताया गया है। जब इस्लाम सबके साथ बैठकर चाय पी रहा होता है, तब परेमा कहता है- “एक पेड़ की छाँव में इस्लाम बैठकर दोने में चाय सुड़क रहे थे। मियाँ है। बरतन छुआ जाएगा तो फैंकना पड़ेगा। एक पल को ठिठकता है परेमा, अरे ए तिवारी, अब से चाचा के लिए एक ठो परमानेंट बरतन का जुगाड़ रखवाओं।”³⁵

इसमें थारु आदिवासी महिलाओं की स्थिति को दयनीय दयनीय बताया गया है। जो अपने पतियों के वजह से देह व्यापार में लिप्त हो जाती है। उन्हें एक वस्तु समझा जाता है, कोई भी उनसे अपना मन बहला सकता है। महिलाओं के बेचने के लिए ये किसी भी हद तक जा सकते हैं। पुरुषों के लिये रिशतों का कोई मोल नहीं होता है। जोगी के बारे में सोखाइन कहती है- “धीरे-धीरे वह औरतों को फुसलाकर लाने और उन्हें बेटी-बहन के नाम पर ग्राहकों को बेच आने के पूरे तंत्र से वाकिफ होता गया जैसे यह कि इस सौदेबाजी में कभी भी भावुक नहीं होना है, दिल को इतना कड़ा कर लेना है कि चाहे अपनी सगी बेटी, बहू, बहन या पत्नी ही क्यों न हो, अच्छी कीमत मिले तो धंधे की धरम ई है कि देने से नहीं बिचकना है, कि जैसे बिल्ली अपने नन्हें बच्चों को कभी एक मुकाम पर नहीं रखती, उसी तरह तुम भी लड़की के मुकाम बदलते रहो, अपना भी। लड़की को मर्दों वाले घरों में न रखो, आग से ‘खर’ की रखवाली

नहीं हो सकती। औरतों के घरों में वे खप जाती हैं, संदेह भी नहीं होता। जब भी रास्ते में कोई टोके, बेटी, बहन या बहू ही बताओ, दूसरे रिश्ते शक के दायरे में आ जाते हैं।”³⁶

इस प्रकार इस उपन्यास में थारु आदिवासियों के जीवन को चित्रित किया गया है। साथ ही साथ इनके लोकगीत, अंधविश्वासों, छुआछूत, महिलाओं की स्थिति, पुलिस प्रशासन का रवैया आदि बातों की भी जानकारी मिलती है।

संजीव रचित उपन्यास ‘जंगल जहाँ शुरु होता है एक महत्त्वपूर्ण उपन्यास है। इसमें भारत नेपाल सीमा पर सिथत घने वनों में रहने वाले थारु आदिवासियों का वर्णन किया गया है। थारुओं ने अंग्रेजों की गुलामी को कभी स्वीकार नहीं किया था इसीलिये अंग्रेजों ने इन्हें चोर, डाकू आदिवासी बना दिया है।

इस उपन्यास में एक ईमानदार पुलिस अधिकारी कुमार का सामना थारु आदिवासियों से होता है तो उन्हें इनके अनैतिक कामों का पता चलता है। ईमानदारी के साथ कुमार डाकूओं को पकड़ना चाहता है किंतु भ्रष्ट शासन तंत्र में सभी के सामने मुख्यमंत्री द्वारा उसका अपमान किया जाता है। कुमार को ऑपरेशन ब्लैक पॉइथन के अन्तर्गत पश्चिमी चम्पारण में पुलिस उपअधीक्षक नियुक्त किया जाता है। जिसका सामना काली और परशुराम जैसे डाकूओं से होता है, जो किसी मजबूरी के चलते डाकू बने हैं। ये महिलाओं को बेचने का काम करते-करते हथियार बेचने लगते हैं। आदिवासियों में शिक्षा की कमी के कारण ये लोग ऐसे काम करने के लिये मजबूर हो जाते हैं।

इस उपन्यास में पुलिस व्यवस्था पर भी करारा प्रहार किया गया है। पुलिस थारु आदिवासियों को मार-मारकर उन्हें डाकू बना देती है तथा उन्हें विद्रोही बताकर उनका एनकाउंटर करवा देती है। पुलिस वालों के लिए काली के मन में जो गुस्सा भरा है, वो कुमार से इस प्रकार व्यक्त करता है। “अब्वल तो मुकदमा चलेगा ही नहीं, एनकाउंटर के नाम पर मारकर फोटो खिंचवाने का शौक हो तो अलग बात है, दूजे

मुकदमें और सजा के बाद मेरी जाति नहीं बदल जाएगी, हालात नहीं बदल जाएँगे, मैं फिर उसी दलदल में सँडूँगा।”

आदिवासियों में अशिक्षा के कारण अंधविश्वास इस कदल फैला हुआ है कि उन्हें उनकी बातें ही सही लगती है, उससे अलग हटकर वो सोचना ही नहीं चाहते हैं। जंगल से आवाजे आने पर कुमार का नौकर पारबती कहता है कि “हजूर बनस्पती देवी हैं, भटका रही है। डाकुओं की देवी है। कभी कोई रूप धर लेती है, कभी कोई। और ऊ दिन भी ऊ लड़की लड़की थोड़े ही थी, उन्हीं की माया थी। आँखों पर परदा न डाल देती हैं मैया!” इसी प्रकार थारुओं के धार्मिक विश्वास देखिये- “साँप की डँसी थी दुलारी धीया। न जलाई जा सकती थी, न गाड़ी। बड़े-बूढ़े जो कहते हैं वही करना होता है। बनकटा गाँव के बड़े-बूढ़ों की राय है कि लाश को परवाह (प्रवाहित) कर दिया जाए। कई बार तो गंगा मइया खुद ही खींच लेती है विष और मुर्दा जी उठता है।” इन अशिक्षित आदिवासियों को कौन समझाए की मरा हुआ इंसान कभी जिंदा नहीं हो सकता। अशिक्षा के कारण ही आज ये लोग पिछड़ रहे हैं।

वैसे तो आदिवासियों में सामान्यतया छूआछूत को नहीं माना जाता। लेकिन इस उपन्यास में थारुओं में छूआछूत को बताया गया है। जब इस्लाम सबके साथ बैठकर चाय पी रहा होता है, तब परेमा कहता है- “एक पेड़ की छाँव में इस्लाम बैठकर दोने में चाय सुड़क रहे थे। मियाँ हैं। बरतन छुआ जाएगा तो फैंकना पड़ेगा। एक पल को ठिठकता है परेमा, ‘अरे ए तिवारी’, अब से चाचा के लिए एक ठो परमानेंट बरतन का जुगाड़ रखवाओ।”

इसमें थारु आदिवासी महिलाओं को स्थिति को दयनीय बताया गया है। जो अपने पतियों के वजह से देह व्यापार में लिप्त हो जाती है। उन्हें एक वस्तु समझा जाता है, कोई भी उनसे अपना मन बहला सकता है। महिलाओं के बेचने के लिए ये किसी भी हद तक जा सकते हैं। पुरुषों के लिये रिश्तों का कोई मोल नहीं होता है। जोगी के बारे में सोखाइन कहती है। “धीरे-धीरे वह औरतों को फुसलाकर लाने और उन्हें

बेटी-बहन के नाम पर ग्राहकों को बेच आने के पूरे तंत्र से वाकिफ होता गया जैसे यह कि इस सौदेबाजी में कभी भी भावुक नहीं होना है, दिल को इतना कड़ा कर लेना है कि चाहे अपनी सगी बेटी, बहू, बहन या पत्नी ही क्यों न हो, अच्छी कीमत मिले तो धंधे की धरम ई है कि देने से नहीं बिचकना है, कि जैसे बिल्ली अपने नन्हें बच्चों को कभी एक मुकाम बदलते रहो अपना भी। लड़की को मर्दों वाले घरों में न रखो, आग से 'खर' की रखवाली नहीं हो सकती। औरतों के घरों में वे खप जाती हैं, संदेह भी नहीं होता। जब भी रास्ते में कोई टोके, 'बेटी', 'बहन' या 'बहू' ही बताओ, दूसरे रिश्ते शक के दायरे में आ जाते हैं।”

इस उपन्यास में महिलाओं की स्थिति का मार्मिक चित्रण किया गया है। दुःख की बात तो यह है कि एक औरत ही दूसरी औरत के शोषण के लिए जिम्मेदार होती है। ये महिलाएँ झाड़-फूँक करने वाली या चुड़िहारिन बनकर गाँव में जाती है और औरतों को बहला-फुसलाकर ले आती है बेचने के लिए।

थारु आदिवासी महिला की स्थिति का पता उपन्यास में आए इस कथन से चलता है- “अब सवाल रहा लड़कियों के मिलने का, तो राम जी की दया से उनकी पैदावार कुछ ज्यादा ही है और अपने यहाँ वह आफत ही समझी जाती हैं। नून चटाने से भी अब नहीं मरती, जैसा-तैसा खाकर भी तैयार हो जाती हैं। दहेज की मार है। फिर किस घर में झगड़ा-टंटा, मुँह-फुलौवल नहीं होती! बस ऐसी औरत का पता करना है, उससे मेल-जोल बढ़ाकर उसके मन को परिवार से अलगाते रहो मौका पाते ही निकाल ले आओ। वैसे भी घर से भागी, घर से निकाली गई या चूसकर छोड़ी गई औरतों की कमी है क्या! अब रहे खरीददार, तो रंडुए, ऐयास, ठेकेदार, बनिए, यहाँ तक कि मास्टर और पुजारी तथा बाल ब्रह्मचारी भी-औरत किसे नहीं चाहिए? कोई बोलता है, कोई नहीं। बस ऊपरी लोक लाज का एक छिलका-भर है, मौका मिलने पर कोई नहीं छोड़ता!”³⁷ जिस समाज में महिलाओं को लेकर ऐसी सोच रहेगी वो समाज कभी आगे नहीं बढ़ सकता।

आदिवासी लोकगीतों की छटा भी इस उपन्यास में दिखाई पड़ती है-

“के अनिहें सुहानारी, के अनिहें कंगना,

कि के अनिहें कंगना,

हो के अनिहें कंगना,

से के अनिहें...हिरदिया दरपनवाँ

के अनिहें....

अरे बाबा अनिहें सुहानारी

हो बाबा अनिहें सुहानारी

हाय बाबा अनिहें सुहानारी,

कि भइया अनिहें कंगना,

हमर भइया अनिहें कंगना,

कि वीरन अनिहें कंगना,

से सइहाँ अनिहें हिरदिया दरपनवाँ

हो राजा अनिहें हिरदिया दरपनवाँ

हमर बलमवाँ अनिहें हिरदिया दरपनवाँ.....।”³⁸

इस प्रकार इस उपन्यास में थारु आदिवासियों के जीवन को चित्रित किया गया है। साथ ही साथ इनके लोकगीत, अंधविश्वासों, छुआछूत, महिलाओं की स्थिति, पुलिस प्रशासन का रवैया आदि बातों की भी जानकारी मिलती है।

पुन्नी सिंह - सहराना

‘सहराना’ उपन्यास के लेखक पुन्नी सिंह ने इस उपन्यास में राजस्थान के कोटा संभाग के दक्षिण-पूर्व के कुछ जिलों और मध्यप्रदेश के ग्वालियर संभाग के दक्षिण-पश्चिम के कुछ जिलों में फैले सहरिया आदिवासियों का चित्रण किया है। इसमें सोमा के माध्यम से सहराने में व्याप्त अशिक्षित लोगों की मनोव्यथा को व्यक्त किया गया है। ‘सहराना’ उपन्यास में सोमा सहरिया के जीवन संघर्ष, जिजीविषा, उसका उत्थान और पतन के साथ-साथ सहरिया आदिवासियों की व्यथा को चित्रित किया गया है।

इस उपन्यास का नायक सोमा शुरु से ही चाहता है कि उसके सहराने में परिवर्तन आए तथा सहाराने के लोग भी शिक्षित हो। लेकिन सहराने में अशिक्षा व अज्ञानता इस तरह से व्याप्त है कि लोग जागरुक ही नहीं हो पाते हैं। सभी प्रकार की सरकारी सहायता मिलने के बाद भी सोमा, बल्ला और नन्दराम जैसे लोग पांचवीं, दसवीं तक शिक्षा लेने के बाद अपने सहराने वापस आ जाते हैं। बल्ला और सोमा डाक बंगले में चौकीदार की नौकरी करते हैं।

सहराना कूनो नदी के किनारे बसा हुआ है जहाँ पहले घने जंगल हुआ करते थे लेकिन धीरे-धीरे जंगल कम हो गया लेकिन सहरिया आदिवासियों की संख्या में कोई कमी नहीं आई। इस उपन्यास का केन्द्र बिन्दु सहाराना है जिसमें बुधा डोकरा, फोदलिया और अंजनी काकी जैसे वृद्ध लोग हैं, सोमा, अनारी, पांच्या, गोगैया जैसे नये जमाने के लड़के भी हैं, जो कुछ करने का जज्बा रखते हैं। सहरियाओं में शिक्षा का अभाव पाया जाता है क्योंकि इनको पढ़ने नहीं दिया जाता है। सहरिया के बच्चों को विद्यालय जाते देखकर लोग कहते हैं- “अये भिओ जे घाटी में का हेव जा रओ है ?...जो सैर का मोड़ा-मौड़ी पढ़बे लगे तो फिर है गओ बंटाढार...ऐसा हाल तो पहले कबऊ नाय सुनो...हौ, बड़े उल्टे जमानो आओ है भैया।”³⁹

इस उपन्यास में पति-पत्नी, माता-पिता, बहन-बहन आदि सम्बन्धों का चित्रण किया गया है। सोमा की घरवाली चंपा के माध्यम से नारी के पारिवारिक कर्तव्यों को बताया गया है। सोमा चंपा से प्रेम करता है और उससे विवाह करके अपना जीवन खुशी-खुशी जीना चाहता है लेकिन सोमा को जाने क्या सूझा की उसने चंपा की चचेरी बहन लाड़िली से दूसरा विवाह कर लिया और चंपा को छोड़कर लाड़िली के साथ रहने लगा। सोमा का मन लाड़िली के साथ भी ज्यादा दिन नहीं लगा। लाड़िली के द्वारा चंपा के साथ इतना बुरा किया जाने पर भी “वह सोचने लगी कि लाड़िली आखिर उसकी ममेरी भैंन है। बचपन में वे दोनों साथ-ही-साथ पली-बढ़ी हैं। खेली-कूदी हैं। लाड़िली को वह खूब अच्छी तरह से जानती है। वह मन की बुरी नहीं है। वह चंपा का हमेशा लिहाज करती रही है। एक यही काम उससे गलत हुआ है कि उसने सोमा को भरमा लिया था। अब जब उसका सोमा वापस मिल गया है तो लाड़िली से किस बात का झगड़ा ? उसका मन लाड़िली से मिलने से किस बात का झगड़ा ? उसका मन लाड़िली से मिलने को तड़प उठा, लेकिन अपने मन की तड़प वह किसी को बता भी तो नहीं सकती थी।”⁴⁰ चंपा लाड़िली की बीमारी के बारे में सुनकर उससे मिलने जाती है और उसे माफ कर देती है।

इसमें सहरिया आदिवासियों के लोकपर्व, धार्मिक विश्वास, लोकगीत, लोककथाओं आदि के बारे में भी बताया गया है। सहरिया लोग अपने त्योहारों को बड़ी धूम-धाम से मनाते हैं। “इस इलाके के सहरियों का एक मशूर नृत्य है- लहँगी नृत्य! यह नृत्य घाटी के गाँवों और सहरानों में सावन-भादों में खास तौर से चलता है। ‘लहँगी’ शब्द शायद लहँगा से बना होगा। इस नृत्य की खास बात यह है कि इसमें नर्तकों की संख्या की कोई सीमा नहीं होती है। चाहे तो सहराने का पूरा पुरुष वर्ग इसमें सम्मिलित हो सकता है। नर्तक लोग गोल घेरे में खड़े होकर दोनों हाथों में लकड़ी के छोटे-छोटे डंडे लेकर ढोलक और सब्बल की धुन पर कम से कम पंक्तियों वाला लोकगीत गाते हैं और नाचते हैं। ढोलक वाले गोले के अन्दर होते हैं। वहीं पर एक खम्भे से सब्बल झूलती होती है। उसको लोहे के डंडे से ढोलकों की ताल के साथ

बजाया जाता है। लहँगी के कई स्टेप इस तरह के होते हैं, जिनमें नर्तकों का घेरा जमीन पर सूखते हुए लहँगे जैसा ही दिखता है, संभवतः इसी बात के चलते इस नृत्य का 'लहँगी' नाम पड़ा हो।⁴¹ इसी प्रकार सहराना अपने सभी त्योहार मनाता है।

इस उपन्यास में अंजनी काकी जैसी महिला पंचायत में जाती है और बोलती भी है। सामान्यतः आदिवासियों में महिलाओं का पंचायत में जाना व बोलना मना है। जब उन्हें बुलाया जाता है वे तभी जाती है और जब बोलने को कहा जाता है तभी बोलती। यह परिवर्तन इस समाज में देखा गया है।

सहरिया आदिवासियों के मृत्यु संस्कार पर भी इसमें प्रकाश डाला गया है। बुधा डोकरा कि मृत्यु के बाद सहराने वाले उसके दाह- क्रिया से लेकर बेलपत्ती (मृत्यु के तीन दिन बाद का एक संस्कार) तक का संस्कार अच्छे से कर देते हैं। खच्च (तेरहवें दिन का संस्कार) संस्कार के लिए कोई आगे नहीं आ रहा था। “सहराने की एक अच्छी परम्परा यह है कि यहाँ मृत्यु-संस्कार अपनी सुविधा के अनुसार किये जा सकते हैं। जिस आदमी का पुरखा मरा है वह अगर चाहे तो 'खर्च' के समय पुरे सहराने को खिलाये, और भी बड़ा करने की कूवत हो तो पूरी घाटी के सहरियों को खिलाये और अगर कुव्वत नहीं है तो एक डलिया पूड़ी बनाकर रख दे, उसी में से पूरा सहराना बाँटकर खा लेगा। यहाँ के समाज में यह सुविधा भी है कि कोई व्यक्ति अपने पुरखे का खर्च तेरहवें दिन नहीं कर सकता तो आगे जब तक सुविधा हो तब तक कर सकता है।”⁴²

समय के साथ-साथ सहरिया आदिवासियों में भी परिवर्तन आया है। वह अब आदिम समाज नहीं रहा है। इनमें भी महिलाओं की दशा ठीक वैसी ही है जैसी भारत के अन्य समाजों में है। इनमें तो महिलाएँ उतनी स्वतन्त्र भी नहीं हैं जितनी स्वतन्त्र अन्य समाजों में काम करने वाली स्त्रियाँ हैं।

इस उपन्यास में अंजनी काकी जैसी महिला के द्वारा लोगों की सोच में परिवर्तन को बताया गया है। अंजनी काकी अपनी पोती के जन्म पर खुशियाँ मनाती

है, इससे सहराने के लोग आश्चर्यचकित हो जाते हैं। कुछ लोग इसका विरोध करते हैं तो कुछ इसका समर्थन।

सोमा इस बात को समझ गया था कि सहराने में अगर परिवर्तन होगा तो, शिक्षा के द्वारा ही होगा। इसी वजह से वह लोगों को बच्चों को पढ़ाने के लिए कहता था। वह अपनी बेटी को भी पढ़ाना चाहता था। लड़का-लकड़ी में कोई फर्क नहीं करना भी इस उपन्यास में बताया गया है।

मधु कांकरिया - खुले गगन के लाल सितारे

मधु कांकरिया ने 'खुले गगन के लाल सितारे' उपन्यास में नक्सलवाद को उभारा है। ये उपन्यास नक्सली भावना से ओतप्रोत, नक्सली उन्मूलन, नक्सलवादी क्रेज और युवाओं में नक्सलवादी बनने की भावनाओं को बयां करता है। नक्सलबाड़ी में हो रहे शोषण का वर्णन बड़े रोचक ढंग से किया गया है।

नक्सलवादियों को बिना वजह जेल में बंद करके उन्हें भिन्न-भिन्न तरीके से यातनाएँ दी जाती हैं, जिसके चलते, उनकी मौत तक हो जाती थी और पुलिस उसका कोई जवाब नहीं देती थी। गोविंद दा ने जेल में दी गई यातनाओं का वर्णन इस प्रकार दिया है- “उन क्षणों में मैं किस प्रकार बिलबिलाया कि इंसान के दर्जे से नीचे गिराकर भूसे के बारे में इस तरह धुना गया कि पिंडली के ऊपर मेरे पाँवों में जगह-जगह आलू जैसे गूमड़ निकल आए, कि पानी मँगने पर मुझे पेशाब दिया गया, यह सब बताना क्या इतना ही आसान है बस यह समझ लो कि मैं तब तक पीटा जाता रहा जब तक बेहोश नहीं हो गया था।”⁴³ इस प्रकार की सजा देने में पुलिस महिलाओं पर भी दया नहीं करती थी। गोविंद दा मणि से इस बारे में बताते हुए कहते हैं कि- “उन्हीं दिनों हमारी एक महिला कॉमरेड थी शुभा बसु उसके पूरे चेहरे को इसी रमेन ने इस प्रकार दाग दिया था जिस प्रकार बंगाल में विवाह के समय दुल्हन के चेहरे को चंदन और कुंकुम से सजा दिया जाता है।”⁴⁴

इस उपन्यास में मीडिया ने अपना महत्वपूर्ण रोल अदा किया है। सरकार जिसे उग्रवादी कहती है, मीडिया उसे उग्रवादी साबित कर देता है। जनता भी उसे सच मानती है नक्सलवादियों की जो छवि मीडिया बताता, मीडिया जो दिखाता है, जनता उसी को सच मानती है। नक्सलवादियों की जो छवि मीडिया बताता जनता उसी छवि को पहचानती है। “बिना चार्जशीट, बिना अरेस्ट वारंट के घर में घुस जाना, बाल पकड़कर बाहर निकालना, बिना किसी जवाबदेही के दूसरे दिन अखबार में न्यूज छपवा देना, नक्सलियों द्वारा बम-फोड़ और परिणाम स्वरूप सेल्फ डिफेंस (आत्मरक्षा) में उसकी मृत्यु जैसी घटनाएँ तो शहर का रिवाज हो चुकी थी।”⁴⁵

इस उपन्यास में मधु कांकरिया ने दक्षिणी बिहार के आदिवासियों की व्यथा का चित्रण भी किया है। यहाँ के आदिवासियों की दयनीय स्थिति के बारे में लेखिका ने बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया है- “गरीबी भयंकर गरीबी....पत्तियाँ उबालकर खाते लोग, नीम की निमौलिया चबाते लोग। कूड़े के ढेर से अन्न के दाने बीनते लोग। अकाल के दिनों अपनी संतानों को बेचते लोग।”⁴⁶

आदिवासियों के पर्व, रीति-रिवाज, परम्पराएँ, अशिक्षा आदि बातों का कच्चा चिट्ठा यहाँ प्रस्तुत किया गया है। इसका वर्णन लेखिका ने इस प्रकार किया है- “प्रकृति और श्रम पर पूरी तरह आश्रित, सरना धर्म को मानने वाली, पाता, बाहा और छऊ नृत्य में पूरी तरह डूबी, हड़िया (निजी ताड़ी) में जीवन ढूँढती अपनी जातीय स्मृति पर गर्वित यह अरण्य संस्कृति अपने जादू-टोनों, लोक-संस्कृति, लोग गीतों एवं रीति-रिवाजों की एक अद्भुत दुनिया थी। जहाँ आज भी अधिकांश आदिवासी एकलव्य परम्परा का पालन करते हुए तीरंदाजी में अपने दाहिने अगँठे का इस्तेमाल नहीं करते थे।”⁴⁷

इस उपन्यास में ये भी बताया गया है आदिवासी गरीबी और अशिक्षा के कारण अपना धर्म छोड़ रहे हैं और मिशनरी बन रहे हैं। सोना मुंडा अपनी बिमारी से ग्रस्त पत्नी के तथा अपनी गरीबी के बारे में बताता है कि- “मर्द की लहर पूरे बदन में दो साल तक रही। पैसों की कमी से बाहर नहीं ले जा पाए। हम जड़ी-बूटी देते रहे।

इस बीच दूसरे लड़के को भी मिरगी का दौरा पड़ने लगा। दो बच्चे पहले ही मर चुके थे और बाकी बचे हुए सभी बीमार, पत्नी बीमार। उन्हीं दिनों पादरी जेवा कुमार ने हमारे लिए प्रार्थना की। हमें भी इसी रास्ते पर चलना है। क्योंकि जब तक हम सरना में रहेंगे हम पर भूत-प्रेत का कोप रहेगा और तभी से जेवा कुमार के समझाने पर हम सभी ईसाई हो गए। कुछ नहीं बस पानी में डुबकी लगाकर साक्षी देकर लेना होता है। डुबकी लगाकर निकलते फादर सामने खड़े होते हैं। शपथ खाकर बोलना होता है कि पहले जो कर रहे थे....अब नहीं करेंगे।”⁴⁸ गरीबी के कारण इनके पास इसके अलावा ओर कोई रास्ता नहीं होता है।

सांस्कृतिकरण की वजह से ये लोग अपनी पहचान खोते जा रहे हैं। जैसा कि सोमा मुंडा ने बताया कि- “पहले हमारी स्वायत्त सरकारें थी। अपने कानून थे। अपनी सामाजिक पद्धति थी। यानी एक संपूर्ण आत्मनिर्भर ग्राम्य जीवन-पद्धति। इस स्वायत्त व्यवस्था पर पहला हस्तक्षेप हुआ मुगल शासन में राजपूत नरेशों द्वारा। फिर धीरे-धीरे अंग्रेजों ने इन्हीं नरेशों और जमींदारों के मार्फत हमारे सारे अधिकार छीन हमारी व्यवस्था को तरह-नहस कर दिया। महात्मा गाँधी ने हमें वचन दिया था कि अंग्रेजों के यहाँ से जाने के बाद हम अपना शासन स्वयं करेंगे लेकिन आज तक ऐसा नहीं हुआ। आज हमारी जमीन की एक-एक इंच इनके नियंत्रण में है। हमारे पास अपनी जमीन का कोई सरकारी पट्टा भी नहीं है क्योंकि हमने स्वयं को प्रकृति-पुत्र माना। इस कारण दूसरे किसानों की तरह हमें मुआवजा तक भी नहीं दिया जाता।”⁴⁹ उद्योगीकरण की सबसे ज्यादा मार इन आदिवासियों पर ही पड़ी है।

इस प्रकार आदिवासियों के भोलेपन, उनकी संस्कृति का चित्रण तथा नक्सलवाद की समस्या को इस उपन्यास में बताया गया है।

राकेश कुमार सिंह - पठार पर कोहरा

राकेश कुमार सिंह ने 'पठार पर कोहरा' उपन्यास में झारखण्ड के आदिवासियों के शोषण, उत्पीड़न और अत्याचारों में फँसे लोगों का चित्रण किया है। इसमें भारत की शिक्षा व्यवस्था पर करारा व्यंग्य किया गया है। यह संघर्षशील संजीव और आदिवासी महिला रंगेनी की कहानी है।

इसमें रंगेनी एक ऐसी आदिवासी महिला के रूप में उभरकर सामने आई है, जो अनेक पुरुषों द्वारा बलात्कार किये जाने पर भी अपने जीवन की सार्थकता को बनाए हुए है। इसी दौरान उसके पेट में पल रहे अंश पर भी आदिवासी समाज में सवाल उठाए गए की आखिर ये बच्चा सोनारा है किसका, परंतु रंगेनी के पास इसका कोई जवाब नहीं होता है। “जो कुछ रंगेनी के साथ बीता था, वह किसी औरत के लिए बेहयाई की बात थी। अपनी मरजी से तो किसी के साथ सो लेती हैं आदिवासिनें! कोई खराब नहीं मानता इसे। बेचू तिवारी या साहू के साथ कहीं खेत-खलिहान में सो लेना तो बहादुरी मानी जाती है, पर कोई जोर-जबर से किसी को पटककर चढ़ बैठे, तो... ? किसी आदिवासिन के मन के खिलाफ कोई उसकी जाँघ उधार दे... ? छिः.. ! किसी को बताने लायक तो क्या, कोई जान भी ले तो डूब मरने जोग बात...!”⁵⁰ रंगेनी ने इन सबके बावजूद अपने बेटे सोनारा को पाला।

संजीव जो गजलीठेरी में शिक्षक बनकर आया है। ये ईमानदार और संघर्षशील इंसान है। जब संजीव गजलीठेरी में आता है साहू बनिया लोगों में अफवाह फैला देता है कि नया मास्टर एक कम्युनिस्ट है और लोग उसकी बातों में आ जाते हैं इन सब बातों के प्रभावस्वरूप गाँव में उससे कोई बात नहीं करता है। संजीव पूरे गाँव में घूमते पर विद्यालय कहीं पता नहीं चलता है। विद्यालय ढूँढते-ढूँढते रात हो जाती है तो, संजीव गाँव में ही किसी के घर पर शरण लेने की सोचता, परंतु सभी गाँव वाले अपने दरवाजे बंद कर लेते हैं, अंत में रंगेनी की झोपड़ी में उसे आसरा मिलता है।

संजीव को स्पीड परियोजना के तहत शिक्षक नियुक्त किया जाता है। “स्पीड यानी स्टेट प्रोग्राम फॉर एलीमेंट्री एजुकेशन डेवलपमेंट। यह एक ऐसी संस्था है जिसे जापान, स्वीडन और आस्ट्रेलिया की सरकारों से करोड़ों रुपये मुहैया हो रहे हैं, ताकि बिहार और झारखंड को शिक्षित किया जा सके। परंतु स्पीड की मुख्य चिंता सुदूर देहात ही हैं, जहाँ शिक्षा जितनी आवश्यक है उतनी दुर्लभ और अनुपलब्ध होती है।”⁵¹ परंतु गजलीठेरी में विद्यालय कागजों पर चलता है। वास्तव में यहाँ कोई विद्यालय नहीं होता। संजीव गजलीठेरी के लोगों को जाग्रत करता है तथा पढ़ने के लिए प्रेरित करता है धीरे-धीरे वह एक विद्यालय खोलने में सफल हो जाते हैं। बेचू तिवारी और साहू लोग नहीं चाहते हैं कि आदिवासी पढ़-लिखकर आगे बढ़े क्योंकि इससे उनको ही नुकसान होना था, इसीलिए वे संजीव की हत्या करवा देते हैं।

इस उपन्यास में लोकजीवन का सजीव चित्रण भी किया गया है। आदिवासियों के लोकगीत, लोकपर्व, लोककथाएँ, धार्मिक विश्वास आदि का वर्णन किया गया है। आदिवासियों के लोकगीत का उदाहरण देखिये-

“खेया सेडोय हियो रे नाद नौर

खडोने डोय हियो रे नाद नौर

मिरिम चाँदों चाँद रे नाद नौर

भर चाँदो चाँद रे ले उना S S S।”⁵²

इसमें सरकारी योजनाओं के बारे में बताया गया है। जो बनाई तो बहुत जाती है लेकिन उनका क्रियान्वयन नहीं किया जाता है। “आजादी के बाद आदिवासियों के कल्याण की सैकड़ों योजनाएँ बनी हैं पर उनके क्रियान्वयन का क्या हुआ ? आबंटित राशि का दस प्रतिशत भी देश के आदिवासियों तक नहीं पहुँच रहा। कई योजनाएँ कागज पर चलती रहती है। कई योजनाएँ तो फाइलों की कब्र में ही दफन हो गयीं। ...जैसे कि यह प्राथमिक विद्यालय गजलीठेरी।”⁵³

संजीव को गजलीठेरी पहुँचने पर कहीं भी प्राथमिक विद्यालय नजर नहीं आता है तो वे जिला मुख्यालय के जनगणना कार्यालय में पहुँचकर छानबीन करते हैं। जनगणना के आँकड़े में 'गजनीठेरी' नाम एक गाँव का नाम था जहाँ के तीस घर और सत्ताइस परिवारों के आँकड़ों दर्ज थे। ये सभी आँकड़े फर्जी थे। "सब कुछ अनुमानों के आधार पर! इन्हीं जनगणना के नतीजों पर बनती हैं देश के विकास हेतु दूरगामी योजनाएँ जिन पर हजारों करोड़ रुपये हर वर्ष स्वाहा किये जाते हैं। जनता के लिए अनेक कल्याणकारी योजनाएँ इन्हीं आँकड़ों की पोली बुनियाद पर खड़ी की जाती है और उनके लिए पंचवर्षीय योजनाओं में लूट या भ्रष्टाचार की यज्ञ-समिधा बनने को करोड़ों रुपये के दान और अनुदान स्वीकृत किये जाते हैं।"⁵⁴ इस तरह के फर्जी आँकड़ों से ही योजनाएँ चलती है।

संजीव गजलीठेरी में प्राथमिक विद्यालय खुलवाने के लिए 'स्पीड' के मुख्यालय में शिकायत पत्र और स्मरणार्थ पत्र लिखते हैं और अन्त में उनकी मेहनत रंग लाती है। "गजलीठेरी के 'पायलेट प्रोजेक्ट' की अनियमितताओं की जाँच हेतु 'स्पीड' ने एक उच्चस्तरीय जाँच समिति गठित कर दी है। संजीव को लिखित सूचना भी मिल चुकी है किसी भी दिन दो सदस्यीय जाँच दल गजलीठेरी के दौरे पर आने वाला है। आखिरकार इस मामले पर ध्यान आकृष्ट करने में कामयाब रहे संजीव। गजलीठेरी आने का मुख्य लक्ष्य यही तो था- विद्यालय, सो पूरा होता नजर आने लगा है..."⁵⁵ आखिरकार संजीव विद्यालय खुलवाने में सफल हा जाते हैं।

इस उपन्यास में आदिवासियों के जनीशिकार पर्व का भी उल्लेख हुआ है। "आदिवासी समाज में हर बारहवें वर्ष आयोजित होता है 'जनीशिकार' का कार्यक्रम। उराँव समाज की सिनगी दाई और कैली दाई-दो वीर स्त्रियों की स्मृति को सुरक्षित रखने और अपनी महिलाओं के मर्दाने साहस के साथ मर्दों से जूझने के इतिहास को संरक्षित रखने का त्योहार है- 'जनीशिकार' शिकार का ऐसा आयोजन जिसमें जनानियाँ मर्दों का वेष धारण कर शिकार पर निकलती हैं साथ कोई पुरुष नहीं होता है।"⁵⁶ इस तरह स्त्रियाँ ये पर्व मनाती थी।

मुण्डा आदिवासियों में आस्था होती है, जिससे वे अपनी परम्पराएँ जीवित रखते हैं। “बरगद की बरोहों की भाँति वनवासियों के भीतर घँसी हैं ढेरों आदिम परम्पराएँ....। यह सार्थक आस्थाएँ ही तो थीं जिन्होंने सैकड़ों कबीलाई युद्ध जीते। शाश्वत विश्वासों के दम पर ही इन वनपुत्रों ने रच लिये हैं अनेक जंगली मिथक। अनन्त अरण्य-गाथाएँ। बेशक इनमें से अधिकांश को अन्धविश्वासों के खाते में ही डाला जाता रहेगा, पर किन्हीं आस्थाओं का मखौल उड़ाकर आस्थावान के मानस को नहीं बदला जा सकता। किसी के विश्वासों का सिर्फ मजाक बनाकर उसकी चेतना को माँजना-धोना असम्भव है। यह तो तभी सम्भव है जब आस्थावान की आस्था और विश्वास को धीरे-धीरे सार्थक चिन्तन और वैज्ञानिक दृष्टिकोण की ओर झुकने को विवश कर दिया जाए। एक तर्क संगत सोच निर्मित की जाय और इस दीर्घकालीन प्रक्रिया में पूरे धैर्य और सावधानी की जरूरत होती है।”⁵⁷

इसमें आदिवासियों के खान-पान के बारे में भी पता चलता है। संजीव को इनके स्वाद के बारे में पता नहीं था। “चने का साग, कद्दू या दूसरी कुछ सब्जियों के टुकड़े सुखाकर सुरक्षित रख लेती है घर की मालकिन। सोनारा के मुताबिक- “बाँस के खोखल” में। पानी में भिगोकर पकाई गयी ऐसी सूखी सब्जियाँ बेमौसम भी ताजा सब्जियों का स्वाद देती है। हाथ का बना मोटे अमचुर का नामक-लालमिर्च मिला सउना (चटनी) या बाँस की नयी कोंपलों के अचार का स्वाद भी संजीव के लिए अब तक अनजाने ही थे। ओल, कन्दा, शककरकन्द, पेकची आदि जमीनी कन्द का चोखा या चटनी भोजन के मुख्य व्यंजन दिखे गजलीठोरी में।”⁵⁸ इस तरह का सादा भोजन ये लोग करते हैं।

मुण्डा आदिवासियों में पढ़ने के प्रति अरुचि पाई जाती है। संजीव जब हरमू से पढ़ाई की बात करता है तो हरमू कहता है- “छोड़ो.....! हमें पढाओं मत। पढ़-लिखकर लाट-कलट्टर नई बन जाएंगे हमारे छौड़ा-छौड़ी। मुण्डा तो जनम से ही मुण्डा होता है। पढ़-लिखकर तो मुण्डा भी नई रहता। बनासकाँठ वालों की तरह दीकू बन जाता है। हमें नई बनना दीकू...।”⁵⁹ ये लोग पढ़ने-लिखने को जरूरी नहीं समझते हैं। इसीलिए इनका शोषण होता है।

अपने सभी दुःखों, पीड़ाओं के बावजूद आदिवासी जंगल में अपनी उत्सवधर्मिता को संजोए हुए हैं। अपने पर्व-त्योहारों को बचाकर रखे हुए हैं। आदिवासियों ने अपने नैतिक, पारिवारिक और सामाजिक संवेदना के स्रोतों को सरस बनाये हुए हैं।

एम. वीरप्पा मोयिलि - कोट्टा

एम. वीरप्पा मोयिलि ने अपने उपन्यास 'कोट्टा' में कर्नाटक की एक दलित आदिवासी कोरग के रहन-सहन, उनकी संस्कृति और परम्पराओं के साथ-साथ उनके शोषित और अभावग्रस्त जीवन का मार्मिक चित्रण किया है। इसमें कोरगों के शक्ति-सामर्थ्य, उनकी भावनात्मक सरलता और लोकसम्पदा का हृदयग्राही चित्रण करने के साथ-साथ सत्ता-लोलुप एवं कुटिल नेताओं तथा स्थानीय अधिकारियों द्वारा किये जा रहे उनके शारीरिक एवं आर्थिक शोषण को भी उजागर किया है।

कोट्टा उपन्यास में हेग्गडदेवनकोटे के हंचीपुर के काडु कुरबों की हाड़ी (बस्ती) से कारकल के समीपवर्ती कोरगों का निवास स्थान कंगूरी कोट्टा के जीवन का चित्रण किया गया है। इस उपन्यास के नायक मल्लय्या का मानना है कि काडु कुरबों में तो थोड़ी-बहुत प्रगति हो चुकी है, परन्तु कोरगों को तो आधुनिकता से कोई सम्पर्क ही नहीं है। ये तो अपना जीवन-यापन सीमित साधनों से ही कर रहे हैं। अब तक उन लोगों में अशिक्षा और गरीबी व्याप्त है। ऐसे अभावों में भी कोरगों ने अपनी संस्कृति की अस्मिता को बनाए रखा है। शिकार, बाँस, की टोकरी बनाना, भूत का त्यौहार, कोरगतनिय की कथाएँ, दक्षिण कन्नड़ जिले के विशेष खेल कंबल (भैंसा दौड़), ढोल-बाँसूरी की मधुर तान पर तन्मय होकर नाचना, ये सब कोरगों की संस्कृति के विभिन्न रंग हैं, कंबल खेल का वर्णन देखिए-

“दीवाली से लेकर शिवरात्रि तक कुन्दापुर से कासरगूड तक लगभग तीन सौ कंबल स्पर्धाएँ होती हैं। जारदे मास से लेकर यानी फसल कटाई से लेकर दूसरी फसल आने तक कंबल त्योहार चलता ही रहता है। उसमें किस-किस के भैंसे भाग लेंगे। उनमें जन्म जातक, पालन-पोषण और उनके मालिकों का सामाजिक स्तर आदि बातें

लोगों की जबान पर चढ़ी रहती है। एक ढंग से देखा जाए तो इस कंबल के त्योहार के ज्वार का भूत पूरे जिले को ही लग जाता है। लोगों की जबान पर वहीं एक बात रहती है।”⁶⁰ इस तरह से कोरग लोग अपने त्योहार हर्षोल्लास के साथ मनाते हैं।

कोरगो के कमजोर होने के कारण पुलिस, राजनीतिज्ञ सभी उनका किसी-न-किसी तरह से शोषण करते ही रहते हैं। उनको अपने गुजर-बसर के लिए जंगल की शरण में जाना ही पड़ता है, वही पर पुलिस के द्वारा उनका शोषण किया जाता है तथा उनकी युवतियों को भी अगुवा कर लिया जाता है। शाम को जंगल से लकड़ियाँ लाने गई कोरग युवती पींचलु के बारे में, विधायक अम्बरप्पा के किराये के लोग इस्माइल की क्रूरता, उसके पीछे गुंडे राजनीतिज्ञ का कहाँ तक हाथ है आदि बातों को उजागर किया गया है।

पींचलु को बचाने के लिए मल्लय्या अपने पद का त्याग कर कोट्टा में बस जाता है और कोरगों को आगे बढ़ने में सहायक होता है। मल्लय्या अशिक्षित और अंधविश्वासी कोरगों का अपने काम से मन जीत लेता है। ब्राह्मणों के तीज-त्योहारों पर जूठन संग्रह तथा मरी गाय-भैंस का मांस खाने की आदत छुड़ा लेता है। मल्लय्या कोरगों को शिक्षित करने का प्रयास करता है। बच्चे और पींचलु पढ़ने के लिए उसके पास आते हैं तथा पींचलु को बी.ए. तक की योग्यता प्राप्त हो जाती है। मल्लय्या इस तरह के कई क्रान्तिकारी परिवर्तन कर कंगूरी कोट्टा के लोगों का जीवन सुधार देता है। इन सभी परिवर्तनों में मंगलूर का उसका पत्रकार मित्र सदाशिव उसका साथ देता है। इस प्रकार कारकल में ‘किसान सभा’ संचालक धीरज कोरगों के ‘समग्र सेवा सहाकार संघ’ की स्थापना करता है तथा कोरगों की प्रगति में योगदान देना है।

कोरग आदिवासियों में जूठन उठाने की परम्परा है। हेब्बार के घर तेरहवीं के दिन कोट्टा के लोग जूठन उठाने जाते हैं। लेखक ने इसका मार्मिक वर्णन किया है— “पंगत के उठते-उठते हेब्बार के घरवाले जूठी पत्तलों ला-लाकर जोर से पास के कोने में फेंकते जाते थे। वहीं बक पक्षियों के समान प्रतीक्षा में खड़े कोरगों के स्त्री-पुरुष, बाल-बच्चे पत्तलें उठाने के लिए तेजी से आगे घुसते थे। कई बार तो जूठी पत्तलें उन्हीं पर आ गिरतीं। उन जूठी पत्तलों की प्रतीक्षा करते कुत्ते और सुअर भी पिल पड़ रहा

था। उन्हें रोकने और भगाने में कोरगों को बड़ा संघर्ष करना पड़ रहा था। वहाँ मुखिया, बूढ़े और स्त्रियाँ इस प्रकार का कोई भेदभाव नहीं था। मुख्य बात यह थी कि कौन कितनी जूठी पत्तलें इकट्ठी कर पाता है।”⁶¹

ऐसा देखकर मल्लय्या को लगा कि- “हमारी संस्कृति पुरानी है, महान है और हमारी जनता के वेदान्त की सैकड़ों बातें केवल मुखौटे भर हैं। बालिशत भर का पेट भरने के लिए हमारे ही जैसे इन लोगों को कुत्तों, सुअरों के समान जूठन खाने को मजबूर किया गया है क्या हम लोगों में जरा भी मानवता है? केवल कुछ लोगों के लिए अन्न, कपड़े और छाया का प्रबन्ध करने से ही दायित्व पूरा हो जाता है।”⁶² ऐसे अंधविश्वासों में जकड़े हुए आदिवासियों को देखकर मल्लय्या को आश्चर्य होता है। वह सबको ब्राह्मणों का जूठन के लिए मना करता है।

मल्लय्या कोरगों के लिए कुछ करना चाहता था। उसने लोगों को जूठन इकट्ठा करने के लिए मना कर दिया था और गाँव वाले उसकी बात मान भी लेते हैं। लोगों को उस पर भरोसा हो गया था कि ये शहरी बाबू उनकी भलाई ही चाहता है। मल्लय्या गाँव वालों से कहता है कि- “हमारी इच्छा केवल यही है कि कोई ऐसा काम शुरू करें जिससे आप सबका भला हो। तुम्हारे बनाये टोकरों के अच्छे दाम मिलें, तुम्हारे घर के दरवाजे तक मिट्टी का तेल पहुँचे, बच्चों के लिए स्कूल बने। यही सोचकर कोरगों का समग्र अभिवृद्धि सेवा सहकार संघ प्रारम्भ किया है। आप सब लोग एक होकर हमारी बात मानें तो आप सबको लाभ होगा।”⁶³ इस तरह मल्लय्या लोगों को समझाया करता था।

इस प्रकार मल्लय्या जो भी कहता है उसे पूरा करके ही दम लेता है। इन सबमें ही उसके मित्र सदाशिव की मृत्यु हो जाती है, लेकिन वो फिर भी हिम्मत नहीं हारता और उसकी पत्रिका को सुचारु रूप से चलाने का जिम्मा लेता है। इस कार्य में कोरगवासी उसका साथ देते हैं।

राकेश कुमार सिंह - जो इतिहास में नहीं है

राकेश कुमार सिंह रचित उपन्यास 'जो इतिहास में नहीं है' का कथानक 'हूल' आंदोलन से संबंधित है। इसका नायक संताल युवा हारिल मुरमू है। जो समाज में एक नई चेतना लाना चाहता है। हारिल मुरमू एक ऐसा युवक है जो अंग्रेजों के शोषण का शिकार होता है, जिसके चलते वह अपनी जमीन तक गँवा देता है। अपने गाँव से चले जाने के बाद सरकार उसको मृत मान लेती है और उसकी जमीन को हथिया लेती है उसी की कथा यहाँ प्रस्तुत की गई है।

हारिल मुरमू आदिवासी समाज में फैले अंधविश्वासों को नहीं मानता है जैसा कि इस उपन्यास में कहा गया है- "हारिल मुरमू का मन इस बात से कभी सहमत नहीं हो पाता था कि हाड़-मांस का कोई मनुष्य देवता हो सकता है। जैसा गंगवा है, बिगन है, घूरा, गोढ़ना, भेखन है वैसा ही एक सन्ताल है सिदो मुरमू।"⁶⁴ वो हर बात को वैज्ञानिक तरीके से सोचता है तथा अपना तर्क देता है।

उराँव युवती लाली और हारिल मुरमू के अनूठे प्रेम का चित्रण भी इसमें किया गया है। पलाशखँड़ के मुखिया की बेटी लाली को हारिल मुरमू प्रेम करने लगता है। सबसे बड़ी समस्या दोनों का अलग जाति का होना है। जिसे कारण वे विवाह नहीं कर सकते। आदिवासी समाज में विभिन्न प्रकार के विवाहों का प्रचलन है। जिनमें से एक है इट्ट बापला। "इट्ट ब्याह में न बराती होते हैं, न बिचौलिया। सामाजिक रीति-रिवाजों को टुकराकर होता है 'इट्ट बापला'। 'इट्ट' में मनपसंद लड़की को लेकर जंगल में भाग जाता है लड़का जहाँ अपनी गवाही में सिंदूर दान करता है। ऐसे युवक के विवाह से पूर्व पकड़ें जाने पर बिट्लाहा (यौन-अपराध का दण्ड जाति बहिष्कार) भी किया जा सकता है....सामाजिक बहिष्कार। बहुत साहसी युवक ही 'इट्ट' जैसा खतरा मोल लेता है।"⁶⁵ हारिल मुरमू लाली से इसी प्रकार का विवाह करना चाहता था। लेकिन बाघामुण्डी में चम्पिया की मृत्यु का बदला लेते हुए वो जंगलबाबू का घर जला देता है इसके चलते उसे अपना गाँव छोड़कर भागना पड़ता है। जब वो वापस लौटकर आता है तो तब तक लाली का विवाह हो जाता है। जिससे लाली का विवाह होता है वह ओर

कोई नहीं हारिल का शिष्य शंख रुण्डा होता है। जिसे हारिल ने तीर चलाना सिखाया था। शंख रुण्डा हारिल को गुरु दक्षिणा देना चाहता था। हारिल ने समय आने पर लेने के लिये कहा तब वह गुरु दक्षिणा में लाली को माँगता है। आदिवासी समाज में औरत को एक वस्तु माना जाता है। जिसका जब चाहे जब प्रयोग किया जा सकता है। लाली इस बात का खण्डन करते हुए पंचायत के सामने कहती है- “मरद लोगन की बात रह गयी पहान! हमरी तो जात ही नई। बकरी है हम। बात कौन सुने। जूठी थरिया हैं हम...शंख ने लतियाकर हारिल के आगे कर दिया हमें...! तूने भी न्याव नहीं किया पहान....!”⁶⁶ लाली के लाख मना करने पर भी हारिल लाली को लेकर अपने गाँव चला जाता है।

इस उपन्यास में आदिवासियों के लोकगीत, लोककथाएँ, लोकपर्व, धार्मिक विश्वास, रीति-रिवाज, अंधविश्वासों का पता चलता है। आदिवासियों में मृत्यु संस्कार का वर्णन देखिये- “सामान्य मृत्यु वाली देह मसान में जलाई जाती है। हत्या, आत्म हत्या, चेचक आदि रोगों से अकाल मृत्यु प्राप्त देह श्मशान में नहीं जलायी जाती। उसे किसी अन्य जगह जलाया जाता है। उसकी अस्थियों के फूल चुने जाते हैं जिसे हड़गड़ी में बड़ी शिला के नीचे गाड़ दिया जाता है ताकि उसकी आत्मा गाँव को तंग न करे।”⁶⁷ आदिवासियों के विभिन्न लोकपर्व जैसे जनी शिकार, पहाड़पूजा, जाहेर आयो, करमा पर्व, माघपर्व आदि के बारे में भी जानकारी मिलती है। जनी शिकार का वर्णन देखिये- “हर बारहवें वर्ष का फागुन उराँव समाज के लिए ‘जनीशिकार’ का महीना होता है। स्त्रियोचित वस्त्र और शृंगार तज कर पुरुषों का वेष धारण किये उराँव स्त्रियाँ परम्परागत अस्त्र शस्त्रों के साथ पूरे बसन्त मृगया हेतु निकलती है। तीर-कमान, भाले-बरछे, कुल्हाड़ी और बलोया...! पुरुषों की ही भाँति आखेट करता फिरता है शिकारिनो का जत्था।”⁶⁸ यह एक विशेष प्रकार का उत्सव है जिसमें केवल उराँव स्त्रियाँ ही भाग लेती हैं।

इस उपन्यास में आदिवासी लोकगीतों की छँटा भी दिखाई पड़ती है। करमपर्व पर लोग ये लोकगीत गाते हैं-

“एक बैल का हल हमारा भाई रे

बैल को बंधक मत रख देना

पहाड़तली में एक ही क्यारी हमारी

रे भाई, खेत को बंधक मत रखना

बित्ते-भर के पेट की खातिर

बैल न रेहन रखना

तलहत्थी भर के मुँह के लिए

खेत न रेहन रखना।”⁶⁹

इस उपन्यास में गैर-आदिवासियों द्वारा संतालों का शोषण किया जाता है तथा उन्हें तरह-तरह से प्रताड़ित किया जाता है। तब आदिवासी हूल करते हैं। सिदो मूरम् लोगों को सम्बोधित करते हुए कहता है- “जब-जब बयार बाँस को काटने तक रगड़ती है, जंगल में आग लगती है। जब-जब कोई किसी को तंग करता है तो तंग आदमीन के भीतर हूल जनम लेता है। दीकू लोगों से तंग हर आदमीन जमा होवे। आग जुटाना होगा रे भाई। कम्पनी गुरमेण्ट को अपने ऊपर नई मानेंगे हम। आज, हूल शुरु करने के दिन हम कहते हैं तुमसे, जान जाए तो जाए, मान के लिए लड़कर मरो। हमारे साथ जंगल के सारे पहान-नायके का आशीष है। जंगल के सारे बा-बाबा तुम्हारे माथ पर हाथ धरे खड़े हैं आज। ‘माराडबुरु’ देवता ने कहा है हमसे, हूल करो। देवता साथ हैं तो डर किसका? दिया से दिया जलाओ रे....लुकवारी से लुकवारी वारो...।”⁷⁰ लोगों को त्रिदोह करने के लिए ऐसे भाषण दिए जाते थे।

सन्ताल विद्रोह के बाद जो आदिवासी पकड़े जाते हैं अग्रेज अधिकारी फाँसी की सजा सुनाते हैं। इतने सारे लोगों को सामुहिक फाँसी देने के लिए बाजार में रस्सियों की कमी आ जाती है। जिस कारण से इनको भीषण तरीके से सजा दी जाती

है। “औसत मानवीय ऊँचाई के दो खंभे खुले मैदान में आमने-सामने गाड़े गये। दोनों खंभों पर दोनों छोर रखकर लोहे की मोटी छड़ बाँधी गयी। इस छड़ पर एक बार में दस-दस कैदी की गर्दनें टिकाकर उन्हें रस्सियों से जकड़ दिया गया। फिर वैसी ही एक दूसरी छड़ गर्दन पर रखकर आदिवासी कैदियों को घाटी दी जाने लगी। जल्लादों की टोली दोनों छड़ों को जब तक पूरी शक्ति से दबाये रखती थी जब तक हर आदिवासी का दम नहीं घुट जाता था।”⁷¹ ऐसी दिल दहला देने वाली सजा आदिवासियों को दी गई।

सन्ताल विद्रोह में पुरुषों ने ही नहीं स्त्रियों ने भी बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया तथा अंग्रेजों का सामना किया। सिदो मूरमू की बहनों-फूलों और झानों ने बहादुरी दिखायी थी। “मर्दाना लड़ाकों के कान काटने वाली उन दो मर्दानी आदिवासिनों ने ललमुँहे दीकू लोगों से लोहा लड़ाया था। रात के अँधेरे में तलवार भाँजती फूलों और झानों अंग्रेजी पलटन के शिविर में जा घुसी थी। इक्कीस अँग्रेज सैनिकों को काटकर जंगल की सन्तालिनों का मस्तक ऊँचा कर दिया था।”⁷²

आदिवासियों को अभी भी अंधविश्वासों ने जकड़ा हुआ है। उनके समाज में महिला को डायन बता दिया जाता है। हँसुली माई की लोककथा में भी हँसुली को डायन बताया गया है जो अनेक विधाओं में पारंगत थी, ऐसा माना जाता था। इसी प्रकार किसी मनुष्य के शरीर में देवता का प्रवेश करना भी आम बात है। इसका सजीव चित्रण लेखक ने किया है- “देखते-देखते भेखन के बेटे सुखाड़िया की देह में थरथरी होने लगी थी। पूजा के आँगन में उपस्थित किसी युवक या किशोर के शरीर की बोटी-बोटी नाचने लगे तो इसका अर्थ था उसकी देह को देवता ने अपनी सवारी के लिए चुन लिया है।”⁷³ सुखाड़िया के शरीर में देवता ने प्रवेश किया था। इस प्रकार से अनेक अन्धविश्वासों से यह आज भी ग्रस्त है।

आदिवासियों की दुर्धर्ष जिजीविषा का सजीव चित्रण किया गया है।

संजीव बख्शी - भूलन कांदा

संजीव बख्शी का 'भूलन कांदा' उपन्यास छत्तीसगढ़ के ग्रामीण आदिवासियों की पृष्ठभूमि पर लिखा गया है। इसका पात्र भकला, जिससे गलती से बिज्जू की हत्या जैसा जघन्य अपराध हो जाता है। भकला के परिवार में उसकी पत्नी प्रेमिन और उसके दो बच्चे हैं। भकला का विवाह सभी गाँव वालों ने मिलकर कराया था। गलती से हुए अपराध के लिए गाँव का मुखिया गंजहा नामक व्यक्ति जिसका इस दुनिया में कोई नहीं है को भकला की जगह जेल जाने को तैयार कर लेता है। गंजहा को भकला और प्रेमिन में अपने बेटी-दामाद दिखाई देते थे।

जब गंजहा जेल में चला जाता है तो जेल में तरह-तरह के काम करने लगा, जिससे जेलर को गंजहा पर शक हो जाता है कि ये इंसान किसी की हत्या नहीं कर सकता। वह किसी तरह से सारी सच्चाई का पता लगा लेता है और गंजहा जेल से मुक्त हो जाता है और भकला को जेल जाना पड़ता है।

जेल से आने के बाद गंजहा ही प्रेमिन और उसके दो बच्चों की देखभाल करता है। लेकिन गाँव वाले भकला की कोई गलती न मानते हुए उसे छुड़ाने के कसारे प्रयत्न करते हैं। नीचे गाँव के सारे निवासी जिनकी अलग-अलग अस्मिताएँ भी हैं, एक साथ आकर कानून और व्यवस्था के सामने विनम्रता से तथा दृढ़, जिद्दी, भोलेपन के साथ खड़े होते हैं। इसमें गाँव की एकता का बेजोड़ वर्णन किया गया है।

नीचे गाँव के आदिवासी निर्दोष भकला को बचाने के लिए सर्वसम्मति से सामुहिक सजा पाने के लिए जेल चले जाते हैं। इनकी यह एकता आत्मा को झकझोरने वाला एक अद्भुत सत्याग्रह है। जो एक गोठ, एक जात्रा, एक आयोजन, एक त्योहार में बदल जाता है।

इस उपन्यास में आदिवासियों के 'मड़ई' हाट बाजार का रोचक वर्णन किया गया है, जो साल में एक बार भरती है। "आ गया मड़ई का दिन! सारे आस पास के रिश्तेदार घर-घर में पहुँच चुके हैं। बाजार में शहर के सारे व्यापारी मेटाडोर भर-भरकर

सामान लाकर अपना-अपना तम्बू तान लिए हैं। एक किनारे रहचुली लग गई है। गुब्बारा वाला भी इस बार आया है और सिनेमा भी। कपड़ा, बर्तन से बाजार भर गया है। औरतें वहाँ खड़ी हैं उठा-उठाकर बर्तनों को देख रही हैं और आपस में एक-दूसरे को देखकर हँस रही हैं। यह नएपन को देखने की हँसी है, एक ओर एक होटल भी खुल गया है जहाँ शहर की मिठाई को देखते खड़े हैं, कुछ लोग भावताव करने में लगे हैं, वहाँ बैंच पर बैठकर मिठाइयाँ खाई जा रही है। लड़कियाँ पान खा रही हैं और एक-दूसरे को पूछ-पूछकर हँस रही हैं, बड़ी हो जाने का एक तरह से अहसास हो रहा है उन्हें पान खाकर। चकरघिन्नी की तरह बिना रुके और बिना थके सबके सब यहाँ से वहाँ घूम रहे हैं। जैसे बरें के सैकड़ों छत्तों पर किसी ने पत्थर मार दिया हो, ऐसा तो लोगों का हुजूम है। और तो और सबके बीच से जो मिली-जुली आवाज़ आ रही है वह भी बरें की आवाज़ जैसी है। 'सस्ते में सस्ते में' एक व्यक्ति वहीं जोर-जोर से चिल्लाकर सबको बुला रहा है। बाज़ार में भीड़ के बीच गाँव देवता की पूजा हुई। मौहा, लांदा भी चला और हर साल की तरह गाँव में रात भर नाचा का कार्यक्रम चला। अपने जोकर की भी जादूगरी चली। गाँव का तरिया, कुआँ, पनघट सब आबाद। सब भूल से गए कि गए दिनों क्या-क्या हुआ था। इकट्ठे इतने सारे लोगों के बोलने-हँसने के शोर-शराबा और लाउड स्वीकरों की आवाज़ ने नीचे गाँव के सूनसान को दो दिनों के लिए तोड़ दिया है और दो दिनों के लिए इसे शहर बना दिया है।⁷⁴ इन हाट बाजार में इनकी अलग ही दुनिया नजर आती है।

दाम्पत्य प्रेम का चित्रण भी भकला और प्रेमिन के माध्यम से किया गया है। गाँव वालों की एकता, बुद्धिमता, गरिमा, जीवंतता, सुंदरता, मौलिक न्याय-भावना परस्पर स्नेह जैसे मानव मूल्यों को उपन्यास में चित्रित किया गया है। लोकजीवन की एकता की झलक इसमें साफ दिखाई देती है।

कहानी संग्रह

रमणिका गुप्ता - बहू-जुठाई

रमणिका गुप्ता के कहानी संग्रह 'बहू-जुठाई' में महिला को केन्द्रित किया गया है। ये महिलाएँ जीवन के विपरीत परिस्थितियों में समाज की विकृतियों को झेलती तथा उससे जूझती रही, लेकिन कभी थकी नहीं है। इनमें अपनी अस्मिता को बनाए रखने का जज्बा था तथा अपने को जिन्दा रखने का पत्थर-सा ठोस संकल्प लिए हुए है। ये अपनी शर्तों पर जीना चाहती है। ये महिलाएँ नारी अस्मिता के संघर्ष की आवाज है।

झारखण्ड के छोटा नागपुर की घने जंगलों की वादियों में बसने वाले इन आदिवासी महिलाओं ने कभी रेलगाड़ी भी नहीं देखी थी। "1973 में कोयला खदानों के सरकारीकरण के पहले और बाद, मुख्य धारा के लोगों के साथ मेल-जोल के कारण वे एक मिली-जुली संस्कृति की विकृतियों का शिकार तो बनती रही थीं, उसके साथ वे अपने अंधविश्वासों का शिकार भी होती थीं।"⁷⁵ अपनी संस्कृति में आई विकृतियों के कारण इनके समाज को भी कमजोर बना दिया था। इन आदिवासियों ने आधुनिक समाज के लोगों की विकृतियाँ तो ग्रहण कर ली लेकिन इनकी सीधी-सादी संस्कृति का हास होता गया। आधुनिक समाज के लोगों ने इनकी सीधी-सादी संस्कृति को विकृत रूप में ग्रहण कर लिया तथा इनका आर्थिक और दैहिक शोषण किया। इनके शोषण की सबसे अधिक शिकार हुई महिलाएँ।

सामाजिक-आर्थिक या कभी-कभी राजनीतिक स्तर पर यह आदिवासी महिलाएँ कभी प्यारी की तरह छली, चमेली की तरह ठगी जाती है तो कभी जिरवा माय सी डसी जाती है या फिर परबतिया की तरह समझौता करने पर भी मजबूर की जाती है। कोई-कोई तो चंदा की तरह अपनी नौकरी बचाने के लिए अपनी देह का समझौता करते-करते अनर्थ को टालने का प्रयास करती है। अन्त में जब इनका स्वाभिमान जागता है तो वे असम्भव कार्य करती हुए समाज के लिए एक उदाहरण

बन जाती है। कुछ महिलाएँ जिरवा की तरह पुरुषों के हथकंडों का इस्तेमाल कर उन्हें परास्त कर अपनी एक पहचान बनाती है। प्यारी हो या परबतिया, चंदा हो या चमेली ये अपनी पहचान बनाने के लिए सदा संघर्षरत रहती है। वक्त के साथ किये गए समझौते इन महिलाओं को परास्त और हतोत्साहित नहीं करते। ये उत्कट आशा के साथ अपनी सुनिश्चित जीत के लिए जूझती रहती है। ये वर्तमान को जी भर कर जीती है। ये सभी खटने कमाने वाली महिलाएँ हैं, जो कोयला ढेती, लकड़ी काटती निकौनी-कटनी करती, खेती करती या सब्जी बेचती, बालू-ईंट ढेती आदि काम करती है।

‘जिन्दा रहने के लिए’ कहानी एक ऐसी कहानी है जो जीने की मजबूरी को बयां करती है। विस्थापन, शहरीकरण का शिकार होकर जिन्दा रहने के लिए ये लोग जंगलों को काट-काट कर, सस्ते दामों में शहर में बेच रहे हैं। जो दारु-हड़ियाँ का कार्य करती है। वह ऐसा इसलिए नहीं करती कि ये उसका खानदानी काम है बल्कि इसलिए करती है कि जीने के लिए इस कार्य के करने के अलावा दूसरा विकल्प नहीं है।

‘बहू-जुठाई’ कहानी संग्रह में झारखण्ड के छोटानागपुर के हरे-भरे पहाड़ों, झरनों, नदियों से घिरे वन प्रांतों रह रहे आदिवासियों की व्यथा को वर्णित किया गया है। कोयले की खदाने यहाँ बहुतायत में पाई जाती है। इन कोयला खदानों में, वनों में श्रमिकों की बस्तियाँ, अलग-अलग स्थानों से आए मजदूरों की मिली-जुली संस्कृति एक अलग ही समा बनाती है। यहाँ अन्धविश्वासी, रूढ़िवादी, अशिक्षित समाज के लोग जहाँ आधुनिक तकनीक और नई-नई मशीनों को देखते हैं, वहीं शोषित वर्ग इनका शोषण भी करता है।

आधुनिकता और रूढ़िवादिता को एक साथ ओढ़े ये आदिवासी अपने घर दहलीज के भीतर कहीं अलग हो जाते हैं। घर के बाहर एकता के नारे लगाते हैं लेकिन दहलीज के भीतर सोचने का वही जातिवादी ढंग होता है। “लोकल (स्थानीय) और बाहरी, नया-पुराना, ऊँच-नीच, ‘छोटा-जात’, ‘बड़-जात’। सब घालमेल, गड्डमड्ड। पीसरेटिड, टाइमरेटिड, मंथलीरेटिड में बँटे कुशल-अकुशल मजदूर, केवल पदनाम के

स्तर पर ही नहीं, अपनी मानसिकता के स्तर पर भी ऊपर से प्याज की तरह एक, पर भीतर परत-दर-परत बँटे-बँटे हैं।”⁷⁶ इस स्वार्थों की टकराहट में इनकी चट्टानी एकता भी टूटती है, पर उसमें सबसे अधिक पिसती एक औरत ही है। इनमें हर समाज की तरह पुरुष और औरत का एक और बँटवारा भी व्याप्त है। चाहे मजदूर समाज हो, किसान हो, सर्वहारा हो, मध्यम या उच्च वर्ग हो, चाहे छोट-जात हो या बड़-जात हो, विश्व के सभी मुरुष महिलाओं को एक ही दृष्टि से यानि की उसके यौन-आकर्षण से देखता है। महिलाएँ स्वयं भी इस पुरुष-दृष्टि को पोसती हैं। जो महिलाएँ इसका विरोध करती हैं वे ‘बहू-जुठई’ की नायिकाओं की तरह सीता-प्यारी-चमेली-परबतिया-जिरवा या मौसी बन जाती हैं।

ये आदिवासी महिलाएँ आज भी जुए में हारी जाती हैं, डायन बताकर मार दी जाती, इसके बावजूद ये संघर्ष करती रहती हैं। ये खटने से पीछे नहीं हटती हैं। कडुवे अनुभवों से लड़ते-लड़ते वे जीने के लिए संघर्ष करना बचपन से ही सीख जाती हैं। यही जिजीविषा उन्हें जीवन में निरन्तर आगे बढ़ने की शक्ति देती है। भारतीय राजनीति और समाज-सेवा में कार्यरत यह महिलाएँ एक व्यक्ति के रूप में नहीं बल्कि एक मिशाल के रूप में पहचानी जा सकती हैं।

महाश्वेता देवी - इतवा मुंडा ने लड़ाई जीती

महाश्वेता देवी रचित कहानी 'इतवा मुंडा ने लड़ाई जीती' में इतवा मुंडा का चित्रण किया गया है जो कि एक छोटा बच्चा है तथा उसके माता-पिता की मृत्यु हो चुकी है। इतवा के दादा मंगल इतवा का पालन-पोषण करते हैं तथा उसे पढ़ा-लिखा कर एक अच्छा इंसान बनाना चाहते हैं। इस कहानी में मुण्डा आदिवासियों के संघर्ष को चित्रित किया गया है।

इतवा के दादा मंगल मोती बाबू के यहाँ पर काम करते थे जिससे वे अपना और इतवा का गुजर-बसर करते थे। इतवा भी इस काम में उनका सहयोग देता था, लेकिन मंगल अपने पोते को पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करता था। लेकिन मोती बाबू नहीं चाहता था कि मुंडा जाति शिक्षित हो क्योंकि इनको पढ़ने जाने से उसके खेतों का कार्य करने के लिए मजदूर कहाँ से आते। मोती बाबू मंगल से कहता है- “यही तो तुम्हारी गलती थी। यदि तुम लोग ही अपने बच्चों को स्कूल भेजने लगे तो हमारे खेत खलिहानों में काम कौन करेगा? जानवरों को कौन चरायेगा? तुम यह कैसे कह सकते हो कि मैं तुम लोगों को ढगता हूँ! मैं तुम लोगों को एक वक्त का खाना और चाय नाश्ता देता हूँ। यही नहीं, साल में दो जोड़ी कपड़े भी देता हूँ, ऊपर से 74 किलो धान देता हूँ। कोई कैसे कह सकता है कि मोती बाबू मजदूरों को ढगते हैं।”⁷⁷ जब तक हमारे समाज में मोती बाबू जैसे लोग रहेंगे तब तक आदिवासियों का शोषण होता रहेगा।

मंगल सभी को पढ़ने के लिए कहता है, जिससे लोग आगे बढ़ सकें। उसका मानना है कि- “शिक्षा बहुत जरूरी है। अनपढ़ होने के कारण हमें पता ही नहीं चलता कि सरकार ने हमारे लिए कौन-कौन सी योजनाएँ चला रखी हैं।”⁷⁸ आदिवासियों की एक प्रमुख समस्या ये होती है कि उनके खाने का बंदोबस्त नहीं हो पाता इस कारण वे लोग अपने बच्चों को पढ़ने के बजाय काम पर भेजना पसंद करते हैं। मंगल मास्टर साहब से कहता है कि- “मैं तो इसके पिताजी को भी पढ़ाना लिखाना चाहता था। लेकिन क्या करें। आदिवासी के पास जब जमीन नहीं होती, तब उसका चूल्हा भी नहीं

जलता। इसीलिए हमें अपने बच्चों को बाबूओं की चाकरी में भेजना पड़ता है।”⁷⁹ इस तरह आदिवासी लोग अपने बच्चों को शिक्षित तो करना चाहते हैं लेकिन वे अपनी पेट की आग के आगे विवश है। सारे संघर्षों को झेलते हुए भी मंगल इतवा को पढ़ने भेजता है।

इस कहानी में मुण्डाओं के लोकगीत, लोककथाएँ, लोकपर्व, धार्मिक विश्वास आदि के बारे में भी पता चलता है। सोना की शादी में गाए गीत को देखिये—

“दुलहन की शादी होगी महुए के पेड़ से

और दुलहा ब्याहेगा बड़े से आम को

कितना आनंद होगा इस विवाह का

दुलहे का नाम होगा हर आम के पत्ते पर

दुलहन के नाम की होगी महुए की पत्तियां

कितना आनंद होगा इस विवाह का।”⁸⁰

इसी प्रकार सोना के विवाह का वर्णन देखिये— “सोना को उसी पानी से नहलाया जिसे तीर चलाकर चिह्नित किया गया था और एक दिन पहले घड़ों में भरकर लाया गया था। इसके बाद वह लाल किनारी वाली सफेद साड़ी पहन कर बाहर आयी। उसने अपनी भाभी का हाथ पकड़ रखा था। दुलहे ने भी अपनी भाभी का हाथ पकड़ रखा था। लोढ़ा पुजारी ने उनके हाथों पर धागा बांधा और एक दूसरे के हाथ में हाथ दिया। इसके बाद उसने पानी के छींटे मारकर उन्हें पवित्र किया और हाथ छुड़वाये। सोना को दुलहे के चारों ओर उलटा घुमाया गया। जब दुलहा उसे घर ले जायेगा। तब वह उसकी मांग में सिंदूर भरेगा।”⁸¹ मुण्डा लोगों में दहेज की प्रथा नहीं है। बल्कि दुल्हें वाले दुल्हन के घर वालों को रूपये देते हैं।

धीरे-धीरे आदिवासी आधुनिक सभ्यता के सम्पर्क में आ रहे और पढ़-लिख कर आगे बढ़ रहे हैं। इतना के बचपन के साथ-साथ मुण्डाओं की संस्कृति से परिचय कराना भी इस कहानी का मुख्य उद्देश्य है।

सारांश

वर्तमान में आदिवासी कथा साहित्य समृद्ध हो चुका है। साहित्यकारों ने विभिन्न दृष्टिकोणों से आदिवासी साहित्य लिखा है। इन लेखकों ने अपने कथा साहित्य में आदिवासी जीवन के अनेकानेक पक्षों, उनकी समस्याओं तथा परिणामों को संवेदनापूर्ण अभिव्यक्ति दी है। यह कथा साहित्य हिन्दी साहित्य में विशिष्ट स्थान पाने का अधिकारी है।

इस प्रकार अपने अस्तित्व के लिए लड़ रहे, आदिवासी समाज के जीवन संघर्षों और उनकी संस्कृति को स्वर देता आदिवासी साहित्य एक नये ढंग से इनके अपरिचित पहलुओं को उजागर कर रहा है।



संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. रमणिका गुप्ता : सीता-मौसी-ज्योतिलोक प्रकाशन, पृ.सं.-39
2. वही, पृ.सं.-4
3. वही, पृ.सं.-40
4. वही, पृ.सं.-148
5. मैत्रेयी पुष्पा : झूलानट-राजकमल प्रकाशन, पृ.सं.-91
6. वही, पृ.सं.-60
7. वही, पृ.सं.-143
8. वही, पृ.सं.-12
9. मैत्रेयी पुष्पा : अल्मा कबूतरी-राजकमल प्रकाशन, पृ.सं.-312
10. वही, पृ.सं.-312
11. वही, पृ.सं.-206
12. वही, पृ.सं.-371
13. महाश्वेता देवी : जंगल के दावेदार-राधाकृष्ण पेपरबैक्स, पृ.सं.-87
14. वही, पृ.सं.-33
15. वही, पृ.सं.-158
16. वही, पृ.सं.-188
17. वही, पृ.सं.-193
18. वही, पृ.सं.-64
19. वही, पृ.सं.-63
20. वही, पृ.सं.-105
21. महाश्वेता देवी : चोटिट मुण्डा और उसका तीर-राधाकृष्ण पेपर बैक्स,
पृ.सं.-130
22. वही, पृ.सं.-8
23. वही, पृ.सं.-78

24. वही, पृ.सं.-34
25. वही, पृ.सं.-288
26. वही, पृ.सं.-148
27. वीणा सिन्हा, सपनों से बाहर, मेधा बुक्स, पृ.सं.-21
28. वही, पृ.सं.-176
29. वही, पृ.सं.-190
30. वही, पृ.सं.-191
31. वही, पृ.सं.-219
32. संजीव : जंगल जहाँ शुरु होता है, राधाकृष्ण पेपरबैक्स, पृ.सं.-139
33. वही, पृ.सं.-21
34. वही, पृ.सं.-22
35. वही, पृ.सं.-79
36. वही, पृ.सं.-212
37. वही, पृ.सं.-212
38. वही, पृ.सं.-17
39. पुन्नी सिंह, सहराना, ग्रंथकेतन, पृ.सं.-209
40. वही, पृ.सं.-207
41. वही, पृ.सं.-209
42. वही, पृ.सं.-150
43. मधु कांकरिया : खुले गगन के लाल सितारे, पृ.सं.-31
44. वही, पृ.सं.-31
45. वही, पृ.सं.-123
46. वही, पृ.सं.-96
47. वही, पृ.सं.-101
48. वही, पृ.सं.-102

49. वही, पृ.सं.-104
50. राकेश कुमार सिंह : पठार पर कोहरा-भारतीय ज्ञानपीठ, पृ.सं.-32
51. वही, पृ.सं.-59
52. वही, पृ.सं.-202
53. वही, पृ.सं.-137
54. वही, पृ.सं.-136
55. वही, पृ.सं.-226
56. वही, पृ.सं.-65
57. वही, पृ.सं.-142
58. वही, पृ.सं.-139
59. वही, पृ.सं.-149
60. एम. वीरप्पा मोयिलि : कोट्टा-भारतीय ज्ञानपीठ, पृ.सं.-120
61. वही, पृ.सं.-169
62. वही, पृ.सं.-169
63. वही, पृ.सं.-179
64. राकेश कुमार सिंह : जो इतिहास में नहीं है-भारतीय ज्ञानपीठ, पृ.सं.-111
65. वही, पृ.सं.-190
66. वही, पृ.सं.-318
67. वही, पृ.सं.-112
68. वही, पृ.सं.-20
69. वही, पृ.सं.-382
70. वही, पृ.सं.-134
71. वही, पृ.सं.-342
72. वही, पृ.सं.-380
73. वही, पृ.सं.-467

74. संजीव बख्शी : भूलन कांदा-अंतिका प्रकाशन, पृ.सं.-76
75. रमणिका गुप्ता : बहू-जुठाई-शिल्पायन प्रकाशन, पृ.सं.-8
76. वही, पृ.सं.-10
77. महाश्वेता देवी : इतवा मुंडा ने लड़ाई जीती-नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया,
पृ.सं.-20
78. वही, पृ.सं.-27
79. वही, पृ.सं.-26
80. वही, पृ.सं.-44
81. वही, पृ.सं.-44

तृतीय अध्याय
आदिवासी कथा साहित्य में चित्रित नारी

1. भूमिका
2. नर-नारी सम्बन्ध, विविध रूप
3. आदिवासी लोकसाहित्य और नारी
 - (i) लोकगीत
 - (ii) लोककथाएँ
 - (iii) लोकपर्व
 - (iv) धार्मिक विश्वास
4. सारांश

अध्याय तृतीय

आदिवासी कथा साहित्य में चित्रित नारी

भूमिका

वर्तमान समय में कथा साहित्य का अधिक सृजन हो रहा है। इसमें नारी, दलित और आदिवासी केंद्र में है। इस समय आदिवासी विमर्श प्रमुख मुद्दा बना हुआ है। आदिवासी विमर्श में आदिवासी महिला को भी केन्द्र में रखकर अनेक रचनाएँ लिखी गई हैं। इन रचनाओं के द्वारा इनका साहित्य में स्थान दिया गया है। प्रस्तुत अध्याय में नारी को कथा साहित्य में किस प्रकार चित्रित किया गया है, इस पर प्रकाश डाला गया है।

नर-नारी संबंध, विविध रूप

नर और नारी दोनों ही एक-दूसरे के पूरक होते हैं। ये एक ही गाड़ी के दो पहिये होते हैं, जिनको हमेशा साथ-साथ चलना होता है। दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू होते हैं। स्त्री-पुरुष दोनों ही मिलकर अपनी जिंदगी को आगे बढ़ाते हैं। ये दोनों ही मिलकर बहुत सम्बन्धों को जीते हैं, जैसे- पति-पत्नी, माता-पिता, प्रेमी-प्रेमिका, माता-पुत्र, देवर-भाभी आदि। आगे इन्हीं संबंधों की चर्चा की गई है जो निम्नलिखित हैं-

पति-पत्नी सम्बन्ध :-

पति-पत्नी के सम्बन्ध को संसार में सबसे पवित्र माना जाता है। जब एक स्त्री विवाह करके अपने ससुराल आती है तो सर्वप्रथम वह अपने पति पर ही विश्वास करती है। दोनों एक-दूसरे के साथ मित्रवत् अपनी गृहस्थी की गाड़ी को चलाते हैं। उनके जीवन में कई उतार-चढ़ाव आते हैं जिसे वे हँसते हुए पार कर जाते हैं। रमणिका गुप्ता के कहानी संग्रह 'बहू-जुठाई' में प्यारी अपने शराबी पति शीतल से बहुत प्रेम

करती है। “ऐसे प्यारी अपने पति को बच्चे की तरह पोसती है। खुद खाना बनाती है और उसे खिलाती है। यहाँ तक की नहाने का पानी भी वह ही, भर कर ला देती है। न जाने शीतल के चेहरे को देखते ही वह क्यों उसके भोलेपन पर मर मिटती है। शीतल भी प्यारी के बिना नहीं रह सकता। वह मातल-मातल ही घूमता है पर घूमता है.... उसी के इर्द-गिर्द उसी के पीछे-पीछे!”¹ पति अगर प्रेम करने वाला हो तो पत्नी उसका साथ हर परिस्थिति में देती है, जिस प्रकार प्यारी ने दिया।

पति-पत्नी का रिश्ता जन्म जन्मांतर का होता है। दोनों सभी परिस्थितियों में एक-दूसरे का साथ निभाते हैं। पति अगर पत्नी के साथ विश्वासघात करता है तो पत्नी उसे बर्दाश्त नहीं करती है। ‘सहराना’ का सोमा जब लाड़िली को छोड़कर वापस चंपा के पास आता है- “उस रात को वे दोनों टपरिया के भीतर एक ही कथरी पर लेटे थे। दरवाजा खुला था और चाँदनी रात का उजाला उन दोनों की मर्यादा का ध्यान रखे बिना भीतर तक घुसा चला आया था। चंपा सोमा की बगल में लेटी थी और उसकी साँसों को गिर रही थी। धड़कने सुन रही थी। उसकी अटूट चुप्पी चंपा का दम घोंटे दे रही थी। वह भीतर ही भीतर अकुला उठी थी। सोच रही थी कि अगर वह नहीं बोला, तो वह उठकर चली जायेगी। वह जिंदगी का सबसे कड़वा घूँट पी चुकी है। सोमा ने बिना कारण उसको ऐसा त्रास दिया है। इस आदमी ने उसकी दूध पीती बच्ची पर भी तरस नहीं खाया है। उसने अब तक बहुत कुछ बर्दाश्त किया है, लेकिन अगर यह लाड़िली को भी उसी तरह से धोखा देकर आया होगा, तो वह हरगिज बर्दाश्त किया है, लेकिन अगर यह लाड़िली को भी उसी तरह से धोखा देकर आया होगा, तो वह हरगिज बर्दाश्त नहीं करेगी।”² इसप्रकार पति-पत्नी का सम्बन्ध विश्वास पर टिका होता है। अगर ये विश्वास एक बार टूट जाता है तो उसे बनने में समय लगता है।

प्रेमी-प्रेमिका संबंध :-

स्त्री-पुरुष के मध्य प्रेमी-प्रेमिका का सम्बन्ध भी होता है। प्रेम के वशीभूत होकर दोनों अपनी अलग ही सपनों की दुनिया में जीते हैं। दोनों ही इस संसार को भूलकर अपना अलग ही संसार बनाते हैं। सभ्य समाज में प्रेमी-प्रेमिका के संबंध को

हेय दृष्टि से देखा जाता है। इसी कारण दोनों छिपकर ही प्रेम करते हैं। प्रेम में व्यक्ति अपनी सुध बुध खो बैठता है। जैसा 'सहराना' उपन्यास में सोमा को चंपा से प्रेम होने पर होता है। "फिर वह मन को साथ लेकर ही तन से घाटी चढ़ने लगा। घाटी चढ़कर वह पहाड़ियों के ऊपर के जंगल में जा पहुँचा। जंगल ही जंगल आगे बढ़ने लगा, तो 'तुल्ली खोह' तक जा पहुँचा। जहाँ से झरने का पानी छलांग लगा-लगाकर नीचे घाटी में गिरता है, सोमा वहीं जाकर बैठ गया। कल शाम को लगभग यही समय था। चंपा को उसने पहली बार हाथ से छुआ था। उसका चुम्मा लिया, तो कांपकर रह गयी। उसका चेहरा लाल पड़ गया था"³ प्रेम में इसी प्रकार व्यक्ति अपनी सुध-बुध खो बैठता है।

प्रेमी-प्रेमिका हमेशा इस दुनिया की नजरों से बचकर मिलने के लिए आतुर रहते हैं। एक-दूसरे को देख लेने भर से ही दोनों को संतुष्टि हो जाती है। दोनों मिलकर साथ रहने की कसमें खाते हैं और शादी करने के लिए सभी तरह के यत्न करते हैं। 'कोट्टा' का मल्लय्या अपने मित्र सदाशिव से कहता है- "सदा, अभी तुम हृदयों का सम्बन्ध समझ नहीं सकते। भले ही तुम इस बात को स्वीकार न करो, पर मैं विज्ञान का विद्यार्थी होने पर भी यही कहूँगा कि जन्म-जन्मान्तरों का सम्बन्ध यहाँ काम करता है। पीचलु को देखते ही मेरा मन खिल जाता है। शायद उसे भी ऐसा लगता होगा। हम दोनों के मन समश्रुति वाली वीणाएँ हैं।"⁴

प्रेम में विरह सहन नहीं होता है। एक-दूसरे से अलग-होने पर प्रेमी-प्रेमिका एक-दूसरे से मिलने के किसी न किसी प्रकार का बहाना ढूँढने लगते हैं। लेकिन बिछड़ने पर उनसे दर्द सहन नहीं होता। 'अल्मा कबूतरी' की अल्मा जब राणा से अलग हो जाती है तो उसे हमेशा राणा की याद आती रहती है। "मेरे राणा, तुम चले गए। लगता है कि तुम यहीं हो। आहट-सी आसपास रहती है। यादों से दुख कभी बढ़ता है तो कभी घटता है। तमाम तस्वीरें मन में फड़फड़ाती हैं। लगा कि तुम नहीं हो तो मेरी जान भी जाने लगी। मन डूबने लगा। नजर धुँधली होने लगी। खाली घर में

दम लेती अल्मा को एक बार देख जाते। अकेली रहा करती थी, तुम आ गए। चले जाने के बाद अकेलापन कई गुना बढ़ गया। तुम थे, घर भर गया था। कोई कोना खाली कहाँ था? घर के हर होने में दुबकी हुई वे गुड़ियां नाचने लगी, जिनके संग अबोध उमर बिताई थी। मेरे पाँव भी कैसे पड़ते, जैसे फिरकी नाचती नाचती हो उनमें। ऐसा लगता था मेरे प्राण, तुम्हारे प्राणों में मिल जाने को छटपटा रहे थे। वह महूरत आ मिला। बचपन की उन गुड़ियों को मैंने सहज लिया। कलेजे से लगाए फिरी। खुश-तितली के जैसे उड़ती हुई।”⁵

इस प्रकार प्रेमी-प्रेमिका का सम्बन्ध एक अलग ही प्रकार का है। जिसमें प्रेम, तकरार, मिलन, बिछेह आदि सभी होते हैं। ये दुनिया की परवाह किये बिना एक-दूसरे का साथ निभाते हैं।

माता-पुत्र संबंध :-

माँ बच्चे की पहली पाठशाला होती है। वह अपने बच्चों के लिए वह सब कुछ करती है, जो कोई ओर नहीं कर सकता। वह बच्चों के बिना बोले ही समझ जाती है कि कि उसे क्या चाहिए। संसार की सबसे सुंदर वस्तु माँ ही होती है। जिसके बिना व्यक्ति अपने जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकता। जन्म देने से लेकर बड़े होने तक माँ साये की तरह अपने बच्चों के साथ रहती है। माता-पुत्र का संबंध भी एक अनोखा रिश्ता है। जिसमें मां अपने पुत्र की सारी बातें मानते हुए उसे इस समाज के लायक बनाती है।

‘अल्मा कबूतरी’ का राणा अपनी माँ के बारे में सोचता हुआ कहता है कि- “माँ सबकुछ थी। माँ से अच्छी कोई चीज नहीं थी। आज तो माँ को देखकर अचंभित रह जाता है। साफ-सफेद घाघरा पहनकर गुलाबी ओढ़नी वाली अम्मा की हँसी-खुशी-दुख तकलीफ भी कुछ दूसरे ढंग के हो गए हैं-एकदम ठेके वाले। रोते समय उसकी आंखों से आँसू नहीं गिरता। दबने वाली बात पर भी नाक तनी रहती है। विनती करेगी, बोली नरम निकाल कर भी उसका मरम गहरा और तीखा रहता

है। कितनी बदल गई है माँ। राणा ज्यों अकेला रह गया। कभी-मारपीट, गाली-गलौज याद आती है, अम्मा के होंठों से अब मेल नहीं खाती। काश, वह गोरामछिया न जाता तो माँ के बदलते रूप को देखता रहकर अजनबीपन महसूस न करता। कमजोरी-सी लगने लगती है। मालूम होता है वह माँ के सामने नहीं, किसी ताकत के सामने नहीं, किसी ताकत के सामने खड़ा है, जिसे ललकार नहीं पा रहा।”⁶

एक माँ अपने पुत्र को अपने आपसे कभी अलग नहीं करना चाहती है। जब उसका पुत्र बड़ा होता है तो वह उसके भावी जीवन के लिए सपने संजोती है। उसका ब्याह करके उसकी पत्नी के साथ सुख से रहना चाहती है। उसके बच्चों के साथ खेलना चाहती है। महाश्वेता देवी कृत ‘जंगल के दावेदार’ उपन्यास में करमी अपने पुत्र वीरसा से उसके भगवान बनने पर कहती है- “जितना सुख है, उतना ही दुःख है, बीरसा! तू कोम्ता-सा होता, घर में बहू लाता, लड़के-बच्चे होते तो कुछ दुःख न रहता। तू क्यों भगवान हुआ, बीरसा? इतना बड़ा क्यों हुआ कि मेरी गोद में नहीं सँभलता? मेरी छाती में नहीं समाता? क्यों कहता है चला जाऊँगा? कहाँ जाएगा मेरे बाप, मेरे आबा? क्यों तेरे जन्म पर लोगों ने मेरे घर पर तीन तारे देखे? क्यों धानी की बहन ने तुझे चाईबाबा में देखकर सब लोगों में आकर फैला दिया, करमी के पेट से भगवान ने जनम लिया है? क्यों, क्यों, क्यों रे?”⁷ कहीं ना कहीं एक माँ के लिए अपने बच्चे कभी बड़े ही नहीं होते, वो हमेशा बच्चे ही रहते हैं।

पुत्र भी अपनी माँ के लिए कुछ भी करने को तैयार रहते हैं। उसे संसार के सारे सुख देना चाहता है। उसके लिए पुत्र को चाहे कुछ भी न करना पड़ा। इस प्रकार माँ-पुत्र का सम्बन्ध इस जहाँ का सबसे अच्छा रिश्ता है। जिसमें माँ-पुत्र दोनों ही समर्पण की भावना रखते हैं।

भाभी-देवर संबंध :-

स्त्री जब विवाह करके अपने ससुराल आती है तो उसे अपने बड़ों से बात करने में संकोच होता है। ऐसे में उसका देवर ही होता है जो उसके साथ मित्रवत व्यवहार करता है। भाभी भी अपने से छोटे देवर से अपनी बात बेझिझक कह देती है।

मैत्रेयी पुष्पा कृत 'झूलानट' उपन्यास में शीलो का पति जब उसे छोड़कर चला जाता है तो उसका देवर बालकिशन सोचता है- "अम्मा का इस तरह समझाना। भाभी का 'सुन-सुन' करके रोना। विकल हो उठता था बालकिशन। इसी दुखी स्त्री का दुख कौन सा है? क्यों शोक में डूबी रहती है भाभी? क्या वह इनको खुश रख सकता है? उसके मन में ये सवाल उठने लगे थे। सवालोंने परेशान रहता। शीलो भाभी की दुल्हन वाली तस्वीर, आँगन में उनका चलना-फिरना, पाजेबों की झनकार, सब कुछ गुमसुम। बेदर्द खामोशी ने उसे भी गूँगा कर दिया।"⁸ एक देवर ही होता है जो अपनी भाभी से सभी प्रकार की बातें कर सकता है उनका रिश्ता तो समाज में सम्मानीय होता है।

शादी के बाद ससुराल ही एक स्त्री का घर होता है। ससुराल वाले जैसा उसे रखते हैं और जैसा कहते हैं वैसे ही रहना होता है। 'झूलानट' की शीलो अपने पति के वापस न आने पर बहुत सारे व्रत-उपवास रखती है। ये सब देखते हुए शीलो का देवर बालकिशन कुछ व्रत अपने जिम्मे ले लेता है। "इसके बाद व्रत-उपवासों का सिलसिला। सोलह सोमवार। संतोषी माता के शुक्रवार। केला-पूजन के बृहस्पतिवार। शनि ग्रह शांति के शानिवार। भाभी सूख-सूखकर काँटा होती चली जा रही है। उनका रंग बेरौनक हो गया। चेहरा लंबोतरा। सुंदर दाँत बाहर निकल आए। बालकिशन डर गया। उसने मंगलवार का व्रत अपने जिम्मे ले लिया।"⁹

इस प्रकार एक स्त्री अपने सम्पूर्ण जीवन में बहुत सारे रिश्ते निभाती है और उनका सम्मान करती है। स्त्री के अंदर ही इतनी क्षमता होती है जो सभी रिश्तों का मान रखती हुई अपने जीवन में आगे बढ़ती हैं

आदिवासी लोक साहित्य और नारी

लोक साहित्य शब्द 'लोक' और 'साहित्य' इन दोनों शब्दों से मिलकर बना है। इसका अर्थ है 'लोक का साहित्य'। लोक शब्द अंग्रेजी के 'फोक' (Folk) शब्द का पर्यायवाची है। लोक साहित्य अंग्रेजी के 'फोक लिटरेचर' का अनुवाद है। लोक साहित्य के निम्न अर्थ होते हैं-

- उस लोक का साहित्य जो सभ्यता की सीमाओं से बाहर है अर्थात् जिसे सभ्य समाज में स्थान नहीं दिया गया हो।
- इसे जंगली जातियों का साहित्य भी कहते हैं।
- लोक साहित्य को ग्रामीण साहित्य भी कहते हैं।
- लोक साहित्य मौखिक साहित्य होता है।
- लोक मनोरंजन के लिए लिखा गया साहित्य, उस लोक के लिए जो विशेष पढ़ा-लिखा न हो को लोक साहित्य कहते हैं।

लोक साहित्य वह मौखिक अभिव्यक्ति है, जिसे किसी भी व्यक्ति ने कहा हो, पर आज जिसे सामान्य आदिवासी-समूह अपना ही मानता है और जिसमें लोक की युग-युगीन, वाणी-साधना समाहित रहती है, जिसमें आदिवासी समूह प्रतिबिम्बित रहता है। इसी कारण लोक साहित्य में किसी भी शब्द में रचना चैतन्य नहीं मिलता, जिसका प्रत्येक शब्द, प्रत्येक लय और प्रत्येक राग स्वयं लोक का होता है।

लोकगीत

लोकगीत आदिवासियों के आस्था के प्रतीक होते हैं। लोकगीतों में लोक संस्कृति की झलक दिखाई देती है। लोकगीत से तात्पर्य 'लोक में प्रचलित गीत' से है। अर्थात् जो किसी लोक या अंचल विशेष में गाए जाते हैं, उन्हें लोकगीत कहते हैं।

लोकगीत के उद्गम के बारे में देवेन्द्र सत्यार्थी ने लिखा है कि- “सारे लोकगीत जीवन के खेत में उद्भूत होते हैं। कल्पना, रसवृत्ति, भावनाएँ और नृत्य की लयकारी ये इन गीतों को फलने-फूलने में सहायक होते हैं। जीवन के सुख: दुख लोकगीत के बीज हैं।”¹⁰

डॉ. श्याम परमार ने लोकगीत की परिभाषा देते हुए कहा है- “लोकगीत वह धारा है जिसमें अनेक छोटी-मोटी धाराएँ मिलकर उसे सागर के समान गंभीर बना देती है। मन की विभिन्न परिस्थितियों में ताने-बाने बुने जाते हैं। इसके माधुर्य में स्त्री-पुरुषों ने अपनी थकान मिटाई है। इसकी ध्वनि ने बालकों को सुलाया है, जवानों में मस्ती का भाव भरा है, बूढ़ों को मन बहलाने का साधन दिया। बैरागियों को उपदेश का पान कराया, विरही युवकों के मन की कसक मिटाई है, पथिकों ने थकावट दूर की। किसानों ने खेत जोते हैं और मजदूरों ने विशाल भवनों पर पत्थर चढ़ाएँ हैं।”¹¹

लोकगीतों में एक स्त्री का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वह अपने जीवन की एकरसता को मिटाने के लिए गीतों के द्वारा मनोरंजन करती है। जिसे विभिन्न अवसरों पर गाया जाता है। लोकगीतों में जीवन के प्रत्येक पहलू का चित्रण होता है। लोकगीत प्रेम प्रसंग के सरस गीत होते हैं।

महाश्वेता देवी की कहानी ‘इतवा मुंडा ने लड़ाई जीती’ में सोना के विवाह के अवसर महिलाएँ गाती हैं-

“दुलहन की शादी होगी महुए के पेड़ से

और दुलहा ब्याहेगा बड़े से आम को

कितना आनंद होगा इस विवाह का

दुलहे का नाम होगा हर आम के पत्ते पर

दुलहन के नाम की होगी महुए की पत्तियाँ

कितना आनंद होगा इस विवाह का।”¹²

इस गीत में दुल्हन की शादी का वर्णन है।

त्योहार के अवसरों पर भी लोक गीत गाए जाते हैं। जिसे महिलाएँ मिलकर गाती हैं। राकेश कुमार सिंह के ‘पठार पर कोहरा’ उपन्यास में ‘सरहुल’ पर्व पर युवतियों द्वारा सरना देवता का गीत गाया जाता है—

“खद्दी चाँदी हियो रे नाद नौर

फागु चाँदी हियो रे नाद नौर

भर चाँदो चाँद रे नाद नौर

मिरिम चाँदो हो-साँड़, ले उनाउ SSS।।”¹³

इसका अर्थ है सरहुल का चाँद आ गया। फल और फूल लेकर आया सरहुल का चंद्रमा। पूरे चाँद तक हम इसे अगोरते हैं, फिर अंधेरी रात आने पर इसे त्याग देते हैं।

आदिवासियों में स्त्रियाँ भी शिकार करती हैं और शिकार से संबंधित गीत गाती हैं। राकेश कुमार सिंह के उपन्यास ‘जो इतिहास में नहीं है’ में आखेट पर्व-‘जनीशिकार’ पर गीत गाया जाता है—

“ओरे छूँ गंगा, पारे छूँ जमुना, धारे-धारे तुरका अवै रे SSS

हाथा में तरवारे, खाँदा में बंदूकाँ, धारे-धारे तुरका आवैं रे।

गाछ केरा मैना लिरो झोरा कान्दाय

नदी तीरे-तीरे घोड़ा दाइय रे SSS।।”¹⁴

इसका अर्थ है- गंगा जमुना के बीच की भूमि पर अधिकार कर रहे हैं तुर्क । उनके हाथों में तलवारे हैं । कंधे पर बंदूकें हैं । गाँव में मैना चिड़िया रो रही है । रात-दिन अश्वारोही तुर्क जंगल को रौंद रहे हैं । अब कैसे जिएँगे हम ?

आदिवासियों का प्रमुख कार्य है खेती करना । कृषि करते समय भी स्त्रियाँ लोकगीत गाती हैं और कार्य करती रहती हैं । मनोरंजन के साथ-साथ उनके कार्य की गति भी बढ़ जाती है । “ईख की खेती कठोर परिश्रम करना पड़ता है । किसान की पत्नी होने के कारण उसे भी जाना पड़ता है । इसलिए उसके बालक रोते रह जाते हैं । पीसना, कातना, अधूरा रह जाता है । यहाँ तक कि माँ-बाप से मिलने भी नहीं जा सकती, क्योंकि रोजाना खेत में कार्य करना पड़ता है । ईख की खेती में कठोर परिश्रम करके, रुपये कमाती है । उन रुपयों में से एक कंठी बनवाती है । कंठी को चोर ले जाते, मगर चोरी का आरोप बहू पर लगाया जाता है । इससे कुपित होकर वधु सबको ताल ठोक चुनौती दे डालती है-

ईख की नलाई कै फल पाई

ईख की लाई मन्नै कंठी घड़ाई

ले गया चोर बहू के सिर आई

सुसरा से लडूंगी, पीठ फेर के लडूंगी

आ जा रे सास्सड, तन्नै डंडा से घडूंगी

जेठ से लडूंगी, घूँघट खोल के लडूंगी

आ जा हे जिठणी तेरा धान सा दडूंगी

देवर से लडूंगी, घूँघट खोल के लडूंगी

बालम से लडूंगी महला बैठी लडूंगी

बा जा हे सौकन तेरा

डंडा-बिति घडूंगी।”¹⁵

इस लोकगीत में महिला के क्रोध का सजीव चित्रण हुआ है।

खेतों में फसल आने पर लोगों में उत्साह होता है। आदिवासी इसे भी एक त्योहार की तरह मनाते हैं। नई फसल के आगमन से ये लोग गीतों के द्वारा अपनी खुशी व्यक्त करते हैं। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास ‘अल्मा कबूतरी’ में इसका सजीव चित्रण किया है-

“मोरी चंदा चकोर, काजर लगा के आ गई भोर ही भोर

मोरी चंदा चकोर, छतिया पै तोता, करिहा पै मोर

मोरी चंदा चकोर, चोली में निबुआ घँघरा घुमेर।।”¹⁶

इस गीत को स्त्री और पुरुष दोनों मिलकर गाते हैं।

स्त्री का पति जब बाहर चला जाता है, तो उसके विरह में पति की याद आती है। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास ‘झूलानट’ में जब शीलो को रधिया के विवाह में अपने पति की याद आती है तो वह तड़पते हुए गीत गाती है-

“दिल है बेकरार तुम्हारे बिना

राजा देखो हमारी अँखियाँ,

हुई रो-रो के लाल तुम्हारे बिना

राज देखो हमारा कलेजा,

हुआ जल-जल के राख तुम्हारे बिना

राजा देखो हमारी जवानी,

कोई थामे न हाथ तुम्हारे बिना।”¹⁷

इस गीत में एक विरही स्त्री की हृदय की पुकार है। जो अपने प्रियतम के बिना व्याकुल है।

“हरियाणवी कृषक महिला खेती में खूब कार्य करती है। खेत में कार्य करते समय वह उन फसलों को पति से न बोने के लिए कहती है जो फसले उसको उगने या पैदावार के बाद भी आराम को ठेस पहुंचाती है मक्के ही खेती को मना करती है क्योंकि मक्के पीसने में उसकी ‘धरण’ डिग गई। वह गाती है-

पांच पचास की नाथ घड़ाई

चढ़गी सामणी पहरण ना पाई

साज वाही करी सामणी साज

पड़े धरां डिगगई

आगे सासू लड़ती पाई

ढाई सेर की कुंडी

बखत उठकै आधी आई

के सौवे के जागे ननदी के भाई ?

डिगगई चरण ठिकाने नहीं आई।”¹⁸

आदिवासी महिलाओं को कृषि-कार्य में कड़ी मेहनत करना पड़ती है। वह पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर कार्य करती है। कभी-कभी तो खेती में महिलाओं अपने जेवर तक गिरवी रखने पड़ते हैं। विभिन्न अवसरों पर भी स्त्री पुरुष मिलकर गीत गाते हैं और अपनी खुशी का इजहार करते हैं। पुन्नी सिंह का 'सहराना' उपन्यास में बंगले में भोजली के त्योहार पर सभी स्त्री-पुरुष खुशी से गीत गाते हैं-

“बांस-बिरे तेरे तो अँगना SSS

रनियाँ बाँस बिरे SSS!

बाँस-बिरे तेरे तो अँगना

रनियाँ बाँस-बिरे!...

डाल-डाल हरियाल भरे तो जनिओ

तेरो हरो वंश कुम्हला जागो।

बाँस-बिरे तेरे तो अँगना

रनियाँ बाँस-बिरे!...”¹⁹

फसल अच्छी होने पर आदिवासी महिलाएँ खुशी से झूम उठती हैं। लोगों के कर्जे चुक जाते हैं। लोगों के घरों में खुशहाली आती है। राकेश कुमार सिंह के उपन्यास 'पठार पर कोहरा' में मुण्डा स्त्रियाँ फसल को लहलहाती देख गाती हैं-

“बिर तबु चब तन

ओते तबु पीड़ि तन

दारु बु रोवाया

सादी....सादी....

उली कण्टड़; कुदबारु

मुदु हंस; जोतो दारु

दारु बू रोवाया.....।”²⁰

अर्थात् जंगल खत्म हो रहा है। धरती बंजर हो रही। अतः गाछ रोपेंगे। टाँड़ के आड़ में रोपेंगे। कतार-कतार। आम, कटहल, जामुन, कुसुम, फरसा, पीपल आदि-आदि। गाछ रोपेंगे।

मुण्डा आदिवासियों में ‘करमा’ पर्व बड़े उत्साह के साथ मनाया जाता है। किशोर युवक-युवतियाँ इस पर्व में एक साथ ‘करम उदासी’ लोकगीत गाते हैं। ‘करम उदासी’ का अर्थ है करमदेऊ का विदा गीत-

“सवकारो घरे आइज माँदर बजाय

मोर घारे सुना चेल रे

मोरा साइयाँ गेल परादेस

मोरा घारे सुना चेल रे

करम कहाल गे सँवारो

करमा के दिन कैसे आवय रे

करमा का तरे-तरे जला भरी फूल रे

डाला भरी बाती बराम रे।”²¹

अर्थात् सबके घर आज माँदल बज रही है पर मेरा घर सूना है। पति गया है परदेस। अगले करमा में सइयाँ आने वाला है। जल्दी अगला करमा आवे। घर की उदासी दूटे। करम की डाली को सीचूँ। टोकरी भर दीये जलाऊँ।

उपर्युक्त लोकगीत में उस स्त्री का वर्णन किया गया है जिसका पति बाहर काम करने के लिए गया है और अगले करमा पर्व में उसका पति आएगा, फिर उसके जीवन में खुशहाली आएगी।

“अरुणाचल प्रदेश में लोकगीतों की अत्यन्त समृद्ध परंपरा है। बहुरंगी संस्कृति और पारंपरिक जीवन मूल्यों में आस्था रखने वाली अरुणाचली जनजातियों के लोकगीत हजारों वर्षों के कटु-मधु अनुभवों को समेटे हुए हैं। प्रदेश की सभी जनजातियों में लोकगीतों की परंपरा विद्यमान है। ये लोकगीत जीवन के सभी क्षेत्रों से संबंधित हैं। सदियों से मौखिक रूप में ये लोकगीत अरुणाचलवासियों का मनोरंजन एवं दिशा-निर्देशन करते रहे हैं। इन लोकगीतों में पौराणिक आख्यान, सृष्टि की उत्पत्ति विषयक कथाएँ, जनजातियों के उद्गम और देशांतरगमन, विभिन्न जीव-जंतुओं की उत्पत्ति संबंधी आख्यान समविष्ट हैं। आखेट से संबंधित पूर्वजों के विविध अनुभवों को भी इन गीतों में स्थान मिला है। अनेक प्रकार के नीतिपरक गीतों द्वारा समाज को अनुशासित एवं संयमित जीवन व्यतीत करने की शिक्षा प्राप्त होती है। वन्यजीवन से सम्बद्ध गीतों में प्रकृति का धूपछांही सौष्ठव दृष्टिगोचर होता है। इनमें यहाँ के सामाजिक जीवन की विशिष्टताओं की झलक भी मिलती है।”²²

अरुणाचल प्रदेश में स्त्री-पुरुष मिलकर एक समूह-गान गाते हैं। सामान्यतया ये गीत स्त्री-पुरुष त्योहार पर गाते हैं-

“अंगोगे-रे-रे-रो-होइ

लेन-लांग्का-रे-रे-रो होइ

अंगोंग लेनमा लेन-

माने-रे-रो-होइ

लेन-लांग-का-रे-रो-होइ

अंगोंग लेन-मा लेन-मन-

इम-रे-रो होइ

लेन-मांग अर्जेगेम-रे-रो-होइ

ला-लापे-रे-रो होइ

अंगोंगे-रे-रे-रो होइ

लेन-लांगका-रे-रे-रो-होइ”²³

अर्थात् नमस्ते दोस्तो! आओ और हमारे साथ हो लो। दोस्त, जो नहीं आ सके पास अब तक। कृपया आओ और हमारे साथ हो लो। दोस्त जो नहीं आएंगे कभी। आएँ, वे भी दें हमारा साथ। बढ़ाए अपना हाथ कि जो नहीं आ सके। उनके लिए भी है यही दंड। कि वे हमारे साथ हो लें। आओ, तय करें मिलकर दंड नमस्ते दोस्तो आओ साथ निभाओ। ये गीत दोस्तो को बुलाने के लिए गाया जाता है।

लोकगीतों की परम्परा को आगे बढ़ाने में स्त्रियों का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। लोकजीवन में महिलाओं के द्वारा ही लोकगीतों की परम्परा आगे बढ़ी है। लोकगीतों में स्त्री प्रधान गीतों की संख्या अधिक है। विभिन्न अवसरों पर स्त्रियाँ ही लोकगीत गाती हैं। लोकगीत गाए बिना पर्व या त्यौहार अधूरा समझा जाता है।

जीवन के विभिन्न पक्षों की सरल तथा स्वाभाविक अभिव्यक्ति महिला द्वारा गाए लोकगीतों में ही होती है। अतः लोकगीतों को सुरक्षित रखने में आदिवासी महिलाओं का स्थान अति महत्त्वपूर्ण है।

लोककथाएँ

लोकगीतों के साथ-साथ आदिवासियों में लोककथाओं का भी विशेष स्थान है। लोककथा शब्द अंग्रेजी के 'फोकटेल' शब्द का पर्यायवाची है। लोककथाओं में समाज या देश-विदेश की परम्पराएँ संरक्षित हैं। "जिसके साथ परम्परा जुड़ी हुई है और लोकमानस का तत्त्व जिसमें विशेष हो, वह लोककथा कही जाएगी।"²⁴

लोककथा का उद्भव मनुष्य जन्म के साथ ही हुआ है। लोग कहानी के माध्यम से अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्त करते हैं। जीवन के सुख-दुःख, रीतिरिवाज, आस्थाएँ, परम्पराएँ, विश्वास आदि की अभिव्यक्ति लोककथा के द्वारा होती है। लोककथा मौखिक रूप में होती है।

अनेक विद्वानों लोककथा की परिभाषाएँ दी हैं, जो निम्नलिखित हैं-

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार- "लोककथा शब्द मोटे तौर पर लोकप्रचलित उन कथानकों के लिए व्यवहृत होता रहा है जो मौखिक अथवा लिखित परम्परा से क्रमशः एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में प्राप्त होते रहे हैं।"²⁵

डॉ. सत्या गुप्त ने लोककथा की परिभाषा इस प्रकार दी है- "लोककथाओं में मानव मन की सब प्रकार की भावनाएँ, परम्पराएँ तथा जीवनदर्शन समाहित हैं। भूत जानने की जिज्ञासा, घटनाओं का सूत्र, कोमल व परुष भावनाएँ, सामाजिक ऐतिहासिक परम्पराएँ, जीवन दर्शन के सूत्र सभी कुछ लोककथा में मिल जाते हैं।"²⁶

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि लोककथा लोगों की मौखिक अभिव्यक्ति है, जिसके द्वारा वे अपने अनुभवों को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में स्थानान्तरण करते हैं।

लोककथाओं की परम्परा को बचाए रखने में आदिवासी महिलाएँ अपना अधिक महत्त्व रखती हैं। स्त्रियाँ ही अपने बालक-बालिकाओं को लोककथा सुनाकर नैतिक शिक्षा देती हैं। लोककथाओं में परीकथाएँ, पशु-पक्षी कथाएँ, नीति कथाएँ,

पुराण कथाएँ, स्थानीय परम्परागत कथाएँ आदि आती है। लोककथाएँ मनोरंजन का साधन होती है। जिससे आदिवासी नीरस जीवन में आनंद का अनुभव करता है। लोककथाएँ मनुष्य के ज्ञान में वृद्धि करती है।

राकेश कुमार सिंह के उपन्यास 'पठार पर कोहरा' में सहुआइन चील और सियारिन दो सहेलियों की कथा कहती है- "दो जन्मों की इस कथा में पहले जन्म में चील और सियारिन ने जितिया का व्रत रखा।

चील थी सन्तोषी। भूख सहा, प्यास सही पर धर्म से नहीं डिगी। खरा व्रत निभा ले गयी और व्रत-समापन पर गोशाले में टपकी दूध की बूँदे चाटकर दूध का पारण कर उपवास तोड़ा।

सियारिन से आँतों की ऐंठन सही नहीं गयी। भूख से बेहाल हो गयी सियारिन तो व्रत ठानने का निश्चय डोल गया। भूखी सियारिन श्मशान जा पहुँची। कोई जला-अधजला मुर्दा नहीं मिला, तो सियारिन बुझी चिताएँ ही कुरेदने लगी। आखिरकार उसे कुछ हड्डियाँ मिल ही गयीं। सियारिन ने हड्डियाँ चबाकर अपनी क्षुधा शांत कर ली।

अगला जन्म हुआ...। दोनों बहनों ने इस बार मानुष तन पाया, पर इस जन्म में दोनों सहेलियाँ नहीं थीं बल्कि बहनें थीं। सियारिन थी बड़ी बहन और चील हुई छोटी बहन।

इस जन्म में छोटी बहन चील आठ सन्तानों की माता बनी, पर सियारिन के पूर्वजन्म के पाप फले। गर्भ ठहरे, पर गिर गये। बच्चे हुए भी तो सौरगृह में ही काल-कवलित हो गये। गर्भवती होने पर भी निपूती रही सियारिन खूब रोयी-पीटी और पछतायी, परन्तु पूर्वजन्म के पापों का कोई प्रायश्चित नहीं किया। कुछ याद होता तब तो!

चील के हँसते-खेलते बच्चों को देख सियारिन की छाती पर साँप लौटने लगे। कलेजा दाह देने लगा। डाह से भरी सियारिन ने चील के बच्चों को जहर दे दिया। बच्चे

जहर पचा गये, कुँ में धकेला तो कुँ का पानी ही ऊपर तक छलछला आया और बच्चे सकुशल कुँ की जगत फँदकर बाहर निकल आये। सियारिन ने बच्चों को मारने के लाख जतन किये, पर चील के बच्चे तो मर-मरकर भी जी उठते।

हारकर सियारिन छोटी बहन चील की शरण में जा गिरी। अपने सारे षड्यन्त्र स्वीकार किये और चील के बच्चों के अमरत्व का रहस्य और चिरंजीवी होने का भेद जानना चाहा।

बड़ी बहन के लोर से चील का आँचल भीग गया। बहन की ममता उमड़ आयी। चीन ने तब सियारिन को पूर्वजन्म के राज बताये। प्रायश्चित का रास्ता सुझाया। सियारिन को अब जितिया व्रत का माहात्म्य समझ में आया।

सियारिन ने भी अगली बार चील के साथ खरजितिया का व्रत रखा। इस बार उसने अपनी भूख को जीता। प्यास को मारा। लालच पर विजय पायी। नेम और धरम के साथ निभा ले गयी खरजितिया का व्रत।

मनोकामना पूर्ण हुई। सियारिन ने भी पुत्र-सुख भोगा। नाती खेलाए। पोतों से भरा घर देख सियारिन की भी छाती जुड़ा गयी...।²⁷

यह एक प्रकार की धार्मिक लोककथा है। इसमें पिछले जन्म का प्रभाव वर्तमान जीवन पर पड़ता है। इस लोककथा को एक आदिवासी स्त्री सहुआइन ही कहती है। अधिकांश उपन्यासों में जितनी लोककथाएँ कहीं गई हैं, वो कहीं ना कहीं एक आदिवासी महिला द्वारा ही कही गई है। लोककथाओं की परम्परा को आगे बढ़ाने में महिलाओं ने अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

प्राचीन लोककथाएँ दादा-दादी, नाना-नानी जैसे वृद्ध लोग पोता-पोतियों नाती-नातियों को सुनाते हैं। इसके द्वारा वे बच्चों को नैतिक शिक्षा प्रदान करते हैं। लोककथाएँ आदिवासियों के हर पहलू से जुड़ी होती हैं। राकेश कुमार सिंह के उपन्यास 'जो इतिहास में नहीं है' में हरिल लाली से विवाह करना चाहता था, लेकिन

लाली उर्रौव महतो की पुत्री थी । जिनका सन्तालों के घर में विवाह नहीं होता था । तब हारिल मुरमू विजातीय विवाह की लोककथा सोचता है-

“सतयुग में जब धरती पापों के बोझ से डगमगाने लगी थी तो ईश्वर ने ‘गजमती’ नामक एक हाथी बनाया जिसने अपने बोझ से पाप भरी धरती को जल में डुबो दिया था ।”

जलमग्न हो गयी धरती । डूब गये थे सारे जीव-वनस्पति । फिर ईश्वर ने ‘जाहेर आयो’, ‘माराडबुरु’ और ‘लिटा गोंसाई’ के साथ दो युगों तक गहन विचार-विमर्श किया था । तय हुआ कि सृष्टि का निर्माण नहीं किया गया तो हमारी पूजा कौन करेगा ? कौन देगा अक्षत, फूल, नैवेद्य और बलि... ?

ईश्वर ने बादलों के दो टुकड़ों से एक हंस और एक हंसिनी का निर्माण किया था । ज्यों ही ईश्वर ने दोनों पक्षियों में प्राण फूँके, पक्षी युगल आकाश में उड़ गया ।

प्राण प्रतिष्ठा के बाद ईश्वर के बनाये हंस और हंसिनी ने दो अण्डे दिये । चूँकि इन्हीं अण्डों से भावी सृष्टि की रचना होनी थी अतः ईश्वर की इच्छा हुई कि ‘माराडबुरु’ नयी धरती का निर्माण करें ।

माराडबुरु ने कछुवे को बुलाया । प्रस्ताव रखा कि यदि कछुआ अपनी पीठ पर धरती का निर्माण करने दे तो माराडबुरु का आधा राज्य उसे मिल सकता था । साथ ही ‘माराडबुरु’ की एक पुत्री भी ।

कछुआ सहमत हो गया । ईश्वर ने कछुए के चारों पैरों में सोने की जंजीरें बाँध दीं । चारों जंजीरों को चार दिशाओं में कील दिया । कछुए को इतनी भर सुविधा मिली कि वह बारह वर्षों में मात्र एक बार हिल-डुल सकता था । अपने देह की जकड़न मिटा सकता था ।

दूसरी एक पुत्री और शेष आधा राज्य का आकर्षक प्रस्ताव, नागराज को भी भा गया था । उसने भी पृथ्वी के निर्माण में सहयोग किया । बारह वर्षों में मात्र एक बार हिलने-डुलने की शर्त को भी नागराज ने सहर्ष स्वीकार किया ।

ईश्वर ने नागराजा को लपेटकर कुण्डली बनायी और उसे कछुवे की पीठ पर स्थापित कर दिया। नागराजा की कुण्डली पर रखा गया एक स्वर्ण थाल पृथ्वी-निर्माण का ठोस आधार तैयार हो चुका तो आवश्यकता पड़ी मिट्टी की।

स्वर्णथाल को मिट्टी से भरना विकट कार्य था। क्योंकि चारों ओर जल ही जल था। प्रचुर मिट्टी यदि उपलब्ध थी तो सीधे पाताल में।

‘माराड्बुरु’ के आदेश पर चिंगड़ी मछली मिट्टी लाने पाताल लोक को गयी परन्तु वह विफल रही। सारी मिट्टी रास्ते में ही घुलकर विलीन हो गयी। केंकड़ा राजा का प्रयास भी असफल रहा। वह भी मिट्टी साथ न ला सका। अन्ततः ‘माराड्बुरु’ की अपेक्षाओं पर खरा उतरा केंचुआ राजा। अनथक परिश्रम करने के बाद अन्ततः केंचुआ राजा ने पाताल लोक की मिट्टी से स्वर्णथाल भर डाला। पृथ्वी के निर्माण के गुरु गम्भीर अभियान में सफल होने पर प्रसन्न माराङ्गुरु ने अपनी तीसरी पुत्री को केंचुआ राजा के साथ ब्याह दिया।

ईश्वरीय आदेश पर ‘माराड्बुरु’ ने धरती पर वनस्पतियों के बीज छींटे। हंस-हंसिनी के अण्डों को हिहिड़ी-पिपिड़ी नामक स्थान पर सुरक्षित रखने की व्यवस्था की। इन्हीं अण्डों से उत्पन्न हुए थे पिलचु हड़ाम और पिलचु बूढ़ी।

आदि पुरुष और आदिनारी पले-बढ़े। सृष्टि के विकास हेतु सन्तानोत्पत्ति की। सात बेटों-सौंदरा, सान्दोम, चारे, माने, अचारे, देलहू और किरु को जन्म दिया। सात बेटों के अतिरिक्त सात बेटियाँ भी। छिता, कापरा, दिसी, डुमनी, दानगी, पुँड़गी और तासी। इन बेटों-बेटियों के आपस में ब्याह हुए जिनसे बढ़ आदिवासियों का वंशवृक्ष।²⁸ यह एक उराँव लोककथा है। इसमें विवाह से संबंधित कहानी कही गयी है।

आदिवासियों का जीवन प्रकृति के बीच में गुजरता है। अतः उनकी लोककथाओं का उद्भव भी प्रकृति के बीच में ही हुआ है। लोककथाएँ आदिवासी साहित्य है। इससे आदिवासियों के विचारों की जानकारी मिलती है।

कमार आदिवासियों में पृथ्वी की उत्पत्ति संबंधी लोककथा इस प्रकार से कही गयी है- “एक बार महादेव एक पागल सियार से इस कदर क्रुद्ध हो उठे कि उन्होंने विश्व के विनाश की आज्ञा दे दी। एक वृद्ध स्त्री ने इस शाप को सुना और उसे अपने पति को बतलाया तथा दोनों एक जंगल में चले गये और उन्होंने अपने पुत्र और पुत्री को भी अपनी नाव में रख लिया। शीघ्र ही बाढ़ आई और पृथ्वी पर समस्त मानव उसमें डूब गये। बारह वर्ष बाद जब महादेव का क्रोध ठण्डा हुआ तो उन्होंने अपने सेवकों को विश्व की पुनर्चना करने के लिए भेजा। इन्होंने उस वृद्ध जोड़े के पुत्र-पुत्री को ढूँढ निकाला और महादेव ने उन्हें अपने बच्चे मान लिया। एक केंचुए के दाँतों से थोड़ी सी मिट्टी निकाली गई और उससे इस पृथ्वी का फिर से निर्माण हुआ। अब लड़के व लड़की को इस पृथ्वी पर छोड़ दिया गया। महादेव ने अनेक प्रकार की युक्तियों से अन्त में इस लड़के लड़की में परस्पर यौन प्रसंग कराने में सफलता प्राप्त की। इससे अनेक सन्ताने उत्पन्न हुयीं परन्तु उनकी माता शर्म से मर गई। अब महादेव ने इन सन्तानों को भिन्न-भिन्न जोड़ों में बाँट दिया और प्रत्येक जोड़े से एक जनजाति का जन्म हुआ।”²⁹

राकेश कुमार सिंह ने ‘जो इतिहास में नहीं हैं’ में हँसुली माई की लोककथा का वर्णन किया है-

“एक मिथक थी हँसुली माई। अंग्रेजी उपनिवेशवाद के विरुद्ध निम्न और निरक्षर वनवासियों के प्रतिकार का प्रतीक थी हँसुली माई। ललमूँहे अंग्रेजों के प्रति आदिवासियों की घनघोर घृणा का एक रूपक थी हँसुली माई। आदिवासी समाज के भीतर प्रतिरोध के नैतिक बल और एक परिताप की संस्कृति को विकसित करती थी हँसुली माई की कथा....।”

लातेहार के सबसे बड़े पहाड़ ‘तप्पा’ के नीचे था गाँव घोड़ परास! ‘हो’ लोगों का गाँव या घोड़परास!

घोड़ापरास के कुम्हार किसुन ने ‘हो’ की बेटी टुन्नी से ‘राजी-खुशी’ ब्याह किया था। किसुन के घरवाले इस ब्याह के लिए सहमत नहीं हुए थे तो किसुन टुनियाँ को लेकर महुवाडॉड़ भाग गया था।

गोतिया-समाज से कटकर रह नहीं सका किसनु! परिवार से टूटकर ब्याह किया था परन्तु जैसे ही नयी-नोहर बहुरिया का नशा उतरा, दुनिया को छोड़कर अपने घर लौट आया। तब परित्यक्ता दुनिया के पेट में थी हँसुली।

एक तो वैसे ही 'हो' औरतें दूसरी जाति की आदिवासिनों से दो बित्ते लम्बी होती थीं। 'हो' औरतों का रंग भी तम्बई होता था ऊपर से लुहार बाप का बीज थी हँसुली।

भक्क गेहुआँ गोराई लिये जन्मी थी हँसुली। सयानी हुई तो खूब लम्बी.....
....गोरी,.....घने लम्बे केश,.....बड़ी-बड़ी आँखें.....चोख नाक और लाल-लाल ओठ.....।

गाँव का मुखिया बिसनू मानकी हँसुली को देख घिरनी की भाँति नाचने लगा था हँसुली के आगे-पीछे।

हँसुली जैसी सुन्नर आदिवासिन छोड़ी को कौन काला, नाटा, चपटी नाक और जीरे जैसी आँख वाला आदिवासी लड़का पसन्द आता ? बिसनू मानकी के साथ ब्याह कर बिसनू के घर बैठ गयी थी हँसुली पर हँसुली की बुरी लत ने उसका घर उजाड़ दिया।

कुँवारेपन से ही जन्तर-मन्तर, बिसाहा-बिसाही और ओझा-सोखा में रुचि लेने लगी थी हँसुली। बिसनू को हँसुली के भगतिन न होने का पता चला था तो वह खौल उठा था। घर में डायन कौन बसाए ?

“डइनी बहुरिया सूअर का लेंड। न लीपने लायक, न जराने जोग...! निकल घर से...भाग डइनी!”

अपनी माँ के भाग्य का प्रतिबिम्ब बनी हँसुली....! परित्यक्ता हँसुली के पेट में भी तब बिसनू का अंश था।

बिसनू ने छोड़ दिया तो हँसुली खुला खेल खेलने लगी थी। आदिवासिन थी पर सादान लोगों से भी बढ़िया मेल-जोल रखती थी। हँसुली के गुणों पर रीझकर एक सादान ओझा ने उसे अपने साथ रख लिया था। गुनी ओझा की रखैल बनकर भी सन्तुष्ट थी हँसुली।

ओझा से गुन-मन्तर सीखने के बाद उसने बिसनू के अंश को जन्म तो दिया पर कहते थे लोग कि अपनी देह से जनमाये इकलौते बेटे को खाकर हँसुली ने डायन विद्या में सिद्धि पायी थी। उसके डायन विद्या के प्रति एकाग्र निष्ठा की परीक्षा भी अपने बेटे की बलि जिसमें हँसुली उत्तीर्ण हो गयी थी।

डायन विद्या में पारंगत हो चुकने के बाद हँसुली में अलौकिक शक्तियाँ आ गयी थीं। लोग कहते थे कि जिस नदी में पाँव रख देती थी हँसुली, नदी सूख जाती थी। जिस वृक्ष के पत्ते पर फूँक देती थी हँसुली, हरा-भरा वृक्ष देखते-देखते सूख जाता था। अँकवार में भरक ताड़ का पेड़ उखाड़ लेती थी हँसुली।

जब हँसुली जवान थी तो एक दिन गाँव में अंग्रेज नायब आया। साथ था साथ कोई ललमुँहाँ साहेब। साहेब के घोड़े के सामने पड़ गयी हँसुली। हँसुली पर नजर पड़ते ही साहेब का घोड़ा हिनहिनाने लगा। पिछली टाँगों पर खड़ा हो गया घोड़ा तो ललमुँहा साहब घोड़े से गिर पड़ा।

आग बबूला ललमुँहाँ साहेब क्रोध से और लाल हो गया था। ललमुँहे साहब ने हँसुली को लाठी से पीटा। हँसुली का माथा फाड़ दिया।

अचेत होकर गिर पड़ी थी हँसुली। ललमुँहे साहेब ने अचेत पड़ी हँसुली को घोड़े की टापों से कुचलकर लहलुहान कर दिया। सब देखते रहे और ललमुँहा साहेब घोड़ा फेंकता गाँव से निकल गया था।

हँसुली को ललमुँहों से घृणा हो गयी थी। अब ललमुँहे उसके जनम-जनम के वैरी थे जिनसे वह बदला लेना चाहती थी।

हँसुली ने कभी अपने गाँव-जवार के लोगों पर कोई टोना-टोटका नहीं किया था। किसी मनुष्य को कभी हानि नहीं पहुँचाती थी हँसुली परन्तु अंग्रेज साहेब के हाथों अपमानित होने के बाद हँसुली चण्डी बन गयी थी।

रात को हँसुली पेड़ हाँककर जहाँ मन तहाँ ले जाती थी। रात-बिरात वह कम्पनी सरकार के सिपाहियों की छावनियों तक जाने लगी थी। हँसुली का प्रकोप ऐसा कि छावनी के सिपाहियों में प्लेग फैल जाता था। हँसुली के सिद्ध भूत सिपाहियों पर हैजा बोझ देते थे। पटापट मरने लगते थे अंग्रेजी सैनिक और सिपाही।

हँसुली मसान भी जाती। दफनाये गये कम्पनी सरकार के सैनिक-सिपाहियों की कब्र कोड़ती और उन मुर्दों का मांस खाकर तृप्त होती।

जिस ललमूँही मेम को हँसुली की नजर लग जाती थी उसकी कोख जल जाती थी। नौ-नौ महीने का पेट गिर जाता था। नील के खेतों में रात-बिरात टोना-टोटका करती फिरती थी हँसुली ताकि नीलहे साहेब लोगों की फसल मर जाए।

हँसुली से तंग आ गयी थी कम्पनी सरकार! आदिवासी समाज में चुप की संस्कृति के प्रतिरोध का रूपक बनती जा रही हँसुली को सहन करना जब कठिन हो गया तो एक दिन कम्पनी सरकार के सैकड़ों सैनिकों ने पूरे फौज-फाटे के साथ हँसुली के गाँव को घेर लिया।

ललमूँहे सिपाही तोप-तमंचे दागने लगे तो गाँव में हाहाकार मच गया। कम्पनी सरकार के घोड़ चढ़े सैनिकों ने हँसुली के गाँव में आग लगा दी।

गाँव धू-धूकर जलता रहा। लोग बाग घर छोड़कर भाग भी न सके। आग की लपटों के भीतर कैद लोगों के चारों ओर घेरा डाले बैठी रही ललमूँहों की पलटन परन्तु हँसुली को कोई छू भी नहीं सका।

हँसुली का घर लहक उठा तो आग की गगनचुम्बी लपटों के साथ हहास करती हँसुली आकाश में उधिया गयी। देखते-देखते आसमान पर जा चढ़ी हँसुली। ललमूँहे सैनिक ठगे-से ताकते रह गये।

एक रात हँसुली ने आस-पास के सारे गाँवों के मुखिया लोगों को एक ही साथ एक सपना दिया। सपने में हँसुली ने आदेश दिया कि हमारे जले गाँव के सिवान पर हमारा थान बँधवा दो। चबूतरा गढ़वा दो। हम गाँव के सिवान पर वास करेंगे। चोर-चिलर और ललमुँहों के भय से आदिवासी समाज को निर्भय करेंगे।

घोड़परास गाँव के सिवान पर हँसुली माई का थान बनवा दिया गया। हँसुली माई का सत्त दुनिया देखने लगी।

हँसुली माई की शक्ति ऐसी कि थान के निकट से होकर आने-जाने वाले कम्पनी सरकार के सिपाहियों के पैर धरती से सट जाते थे। हँसुली माई के थान के पास यदि कोई देसी सिपाही भी भूल से अपनी बन्दूक जमीन पर रख देता था तो बन्दूक धरती से चिपक जाती थी। धरती मइया भी गुनी हँसुली माई की शक्ति का आदर कर शस्त्र को चिपका लेती थी। लगान वसूल कर कोई दारोगा या नायब सजवाल उधर से गुजरता था तो उसका सारा बही-खाता जल जाता था। लगान के रूपये पिघल जाते थे।

हँसुली माई के थान पर नीम का वृक्ष उगा! नीम के पेड़ के नीचे चैत की नवमी तिथि को जुटने लगे ओझा-सोखा! बैगा और भगत.....। थान पर पूजा होने लगी। मुर्गों-चेंगनों की बलि चढ़ने लगी। चैत-नवती की पूरी रात हँसुली माई की जैकारी से जागा रहता था जंगल.....।

हँसुली माई की जीवन-कथा लोककथा बन गयी थी। हँसुली माई की संघर्ष कथा लोककथा के रूप में कहते-सुनते प्रतीकों में ढल गयी। नाम रहा था हँसुली माई का। चलता रहा था शोषितों का शोषकों के विरुद्ध मानसिक युद्ध।³³

इस लोककथा में हँसुली को डायन के रूप में चित्रित किया गया है।

एम. वीरप्पा मोयिलि के उपन्यास 'कोट्टा' में कोरगतनिय की लोककथा का वर्णन है-

पणं बुरु की पट्टसाले में ओड़ी नाम का एक आदमी था। उसकी पत्नी का नाम अच्युमैरे था। उनका बेटा ही तनिय था। जब वह एक मास का था तब उसकी माँ मर गयी, बाद में पिता भी गुजर गये। उसके वंश के सात गाँव कोप्पा के कोरग भी मिट गये। तनिय ने सातों वंश का ढेल एक ओर लटका दिया। कोई आगे-पीछे न होने से ओड़ी का पुत्र तनिय घर छोड़कर जंगल में चला गया। उत्तर दिशा में चलते-चलते हजारों लोगों के आने-जाने वाले रास्ते पर जा बैठा। पान के नाम पर एक विषैला पत्ता और सुपारी के नाम एक दड़्डाली नाम का कच्चा फल रखकर खेलने लगा। अपने पर आयी मुसीबत याद करक अपने आप हर बार हँसता और एक बार रो देता।

इतने में कदिरे की ओर सिर पर दारु उठाए माँ मैरक्कै बैदती अपने बेटे चेन्नैया के साथ उसी रास्ते से जा रही थी। उसने पूछा, “तुम कौन हो ? एक बार हँसते हो एक बार रोते हो। हमारा रास्ता छोड़ो हमें उस तरफ जाना है।” यह सुनकर तनिय ने उससे कहा, “रास्ता माँग रही हो। मेरी कमर पर लपेटने को चीथड़ा तक नहीं है।” मैरक्कै बैदती ने अपने बेटे चेन्नैया के सिर पर लदा घड़ा नीचे उतारा और ईडवा बनाकर उसके सिर पर रखा। कमर पर लपेटने को कपड़ा दे दिया। यह जानकर कि उसके माँ-बाप नहीं है। वह बोली, “मेरे दो बच्चे हैं। तुम्हें मिलाकर तीन हो जाएँगे। मेरे संग चलोगे ?” तनिय ने कहा, “हाँ चलता हूँ।” उसने कलेवे वाली टोकरी से निकालकर खाना दिया और उसके सिर पर दारु का घड़ा उठवाकर घर को ले चली।

दूर से तीन जनों को आते देखकर अत्तला बैदती ने यह सोचकर कि जाते समय माँ और भाई ही थे। अब तीन जने आ रहे हैं ? उसने माँ से पूछा, “ओय, माँ यह लड़का कौन है ? कहाँ मिला, बड़ा सुन्दर है।”

माँ मैरक्कै बैदती बोली, “कुल्लापु मन्दिर के पास मिला। बाहर का काम-धन्धा कर देगा सोचकर ले आयी।” बाद में माँ ने उसे पालना शुरू किया।

एक बार सात रात-सात दिन बीतने पर भी मैरक्के बेदती की शराब नहीं बिकी। उसने कदरी के मंजुनाथ की मन्त मानी कि यदि उसकी शराब बिक गयी तो

वह काँसे का कलश चढ़ाएगी। मन्नत करने की देर थी कि सारी शराब बिक गयी। माँ ने अपने बेटे चिन्नय्या से कहकर तनिय के लिए एक कोठरी बनवा दी। सुपारी के बाग भेजकर एक सुपारी का पत्ता मँगाया और उसके लिए टोपी बना दी। तनिय ने तब माँ मैरक्के बैदती से कहा, “माँ मुझे एक हँसिया बनवा दो। मैं अपने कुल का धन्धा करूँगा।”

उसने चिन्नय्या से हँसिया लेकर एक हजार टोकरियाँ बनवाईं और उन्हें कदरी के मन्दिर में चढ़ा आया। एक दिन माँ ने अपनी बेटी से कहा, “सात बोझ कदरी मन्दिर से जाने हैं। तुम सात आदमी बुला लो।” तब वहीं खड़ा तनिय बोला “माँ सात आदमी काहे को मैं अकेला ही सातों का बोझ ले जा सकता हूँ।” यह सुनकर बैदती ने सात आदमियों का खाना और शराब उसे परोसी। सातों बोझों का एक गट्ठा बना दिया। तनिय उसे आसानी से उठाकर मन्दिर चल दिया। पर मंदिर के देवता ने उसे भीतर घुसने नहीं दिया।

तब तनिय ने कहा- “मंदिर में घुसने से क्यों रोक रहे हो ? मेरा लाया गट्ठर तो आप स्वीकार करने को तैयार हो पर उसे उठाकर आप मुझे भीतर क्यों नहीं घुसने देते हो ? यह कहकर वह इधर-उधर कुछ खोजने लगा। तभी उसे मन्दिर के गोपुर के पास मादल के पेड़ पर एक फल दिखा। उसे याद आया कि माँ उस फल का अचार बनाना चाहती थी। वह फल तोड़ने को जैसे ही उसने हाथ बढ़ाया वह अदृश्य हो गया और पत्थर बन गया। आज भी वह पत्थर ही है। वह हमारी जाति के लोगों की ही पूजा स्वीकार करता है और कष्टों का परिहार करता है।”³⁴

इसकी पूजा को औरतें नहीं देखती हैं। कोरगों से सम्बन्धित सारे महत्त्वपूर्ण विषय इस लोकगाथा में हैं।

इसी प्रकार से विभिन्न लोककथाएँ कही जाती हैं। जिसमें स्त्री को केन्द्र में रखा जाता है। स्त्री के आस-पास ही इनकी कथा बुनी जाती है। मेरे अनुसार लोककथाओं में आदिवासियों की परम्परा को सुरक्षित रखा जाता है। जिसमें स्त्री की

मुख्य भूमिका होती है। स्त्री ही अपनी संस्कृति को बचाए रखने के लिए लोककथाओं के माध्यम से इसे एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में स्थानांतरित करती रहती है।

‘गिद्ध और आदमी’ की लोककथा देखिये—एक स्त्री जंगल गई। जंगल में उसको जुड़वां बच्चे हुए एक लड़का और एक लड़की। स्त्री ने कहा— “दोनों बच्चों को पालना मेरे लिए कठिन है, मैं लड़की को ले जाऊंगी क्योंकि लड़की घर—झाड़ू करेगी, पानी भरेगी और साग तोड़ेगी। बेटा तो बस गुलेल लेकर घूमेगा।” उसने लड़के को टहनियों से ढंक दिया। लड़की को लेकर वह घर लौट गई।

आकाश में एक गिद्ध उड़ रहा था। उसने टहनियों से ढके बच्चे को देखा। वह नीचे उतरा और बच्चे को लेकर अपने घोंसले की ओर चला गया। वहाँ गिद्ध—गिद्धनी ने बच्चे को पाला। जब लड़का जवान हुआ तो गिद्ध—गिद्धनी ने हाटों से झपट—झपट कर कंधी, झिलपी (चांदी का सिंगार), करेया (कमर में पहनने का सूती कपड़ा) और मांदर लाकर दिया। लड़का सज—धज कर मेले में जाने लगा। तब गिद्ध—गिद्धनी ने लड़के से कहा— “उत्तर जाना, दक्षिण जाना, पूरब जाना और पश्चिम मत जाना।”

लड़का मेले में गया। वहाँ लोग उसके नृत्य को देखकर आनन्दित होते। एक दिन मेले में नाचते हुए उसकी बहन मिल गई। बातचीत में दोनों ने परिचय प्राप्त किया। फिर बहन उसे अपने घर ले गई। रात को उसकी मां बेटे को पाकर बहुत खुश हुई।

दूसरे दिन माँ जंगल जाने लगी। उसने बेटी को कहा— “भाई को बाहर मत निकलने देना।” बेटी ने मां के जाने के बाद भाई को आंगन में खाट पर सुला कर, बाहर का दरवाजा बंद कर दिया। इधर गिद्ध—गिद्धनी रात भर लड़के के लिए परेशान हो गए। दूसरे दिन बड़े सवेरे वे उसे खोजने निकले। उन्होंने आकाश से देखा कि लड़का चारपाई पर लेटा है। वे धीरे—धीरे नीचे उतरने लगे। जब छत के करीब वे गए तो लड़की ने गीत गाया—

“कवन चरइया दादा रिगीबिगी दादा रिगीबिगी रे।

लइके ने उत्तर दिया-

“ओहे हेकयं बहिन सोने गिद्धनी

बहिन रुपे गिद्धनी बहिन पोसलयं।”

तब तक गिद्ध-गिद्धनी नीचे उतर कर छत पर बैठ गए। लइकी ने फिर गाया। लइके ने उत्तर दिया। क्रमशः गिद्ध-गिद्धनी पहले खूंटे पर, फिर चारपाई पर उतर आए। एक सिरहाने, दूसरा पैताने बैठा। फिर दोनों ने लइके को नोंच-नोंच कर खा डाला। हड्डियां रह गईं। लइकी ने हड्डियों पर चादर डाल दी।

मां जंगल से लौटी। मां ने पूछा- “तुम्हारा भाई कहाँ है?” लइकी ने कहा- “खाट पर सोया है” मां ने चादर उठाकर देखा फिर ढक दिया। वह रोई। तब दोनों ने जाकर हड्डियों को नदी में बहा दिया।”³⁰

यह एक खड़िया लोककथा है जिसमें जन्म देने वाली मां ही अपने बेटे को जंगल में छोड़कर चली जाती है।

एक उरावं लोककथा में एक राजकुमारी की कथा कही गई है। सर्वगुण सम्पन्न होने के कारण उसके योग्य वर नहीं मिल रहा था, इस वजह से देवता उससे विवाह करके स्वर्ग में ले जाते हैं। राजकुमारी के स्वर्ग में जाते ही धरती पर वर्षा होनी बंद हो जाती है। इसका सविस्तार वर्णन देखिये-

अति प्राचीन काल में उरावं राज परिवार में एक अत्यन्त ही रूपवती, बलिष्ठ, सत्यवती, सुशील विरांगना थी। इस पृथ्वी पर उसके लायक कोई वर नहीं मिला। उसके नारी सुलभ गुणों को देखकर देवता उसे ब्याह कर स्वर्ग ले जाना चाहते थे। एक दिन वे उसे ब्याह कर पुष्पक विमान से स्वर्ग ले गए। जिस दिन से उसने पृथ्वी छोड़ी, उसी दिन से बारिश होनी बंद हो गयी। लोग उस राजकुमारी को बहुत चाहते थे। राजकुमारी का उनसे अलग होना, उनके लिए बहुत दुःखदायी था।”

जब बारिश बंद हो गई, तो प्रजा सोचने लगी कि जब तक राजकुमारी थी, बारिश होती रही, ज्यों ही वह विवाह करके चली गई, बारिश होनी भी बंद हो गई। लोगों ने एक सभा बुलायी और तय किया कि राजकुमारी को वापस पृथ्वी पर बुलाया जाय। समस्या थी कि स्वर्गलोक कैसे जाया जाए और राजकुमारी को कैसे खबर भेजी जाए कि वे लोग इसे लेने आ रहे हैं? लोग सोचने लगे की सीढ़ी बनाकर या अन्य किसी उपाय से उसके पास पहुंचा जा सकता है। प्रजा अत्यन्त धर्मनिष्ठ थी। कुछ लोगों ने कहा कि सीधे हाथ जोड़कर आंतरिक हृदय से देवताओं से प्रार्थना की कि राजकुमार को पृथ्वी पर अविलंब भेज दिया जाए। प्रजा की सत्य-निष्ठा के आगे देवतागण हार गए और उन्होंने राजकुमारी को पृथ्वी पर भेज दिया।

वह पृथ्वी पर पहुँची, तो लोगों ने उसका भव्य स्वागत किया। प्रजा ने शाल-फूल का हार बनाकर उन्हें पहनाया एवं कुछ फूल राजकुमारी के जूड़े में भी लगा दिए।

सभी गाने लगे-

“एन्देर पुंपर मेजेरकी पेलो भाग जोगनी लेखे लवकारती बरा लागदि हो, भाग जोगनी लेखे लवकारती बरा लागदी।”

“नौर पूंपर मेजेर की पेलो भगजोगनी बेसे लवकारती वरा लागदि हो, भगजोगनी बसे लवकारती बरा लागदि।” प्रजा ने उत्तर में गाया।

ऊपर से देवतागण झांककर यह देख रहे थे कि राजकुमारी का लोग कैसे स्वागत कर रहे हैं। राजकुमारी का भव्य स्वागत देखकर देवतागण भी सोच में पड़ गए। उन्हें लगा कि उन्हें भी इस खुशी के अवसर पर कोई उपहार देना चाहिए। सब देवताओं ने मिलकर राजकुमारी को उपहार में ‘जल-वर्षा’ देने का फैसला किया। धरती पर वर्षा होने लगी। लोगों को विश्वास हो गया कि सचमुच ही राजकुमारी के आने पर वर्षा हुई थी। लोग बहुत खुश हुए।

आज भी प्रत्येक 'सरना' में एक पत्थर का पीढ़ा रखा जाता है। उस पर पाहन को छोड़कर, अन्य कोई नहीं बैठ सकता। उस दिन हुई बारिश की याद में, आज भी लोग इकट्ठा होते हैं।

जब पाहन घर-घर फूल और माड़ बांटता है, तब वे- 'बइरसो-बइरसो' की आवाज करते हैं। जिस स्थान पर शाल वृक्ष के नीचे राजकुमारी बैठी थी, उसी शाल-वृक्ष को लोगों ने पवित्र माना और उसी जगह को 'सरना' कहा। राजकुमारी गर्भवती होकर पृथ्वी पर आई थी। चैत तृतीया को राजकुमारी ने एक शिशु को जन्म दिया। शिशु को कुडुख में 'खद्द' कहा जाता है।

चूंकि वह राजकुमारी का पुत्र था और राजकुमारी के लिए प्रजा के मन में श्रद्धा थी, इसलिए उस शिशु का बड़ी धूमधाम से मुंडन संस्कार कराया गया।

उसी शाल वृक्ष के नीचे लोग तरह-तरह के पकवान खाते-पीते और आनंद उठाते हैं। यह उत्सव 'खद्दी' कहलाता है। उस दिन की याद में ही लोग प्रत्येक वर्ष 'खद्दी' मनाते हैं।³¹

खड़िया लोककथाओं में उनकी गोत्र कथा प्रमुख है। इस लोककथा से ही खड़िया आदिवासियों में अलग-अलग गोत्रों में विवाह होने लगे-

“सैंभों और डकई के नौ बेटे और नौ बेटियां हुईं। जब उनकी विवाह की उम्र हुई तो कुटुम्ब (जाति) के लोग नहीं मिले। सैंभों बहुत चिंतित हुआ। एक दिन उसने घर में देव-पितरों की पूजा की। तब उसने अपने बेटों को बुलाकर कहा-‘तुम जंगल में शिकार खेलने जाओ। जो जानवर ऊपर उड़ता है उसे मारकर लाओ।’ दूसरे दिन सारे बेटे सवेरे जंगल में चले गए। जंगल में दोपहर तक वे घूमते रहे पर शिकार नहीं मिला। उन्हें प्यास लग गई। सारे भाई पानी की खोज में गए। बहुत देर के बाद बड़े भाई को एक आंवले के पेड़ के नीचे पानी मिला। उसने पानी पिया। जब अंजली भर पानी उठा रहा था तो उसे एक मछली दिखाई दी। उसे डुंगडुंग मछली कहते हैं।

वह लौट आया। उसने दूसरे भाई को पानी पीने के लिए भेजा। जब वह भाई पानी पी रहा था तो उसे एक कुलु (कछुवा) दिखाई दिया। तीसरे भाई को पानी पीते वक्त केरकेट्टा पक्षी दिखाई दिया। चौथे को 'टेटेहोएंजं (टिटहरी) पांचवें को टो:पो पक्षी, छठे को किड़ो: (बाघ), सातवें को बा: (धान) मिला। आठवें भाई को पानी बिलुंग-बिलुंग (नमकीन) लगा। नौवें भाई को पूरे पानी में चटाने मिलीं। उसने कहा सोरेंग में पानी बह रहा था।

सुस्ताने के बाद जब फिर शिकार के लिए चले तो पहाड़ की चोटी पर एक हिरण दौड़ता हुआ दिखाई दिया। उन्होंने हिरण को मारा। मांस तैयार किया। अपनी-अपनी पोटली बाँधी और हिरण के चमड़े को भी लिया। वे जब घर लौटे तब तक रात हो गई थी। पिता ने बेटों को कहा- "अपनी पोटली घर के पिछवाड़े टांग दो। मैं सुबह को देखूंगा" उन्होंने वैसा ही किया। दूसरे दिन बड़ सवेरे सेंभों और डकई ने स्नान किया। 'बेड़ो-लेरड' (सूरज-चांद) को नमस्कार किया। फिर सारे बेटों को अपनी पोटली खोलकर उसके सामने खड़े होने को कहा। बेटे अपनी-अपनी पोटली के सामने खड़े हो गए। हरेक की पोटली में हिरण के मांस की जगह उन्हें जो-जो पानी पीते वक्त दिखा था, वही मिला। हिरण की खाल में सूरज-चांद के चिह्न मिले। सेंभों समझ गया कि उसके बेटों को अलग-अलग गोत्र मिल गया। सभी लड़को को तब सेंभों ने बताया कि अब से उनके अलग-अलग गोत्र डुंगडुंग, कुलु, केरकेट्टा, टो:पो, टेटेहोतज, किड़ो:, बा:, बिलुंग और सोरेंग हुए।

सेंभों ने अपनी पुत्रियों को शिकारी पुत्रों के पैर धोने के लिए बड़ी बेटी ने सबसे छोटे बेटे का पैर धोया। क्रमशः सभी बहनों ने इसी तरह पैर धोये और उनके बेटों से बेटियों ने विवाह किया। तभी से विधान बना कि अलग-अलग गोत्रों में ही विवाह होगा। यही नौ गोत्र खड़िया जाति के हुए।³²

राकेश कुमार सिंह ने 'जो इतिहास में नहीं हैं' में हँसुली माई की लोककथा का वर्णन किया है-

“एक मिथक थी हँसुली माई। अंग्रेजी उपनिवेशवाद के विरुद्ध निम्न और निरक्षर वनवासियों के प्रतिकार का प्रतीक थी हँसुली माई। ललमूँहे अंग्रेजों के प्रति आदिवासियों की घनघोर घृणा का एक रूपक थी हँसुली माई। आदिवासी समाज के भीतर प्रतिरोध के नैतिक बल और एक परिताप की संस्कृति को विकसित करती थी हँसुली माई की था...।

लातेहार के सबसे बड़े पहाड़ ‘तप्पा’ के नीचे या गाँव घोड़परास! ‘हो’ लोगों का गाँव था घोड़परास!

घोड़परास के कुम्हार किसुन ने ‘हो’ की बेटी टुन्नी से ‘राजी-खुसी’ ब्याह किया था। किसुन के घरवाले इस ब्याह के लिए सहमत नहीं हुए थे तो किसुन टुनियाँ को लेकर महुवाडॉड़ भाग गया था।

गोटिया-समाज से कटकर रह नहीं सका किसुन! परिवार से टूटकर ब्याह किया था परन्तु जैसे ही नयी-नोहर बहुरिया का नशा उतरा, टुनिया को छोड़कर अपने घर लौट आया। तब परित्यक्ता टुनिया के पेट में थी हँसुली।

एक तो वैसे ही ‘हो’ औरतें दूसरी जाति की आदिवासिनों से दो बित्ते लम्बी होती थीं। ‘हो’ औरतों का रंग भी तम्बई होता था ऊपर से लुहार बाप का बीज थी हँसुली।

भक्क गेहुआँ गोराई लिये जन्मी थी हँसुली। सयानी हुई तो खूब लम्बी,... गोरी,...घने लम्बे केश,...बड़ी-बड़ी आँखें...चोख नाक और लाल-लाल ओठ...।

गाँव का मुखिला बिसनू मानकी हँसुली को देख घिरनी की भाँति नाचने लगा था हँसुली के आगे-पीछे।

हँसुली जैसी सुन्नर आदिवासिन छोंड़ी को कौन काला, नाटा, चपटी नाक और जीरे जैसी आँख वाला आदिवासी लड़का पसन्द आता ? बिसनू मानकी के साथ ब्याह कर बिसनू के घर बैठ गयी थी हँसुली पर हँसुली की बुरी लत ने उसका घर उजाड़ दिया।

कुँवारेपन से ही जन्तर-मन्तर, बिसाहा-बिसाही और ओझा-सोखा में रुचि लेने लगी थी हँसुली। बिसनू को हँसुली के भगतिन होने का पता चला था तो वह खौल उठा था। घर में डायन कौन बसाए ?

“डइनी बहुरिया सूअर का लेंड। न लीपने लायक, न जराने जोग....। निकल घर से...भाग डइनी!”

अपनी माँ के भाग्य का प्रतिबिम्ब बनी हँसुली...! परित्यक्ता हँसुली के पेट में भी तब बिसनू का अंश था।

बिसनू ने छोड़ दिया तो हँसुली खुला खेल खेलने लगी थी। आदिवासिन थी पर सादान लोगों से भी बढ़िया मेल-जोल रखती थी। हँसुली के गुणों पर रीझकर एक सादान ओझा ने उसे अपने साथ रख लिया था। गुनी ओझा की रखैल बनकर भी सन्तुष्ट थी हँसुली।

ओझा से गुन-मन्तर सीखने के बाद उसने बिसनू के अंश को जन्म तो दिया पर कहते थे लोक कि अपनी देह से जनमाये इकलौते बेटे को खाकर हँसुली ने डायन विधा में सिद्धि पायी थी। उसके डायन विद्या के प्रति एकाग्र निष्ठा की परीक्षा थी अपने बेटे की बलि जिसमें हँसुली उत्तीर्ण हो गयी थी।

डायन विधा में पारंगत हो चुकने के बाद हँसुली में अलौकिक शक्तियाँ आ गयी थीं। लोग कहते थे कि जिस नदी में पाँव रख देती थी हँसुली, नदी सूख जाती थी। जिस वृक्ष के पत्ते पर फूँक देती थी हँसुली, हरा-भरा वृक्ष देखते-देखते सूख जाता था। अँकवार में भरकर ताड़ का पेड़ उखाड़ लेती थी हँसुली।

जब हँसुली जवान थी तो एक दिन गाँव में अंग्रेज नायब आया। साथ था कोई ललमुँहाँ साहेब। साहेब के घोड़े के सामने पड़ गयी हँसुली। हँसुली पर नजर पड़ते ही साहेब का घोड़ा हिनहिनाने लगा। पिछली टाँगों पर खड़ा हो गया घोड़ा तो ललमुँहाँ साहेब घोड़े से गिर पड़ा।

आग बबूला ललमुँहाँ साहेब क्रोध से और लाल हो गया था। ललमुँहे साहब ने हँसुली को लाठी से पीटा। हँसुली का माथा फाड़ दिया। अचेत होकर गिर पड़ी थी हँसुली। ललमुँहे साहब ने अचेत पड़ी हँसुली को घोड़े की टापों से कुचलकर लहलुहान कर दिया। सब देखते रहे और ललमुँहा साहेब घोड़ा फेंकता गाँव से निकल गया था।

हँसुली को ललमुँहों से घृणा हो गयी थी। अब ललमुँहे उसके जनम-जनम के वैरी थे जिनसे वह बदला लेना चाहती थी।

हँसुली ने कभी अपने गाँव-जवार के लोगों पर कोई टोना-टोटका नहीं किया था। किसी मनुष्य को कभी हानि नहीं पहुँचाती थी हँसुली परन्तु अंग्रेज साहेब के हाथों अपमानित होने के बाद हँसुली चण्डी बन गयी थी।

रात को हँसुली पेड़ हाँककर जहाँ मन तहाँ ले जाती थी। रात-बिरात वह कम्पनी सरकार के सिपाहियों की छावनियों तक जाने लगी थी। हँसुली का प्रकोप ऐसा कि छावनी के सिपाहियों में प्लेग फैल जाता था। हँसुली के सिद्ध भूत सिपाहियों पर हैजा बोझ देते थे। पटापट मरने लगते थे अंग्रेजी सैनिक और सिपाही।

हँसुली मसान भी जाती। दफनाये गये कम्पनी सरकार के सैनिक-सिपाहियों की कब्र कोड़ती और उन मुर्दों का मांस खाकर तृप्त होती।

जिस ललमुँही मेम को हँसुली की नजर लग जाती थी उसकी कोख जल जाती थी। नौ-नौ महीने का पेट गिर जाता था। नील के खेतों में रात-बिरात टोना-टोटका करती फिरती थी हँसुली ताकि नीलहे साहेब लोगों की फसल मर जाए।

हँसुली से तंग आ गयी थी कम्पनी सरकार! आदिवासी समाज में चुप की संस्कृति के प्रतिरोध का रूपक बनती जा रही हँसुली को सहन करना जब कठिन हो गया तो एक दिन कम्पनी सरकार के सैंकड़ों सैनिकों ने पूरे फौज-फाटे के साथ हँसुली के गाँव को घेर लिया।

ललमुँहे सिपाही तोप-तमंचे दागने लगे तो गाँव में हाहाकार मच गया। कम्पनी सरकार के घोड़ चढ़े सैनिकों ने हँसुली के गाँव में आग लगा दी।

गाँव धू-धूकर जलता रहा। लोग बाग घर छोड़कर भाग भी न सके। आग की लपटों के भीतर कैद लोगों के चारों ओर घेरा डाले बैठी रही ललमुँहों की पलटन परन्तु हँसुली को कोई छू भी नहीं सका।

हँसुली का घर लहक उठा तो आग की गगन-चुम्बी लपटों के साथ हहास करती हँसुली आकाश में उधिया गयी। देखते-देखते आसमान पर जा चढ़ी हँसुली। ललमुँहे सैनिक ठगे-से ताकते रह गये।

एक रात हँसुली ने आस-पास के सारे गाँवों के मुखिया लोगों को एक ही साथ एक सपना दिया। सपने में हँसुली ने आदेश दिया कि हमारे जले गाँव के सिवान पर वास करेंगे। चोर-चिलर और ललमुँहों के भय से आदिवासी समाज को निर्भय करेंगे।

घोड़परास गाँव के सिवान पर हँसुली माई का थान बनवा दिया गया। हँसुली माई का सत्त दुनिया देखने लगी।

हँसुली माई की शक्ति ऐसी कि थान के निकट से होकर आने-जाने वाले कम्पनी सरकार के सिपाहियों के पैर धरती से सट जाते थे। हँसुली माई के थान के पास यदि कोई देसी सिपाही भी भूल से अपनी बन्दूक जमीन पर रख देता था तो बन्दूक धरती से चिपक जाती थी। धरती मइया भी गुनी हँसुली माई की शक्ति का आदर कर शस्त्र को चिपका लेती थी। लगान वसूल कर कोई दारोगा या नायब सजवाल उधर से गुजरता था तो उसका सारा बही-खाता जल जाता था। लगान के रूपये पिघल जाते थे।

हँसुली माई के थान पर नीम का वृक्ष उगा! नीम के पेड़ के नीचे चैत की नवमी तिथि को जुटने लगे ओझा-सोखा! बैगा और भगत...! थान पर पूजा होने लगी। मुर्गों-वेंगनों की बलि चढ़ने लगी। चैत-नवमी की पूरी रात हँसुली माई की जैकारी से जागा रहता था जंगल...।

हँसुली माई की जीवन-कथा लोककथा बन गयी थी। हँसुली माई की संघर्ष कथा लोककथा के रूप में कहते-सुनते प्रतीकों में ढल गयी। नाम रहा था। हँसुली माई का। चलता रहा था शोषितों का शोषकों के विरुद्ध मानसिक युद्ध।³³

इस लोककथा में हँसुली को डायन के रूप में चित्रित किया गया है।

एम. वीरप्पा मोयिलि के उपन्यास 'कोट्टा' में कोरगतनिय की लोककथा का वर्णन है-

पणंबुरु की पट्टसाले में ओड़ी नाम का एक आदमी था। उसकी पत्नी का नाम अच्चुमैरे था। उनका बेटा ही तनिय था। जब वह एक मास का था तब उसकी माँ मर गयी, बाद में पिता भी गुजर गये। उसके वंश के सात गाँव कोप्पा के कोरग भी मिट गये। तनिय ने सातों वंश का ढोल एक ओर लटका दिया। कोई आगे-पीछे न होने से ओड़ी का पुत्र तनिय घर छोड़कर जंगल में चला गया। उत्तर दिशा में चलते-चलते हजारों लोगों के आने-जाने वाले रास्ते पर जा बैठा। पान के नाम पर एक विषैला पत्ता और सुपारी के नाम एक दड़्डाली नाम का कच्चा फल रखकर खेलने लगा। अपने पर आयी मुसीबत याद करके अपने आप हर बार हँसता और एक बार रो देता।

इतने में कदिरे से बीदरे की ओर सिर पर दारु उठाए माँ मैरक्कै बैदती अपने बेटे चेन्नैया के साथ उसी रास्ते से जा रही थी। उसने पूछा, "तुम कौन हो? एक बार हँसते हो एक बार रोते हो। हमारा रास्ता छोड़ो हमें उस तरफ जाना है।" यह सुनकर तनिय ने उससे कहा, "रास्ता माँग रही हो। मेरी कमर पर लपेटने को चीथड़ा तक नहीं है।" मैरक्कै बैदती ने अपने बेटे चेन्नैया के सिर पर लदा घड़ा नीचे उतारा और ईडवा बनाकर उसके सिर पर रखा। कमर पर लपेटने को कपड़ा दे दिया। यह जानकर कि उसके माँ-बाप नहीं हैं वह बोली, "मेरे दो बच्चे हैं। तुम्हें मिलाकर तीन हो जाएँगे। मेरे संग चलोगे?" तनिय ने कहा, "हाँ चलता हूँ।" उसने कलेवे वाली टोकरी से निकालकर खाना दिया और उसके सिर पर दारु का घड़ा उठवाकर घर को ले चली।

दूर से तीन जनों को आते देखकर अत्तला बैदती ने यह सोचकर कि जाते समय माँ और भाई ही थे। अब तीन जने आ रहे हैं ? उसने माँ से पूछा, “ओय, माँ यह लड़का कौन है ? कहाँ मिला ? बड़ा सुन्दर है।”

माँ मैरक्के बैदती बोली, “कुल्लापु मन्दिर के पास मिला। बाहर का काम-धन्धा कर देगा सोचकर ले आयी।” बाद में माँ ने उसे पालना शुरू किया।

एक बार सात रात-सात दिन बीतने पर भी मैरक्के बैदती की शराब नहीं बिकी। उसने कदरी के मंजुनाथ की मन्नत मानी कि यदि उसकी शराब बिक गयी तो वह काँसे का कलश चढ़ाएगी। मन्नत करने की देर थी कि सारी शराब बिक गयी। माँ ने अपने बेटे चिन्नय्या से कहकर तनिय के लिए एक कोठरी बनवा दी। सुपारी के बाग भेजकर एक सुपारी का पत्ता मँगाया और उसके लिए टोपी बना दी। तनिय ने तब माँ मैरक्के बैदती से कहा, “माँ मुझे एक हँसिया बनवा दो। मैं अपने कुल का धन्धा करूँगा।”

उसने चिन्नय्या से हँसिया लेकर एक हजार टोकरियाँ बनवाईं और उन्हें कदरी के मन्दिर में चढ़ा आया। एक दिन माँ ने अपनी बेटी से कहा, “सात बोझ कदरी मन्दिर से जाने हैं। तुम सात आदमी बुला लो।” तब वहीं खड़ा तनिय बोला “माँ सात आदमी काहे को मैं अकेला ही सातों का बोझ ले जा सकता हूँ।” यह सुनकर बैदती ने सात आदमियों का खाना और शराब उसे परोसी। सातों बोझों का एक गट्ठा बना दिया। तनिय उसे आसानी से उठाकर मन्दिर चल दिया। पर मंदिर के देवता ने उसे भीतर घुसने नहीं दिया।

तब तनिय ने कहा, “मंदिर में घुसने से क्यों रोक रहे हो ? मेरा लाया गट्ठर तो आप स्वीकार करने को तैयार हो पर उसे उठाकर आप मुझे भीतर क्यों नहीं घुसने देते हो ? यह कहकर वह इधर-उधर कुछ खोजने लगा। तभी उसे मन्दिर के गोपुर के पास मादल के पेड़ पर एक फल दिखा। उसे याद आया कि माँ उस फल का आचार बनाना चाहती थी। वह फल तोड़ने को जैसे ही उसने हाथ बढ़ाया वह अदृश्य हो गया।

और पत्थर बन गया। आज भी वह पत्थर ही है। वह हमारी जाति के लोगों की ही पूजा स्वीकार करता है और कष्टों का परिहार करता है।”³⁴

इसकी पूजा को औरतें नहीं देखती है। कारेगों से सम्बन्धित सारे महत्त्वपूर्ण विषय इस लोकगाथा में है।

उपरोक्त सभी लोककथाओं में किसी ना किसी रूप में स्त्री का वर्णन किया गया है। स्त्री के आस-पास ही बहुत-सी लोककथाएँ बुनी गई हैं। अतः लोककथाओं में स्त्री का स्थान अग्रणीय है।

लोकपर्व

लोकपर्व आदिवासियों की पहचान है। भारत में आदिवासी समाज में विभिन्न पर्व मनाए जाते हैं। सभी समाजों में पारिवारिक और सामाजिक खुशियों का आधार त्योहार होते हैं। ये पर्व को मनाकर अपने देवी-देवताओं को प्रसन्न करते हैं। त्योहारों के समय ये अच्छे-अच्छे पकवान बनाकर देवी-देवताओं को भोग लगाते हैं।

कोई भी पर्व स्त्री के बिना अधूरा होता है। स्त्री-पुरुष, बच्चे सभी एक साथ पर्व बड़े उत्साह से मनाते हैं। स्त्री परिवार की धूरी होती है। सभी पारिवारिक कार्यों में स्त्री का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। आदिवासियों में स्त्री के बिना कोई भी कार्य अधूरा माना जाता है।

राकेश कुमार सिंह के उपन्यास ‘पठार पर कोहरा’ में आये एक पर्व है ‘जनी शिकार’। इस पर्व में स्त्रियाँ पुरुषों का वेशधारण करके शिकार करने जाती थी। पहले यह पर्व जंगल में होता था, किंतु जमींदारों के जंगलों पर अधिकार व सरकारी नीतियों के कारण अब ये जंगल में नहीं जा पाती। जनीशिकार की परम्परा को बचाए रखने के लिए स्त्रियाँ एक जंगल से दूसरे जंगल न जाकर एक गाँव से दूसरे गाँव जाने लगी है।

“आदिवासी समाज में हर बारहवें वर्ष आयोजित होता है ‘जनीशिकार’ का कार्यक्रम। उराँव समाज की सिनगी दाई और कैली दाई-दो वीर स्त्रियों की स्मृतियों को सुरक्षित रखने और अपनी महिलाओं के मर्दाने साहस के साथ मर्दों से जूझने के इतिहास को संरक्षित रखने का त्योहार है- ‘जनीशिकार’। शिकार का ऐसा आयोजन जिसमें जनानियाँ मर्दों का वेष धारण कर शिकार पर निकलती हैं। साथ कोई पुरुष नहीं होता।”³³

‘जनीशिकार’ पर्व में केवल स्त्रियाँ ही भाग लेती हैं। इसमें पुरुषों का प्रवेश वर्जित होता है। इसमें महिलाएँ पुरुषों की तरह शिकार करती हैं। शिकार पर निकली स्त्रियों को किसी भी पालतू पशु-पक्षी को मारने की स्वतंत्रता होती है। इनके परम्परागत सांस्कृतिक अधिकार को वन की किसी भी पंचायत में चुनौती नहीं दी जा सकती।

पर्वों से ही नवजीवन पाते हैं आदिवासी। जीवन से जुड़े रहने की लालसा और मनुष्य की जीवेषणा हर प्रतिरोध को अतिक्रमित कर सकती हैं इस प्रकार सभी प्रतिबंधों के बावजूद स्त्रियाँ इस पर्व को मनाती हैं।

‘जनीशिकार’ पर्व को मनाने के लिए पहले बड़ी पंचायत बुलाई जाती है। इस बड़ी पंचायत में कई गाँवों के मुखिया मिलकर ‘जनीशिकार’ की योजना बनाते हैं। शिकारियों के लिए शिकार के मार्ग तय किये जाते हैं। हर एक गाँव के लिए एक तिथि निश्चित की जाती है।

गाँव का मुख्य पुजारी और मुखिया शिकारियों के दल के गाँव के पूर्व में अखाड़ा तैयार करवाते हैं। शिकारियों के स्वागत करने के लिए गाँव का मुख्य पुजारी गाँव के मुख्य द्वार पर उपस्थित होकर स्त्रियों का सम्मान करता है। आदिवासी महिलाओं का यह दल एक गाँव से दूसरे गाँव जाकर यह पर्व मनाती है।

सन्ताल समाज में एक त्योहार मनाया जाता है ‘पहाड़पूजा’। इस पर्व में वन देवता ‘बुरुबोंगा’ को प्रसन्न किया जाता है। सन्तालों में यह मान्यता है कि यदि ‘बुरुबोंगा’ प्रसन्न रहेंगे तो, उनके जंगल हरे-भरे रहेंगे और उनकी खेती ज्यादा होगी।

‘पहाड़ पूजा’ में आदिवासी दिनभर उपवास रखते हैं। पहाड़पूजा के बाद युवक शिकार करते हैं। शाम को सभी स्त्री और पुरुष मिलकर मदिरा पीकर एकसाथ नृत्य करते हैं। स्त्रियाँ नृत्य में पुरुषों का बराबर साथ देती हैं।

मुण्डा आदिवासियों का एक त्योहार है ‘बांधना या सोहराई’। यह पर्व दीपावली के बाद मनाया जाता है। इसमें गायों व भैंसों की पूजा की जाती है। स्त्रियाँ गौशाला की सफाई करके इस पर्व में अपना योगदान देती हैं।

“बांधना के दिन बाघूत भगवान की पूजा की जाती है। बाघूत भगवान को जानवरों का रक्षक समझा जाता है। हालांकि आज मुश्किल से कोई शेर मिलेगा, लेकिन कहा जाता है कि कभी आदिवासियों के ढेर सारे जानवर शेर का शिकार बनते थे। बाघूत ही शेर से उनकी रक्षा करता था। देवता की प्रतिमा के सामने सिंदूर में रंगे कुछ पत्ते रखे जाते हैं और हर किसी को अपनी-अपनी गाय पूजा स्थल पर लाने को कहा जाता है। जो भी गाय सबसे पहले सिंदूरी पत्ते को खाती है, उसे बहुत पवित्र समझा जाता है। उसके सींगों पर तेल और सिंदूर का लेप किया जाता है। लोग इस गाय के मालिक के पास इकट्ठे होते हैं। गाय का मालिक सभी आदिवासियों को दावत देता है।”³⁶

सभी आदिवासी मिलकर रात में ढोल बजाते हुए गौशाला के पास जाते हैं और गायों से संबंधित गीत गाते हैं। गायन मंडली को गायों के मालिक शगुन के रूप में रूपए देते हैं। बाद में इन रूपयों से दावत की जाती है।

इसके बाद महिलाओं की बारी आती है। “दूसरे दिन औरतें गौशाला की सफाई करती हैं। घरों और फर्शों की मिट्टी से लिपाई करती हैं और सफेद रंग की मिट्टी से अल्पना बनाती हैं। इस अवसर पर गाय के खुरों का डिजाइन बनाना बहुत जरूरी होता है। उसके बाद तीन प्रमुख ईष्ट देवताओं-बुडू बोंगा, हारम बूढ़ी और धरम की पूजा की जाती है और एक लाल मुर्गे, एक काली और सफेद मुर्गी की बलि दी जाती है। पूजा के बाद दावत होती है। एक बार फिर औरतें तेल और सिंदूर गायों के

सींगों पर लगाती हैं। फिर गायों को खेतों में ले जाया जाता है। अगले दिन सभी गायों व भैंसों को एक अहाते में रस्सियों से बांधकर, सभी आदिवासी उनके चारों तरफ नाचते गाते हैं।”³⁷

इस प्रकार बांधना का पर्व मनाया जाता है। कुछ आदिवासी बाघूत को नहीं मानते लेकिन वे इस दिन किसी अन्य देवता की पूजा करते हैं। कुछ आदिवासियों में बांधना का पर्व लगातार पांच दिनों तक मनाया जाता है, तो कुछ तीन दिनों तक ही मनाते हैं। जिनके पास गायें नहीं होती वे भी इस उत्सव में शामिल होते हैं।

“सन्ताल समाज में हर मौसम का अपना रंग, राग और त्योहार होता है। सावन में ‘काराम बोंगा’। तो भादो में ‘जानताड़ बोंगा’। आश्विन में ‘दासाँय दाड़ान’ तो कार्तिक में, सोहराई बोंगा। अगहन में ‘सोहराय’, पौष में ‘सकरान्त’। माघ में ‘माघबोंगा’ की पूजा तो फाल्गुन में ‘बाघ बोंगा की पूजा। चैत में ‘रोहनी’ पर्व तो वैशाख में पूजा जाता है ‘एरो बोंगा’। ज्येष्ठ में ‘मुचरी’ के बाद आषाढ़ में पूजा जाता है ‘असाढ़िया बोंगा.....’।”³⁸

संतालों में आषाढ़ में ‘जाहेर आयो’ पर्व मनाया जाता है। बादल देखकर खेतों में बीज बोये जाते हैं। “क्यारियों की मेड़ों पर मिट्टी डालकर आर-किनार पुख्ता किये जाने लगे थे। बड़े-बड़े माटी के ढोकों को लकड़ियों के लम्बे हथौड़ों से तोड़कर भुरभुराने लगी थी स्त्रियाँ सन्ताल स्त्रियाँ हल नहीं चला सकतीं परन्तु निराई-गुड़ाई तो कर ही सकती थीं।”³⁹

सन्ताल आदिवासियों की सबसे बड़ी बुराई है कि वहाँ पर स्त्रियाँ खेतों में हल नहीं चला सकती। इस काम को करने के लिए महिलाओं को पुरुषों पर ही निर्भर रहना पड़ता है। फिर भी संताल स्त्रियाँ पुरुषों के काम में बराबर हाथ बटांती हैं।

‘जाहेर आयो’ पर्व का वर्णन राकेश कुमार सिंह ने ‘जो इतिहास में नहीं है’ उपन्यास में इस प्रकार किया है- “मकोय, चिड़चिड़ी, चकबँड़, खजूर और जंगली बेर की झाड़ियाँ काटने-जलाने में जुट पड़े थे बच्चे ताकि असाढ़िया पूजा सम्पन्न होते ही

खेतों में हल-बैल उतारे जा सकें। जिसके पास जितना बड़ा रकबा, उतना ही अधिक उल्लास। भूमिहीन के लिए बस ललक कि 'जाहेर आयो' उस पर भी सहाय हों तो आने वाले बरस वह भी हल जोड़ सके।”⁴⁰

आषाढ़ में बारिश होते ही खेतों में अंकुर फूट आते हैं। जब तक असाढ़िया पूजा नहीं होती, तब तक सन्ताल घास नहीं काटते हैं। असाढ़िया पूजा में मुर्गे की बलि चढ़ाई जाती है। 'जाहेर धान' (पूजा-स्थल) को लीप कर पूजा की जाती है। गाँव के वृद्ध लोग पूजा करते थे। 'जाहेर आयो' की पूजा के बाद सभी माँदल बजाते हुए नाचते-गाते हैं।

“अश्विन मास में मनाया जाने वाला त्योहार आदिशक्ति 'जाहेर आयो' की बेटियों 'नायन' और 'काजर' की स्मृति में मनाया जाने वाला पर्व था। देवता की उन दो बेटियों ने अत्याचारियों के साथ लोहा लड़ाया था पर दुष्टों के चंगुल से बच नहीं सकी थी।”⁴¹ आदिशक्ति पर्व पर 'जाहेर थान' पर दोनों बहनों की पूजा की जाती है। जो दुर्गा का रूप मानी जाती है।

'करम पूजा' आदिवासियों का एक ओर प्रमुख त्योहार है। यह पर्व भादों के माह में खेती की समृद्धि के लिए मनाया जाता है। औरतें बाँस की डलियों में मिट्टी भरकर उनमें अलग-अलग प्रकार के बीज बोती हैं।

महाश्वेता देवी ने 'करम पूजा' का वर्णन अपनी कहानी 'इतवा मुंडा ने लड़ाई जीती' में इस प्रकार किया है- “अगले दिन करम देवता की पूजा के लिए आंगन को साफ करके बुहारा जाता है। पूरे दिन के उपवास के बाद औरतें अंकुरित बीजों की टोकरियाँ वहां लाती हैं। ढोल बजाते, नाचते-गाते हुए गाँव के स्त्री-पुरुष 'करम' नामक पेड़ की एक टहनी काटने को जाते हैं। इस टहनी को ईश्वर रूप दिया जाता है।”⁴²

“इस टहनी को मिट्टी की वेदी में प्रतिस्थापित किया जाता है। वेदी के चारों ओर औरतें गोल चक्कर बनाकर बैठती हैं, बीच में होता है पुजारी और तब पूजा पूरी

होती है।”⁴³ कथा सुनाते हुए पुजारी स्त्रियों को फूल चढ़ाने के लिए कहता है। कथा खत्म होने पर महिलाएँ अपना व्रत तोड़ती हैं। नाचती गाती हुई ही अपने घरों पर जाती हैं। बाद में पुरुषों का नृत्य शुरू होता है, जिसमें स्त्रियाँ भी भाग लेती हैं।

“करम वृक्ष मर्यादापुरुष के रूप में पूजित है आदिवासी समाज में। करम वृक्ष की पूजा अर्थात् ‘देवता करम देऊ का आह्वान... अच्छी फसल, पशुओं की रक्षा स्वस्थ सन्तान, किशोरों हेतु सुयोग्य जीवनसाथी, सुख, समृद्धि और शान्ति... करमदेऊ पर बहुत-बहुत उत्तरदायित्व है।”⁴⁴

आदिवासियों में ‘सरहुल’ पर्व भी उल्लास के साथ मनाया जाता है। इस पर्व में गाँव की लड़कियाँ शालवृक्षों के नीचे बने पुराने चबूतरे को गोबर-मिट्टी से लीपती हैं। चबूतरे पर लम्बा बाँस गाड़ा जाता है।

‘सरहुल’ पर्व पर आदिवासियों का उत्साह देखते ही बनता है। “वनवासियों के देह पारम्परिक पोशाक और हथियारों से सज्जित हैं। हर कन्धे पर धनुष और तरकश। तरकश में बाण। बाणों की पूँछ में सजे नीलकण्ठ, हंस, हारिल, तीतर या सुग्गे के पंख...। हल्की-हल्की बहती चड़तार बयार में फरफरा रहे हैं तीरों के पंख....।”⁴⁵

“सरना के थान के नीचे है खूब पुरनकट अमलतास का एक वृक्ष। जंगल में सियरलाठी का पेड़ कहलाता है। अमलतास की गहरे कथई रंग की लाठी की तरह लटकती हाथ-हाथ भर की फलियाँ झूलती रहती हैं सो सियरलाठी...। फटे-पुराने निक्कर या भगई के बदले देह पर सस्ते कपड़ों के नये परिधान साजे बच्चे अमलतास पर डोल्ला पाती खेल रहे हैं। बच्चों की हर हरचल से हिलती है पलाश की डाली। वन्दनवार से लटके अमलतास के फूल झड़ने लगते हैं।”⁴⁶ सरहुल पर्व का कितना सरस वर्णन किया गया है।

सरहुल पर्व पर वन में सखुए के वृक्ष की पूजा की जाती है। इस दिन सखुए की डालियों को पूजा जाता है। इस पर्व पर सखुए की डालियों पर फल-फूल और नैवेद्य

चढ़ाए जाते हैं। इस दिन न लकड़ी काटी जाती है न ही दातुन किया जाता है। ऐसा माना जाता है कि पेड़ों को काटने से देवताओं के सारे आशीर्वाद भी कट जाते हैं।

सहरिया आदिवासियों में रक्षाबंधन के दूसरे दिन भोजली का त्योहार मनाया जाता है। इस दिन से सुबह से ही खाने-पीने और लहँगी नृत्य की तैयारियाँ की जाती हैं। स्त्रियाँ दोपहर के बाद नागपंचमी के दिन बोई भोजलियों का सिर पर रखकर गाती-बजाती नदी की ओर जाती हैं। वहाँ पर भोजलियाँ ठंडी की जाती हैं।

भोजली पर्व पर लहँगी नृत्य का अपना महत्त्व है। पुन्नी सिंह ने 'सहराना' उपन्यास में लहँगी नृत्य का वर्णन इस प्रकार किया है- “यह नृत्य घाटी के गाँवों और सहरानों में सावन-भादों में खास तौर से चलता है। 'लहँगी' शब्द शायद लहँगा से बना होगा। इस नृत्य की खास बात यह है कि इसमें नृतकों की संख्या की कोई सीमा नहीं होती। चाहे तो सहराने का पूरा पुरुष वर्ग इसमें सम्मिलित हो सकता है। नर्तक लोग गोल घेरे में खड़े होकर दोनों हाथों में लकड़ी के छोटे-छोटे डंडे लेकर ढोलक और सब्बल की धुन पर कम से कम पंक्तियों वाला लोकगीत गाते हैं और नाचते हैं। ढोलकवाले गोले के अन्दर होते हैं। वहीं पर एक खम्भे से सब्बल झूलती होती है। उसको लोहे के डंडे से ढोलकों की ताल के साथ बजाया जाता है। लहँगी के कई 'स्टैप' इस तरह के होते हैं, जिनमें नर्तकों का घेरा जमीन पर सूखते हुए लहँगे जैसा ही दिखता है, सम्भवतः इसी बात के चलते इस नृत्य का लहँगी नाम पड़ा हो।”⁴⁷

सहरिया आदिवासी भादों की एकादशी को नदी-पूजन करते हैं। इस पर्व में नदियों की पूजा की जाती है। ये बड़े उत्साह से नदी पूजने जाते हैं। पुन्नी सिंह ने 'सहराना' उपन्यास में 'नदी'पूजन' पर्व का रोचक चित्रण किया है। “दिन चढ़ते ही लोग गाजे-बाजे के साथ नदी-पूजन के लिए सहराने से निकले। फगुवा गोटिया थाली में हवन की सामग्री और लोटे में पानी लिये आगे-आगे चला आ रहा था। जगन्नाथ उसके पीछे बलि के बकरे की रस्सी पकड़े जा रहा था। सोमा के गले में बड़ा-सा ढोल था और अनारी के गले में ढोलक। परमू की बगल में ढाँक लटक रही

थी। नदी-पूजन के समय नदी पर सिर्फ पुरुष ही जाते हैं। स्त्रियाँ गाँव में ही गाना-बजाना करती हैं। अंजनी काकी के आँगन में स्त्रियाँ उत्सव मना रही थीं और पुरुष नदी पर जा पहुँचे थे।

नदी पर पहुँचते ही कई क्रियाएँ एक साथ शुरू हुईं।

फगुवा गोटिया ने एक जगह पर पानी छिड़का। बालू को हाथ से चौरस किया और हवन के लिए आम की सूखी लकड़ियाँ जमाने लगा। जगन्नाथ गोटिया कुछ अन्य लोगों की सहायता से बकरे को नदी में नहलाने और बलि के लिए तैयार करने लगा। सोमा अब तक ढेल पीट रहा था, अब बुधा डोकरा के कहने से ढेल अलग रख दिया और ढेलक की रस्सी गले में डालकर लहँगी बजाने लगा। लहँगी के बजते ही लोग उसके चारों ओर दोनों हाथों में डंडे लेकर आ खड़े हुए। बुधा ने लहँगी गाना शुरू किया, तो वे लोग नाचने लगे। उधर एक चिकने चौरस पत्थर पर बकरा काटा जाने लगा। मंगलू के साथ मिलकर फगुवा गोटिया ने हवन शुरू कर दिया। जब हवन शुरू हुआ तो मंगलू तेंदू-पत्ते का दोना बनाकर उसमें बकरे का रक्त ले आया। उसकी कुछ बूँदे हवन को समर्पित कर दीं और दोनों को ले जाकर नदी की बीच धार में बहा दिया। नदी की धार में दोना बह चला, तो कुछ दूरी तक धार पर लाल रेखा बनकर रह गई।

एक ओर गोश्त पकने और आटे की बाटी बनाने की तैयारी चल रही थी। सारे क्रियाकलाप एक लय के साथ चल रहे थे। एक ऐसा मनोयोग जो सहराने की जिन्दगी में यदा-कदा ही देखने को मिलता है, आज नदी तट पर देखा जा सकता था। जब खाना तैयार हो गया तो मनो इधर-उधर बिखरी अनेक क्रियाएँ एक ही क्रिया में समाहित हो गयीं। बिल्लू डोकरा ने कमर तक पानी में घुसकर नदी को पहला ग्रास अर्पण किया और फिर उसके बाद वहाँ जुटे लोग खाद्य और पेय पदार्थों पर दूट पड़े। खाने-पीने के बाद नदी के पेटे में गहरी डकारें उभरने लगीं।⁴⁸ इस पर्व में महिलाएँ गाँव में रहकर ही नाचती-गाती हैं। इसमें प्रमुख कार्य पुरुषों का ही होता है।

आदिवासी स्त्रियाँ खरजितिया का पर्व भी बड़े धूमधाम से मनाती है। यह पर्व माताएँ अपने पुत्र की लम्बी आयु, सुख, स्वास्थ्य और समृद्धि हेतु मनाती है। मूलतः यह त्योहार सादान और गैर आदिवासी समाज का है।

“पुत्र के चिरंजीवी होने की मंगल कामनाओं का व्रत है खरजितिया। इस जीविपुत्रिका व्रत में उपवास की अवधि में, भूल से भी एक तिनका मुँह में चला गया तो फिर इसका कोई प्रायश्चित्त नहीं....। सौभाग्य नष्ट हो जाता है। चौबीस से तीस घण्टे तक का यह निराहार-निर्जल उपवास माताओं के सत्त की परीक्षा है। पर्व समापन के बाद ही एक बूँद जल भी ग्रहण किया जा सकता है। पारण से पहले तिनका या नाखून तक खोंटना वर्जित है।”⁴⁹

इस प्रकार आदिवासियों के सभी पर्वों में महिलाएँ अपना यथा संभव योगदान देती हैं। लेकिन वर्तमान समय में इनके पर्वों का अस्तित्व समाप्त होता जा रहा है। इनके अधिकांश त्योहार वनों से जुड़े होते हैं। बनो का अस्तित्व समाप्त होने से इनके पर्वों की परम्परा का भी धीरे-धीरे क्षरण होता जा रहा है। पर्यावरण के विनाश के साथ ही इनका सांस्कृतिक क्षरण होने लगा है।

धार्मिक विश्वास

धर्म मानव की एक सार्वभौम प्रवृत्ति है। धर्म आदिम समाज से लेकर आधुनिक समाज तक सभी जगह पाया जाता है। सभी समाजों में धर्म की क्रियाविधि अलग-अलग पाई जाती है। आदिवासियों में भी विभिन्न धार्मिक विश्वास प्रचलित हैं। इन धार्मिक विश्वासों को महिलाएँ अधिक मानती हैं। ये मनुष्य के अच्छे-बुरे कर्मों से जुड़े होते हैं। ये अंधविश्वास पर आधारित होते हैं।

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास 'झूलानट' में शीला की सांस चंपादास बैद के पास जाती है और अपनी बहु के लिए पूजा, व्रत आदि के बारे में पूछती है, जिससे उसका बेटा वापस आ जाए। चंपादास बैद कहता है- "बहू से महामाई के मंदिर तक और मंदिर से शिवाले तक ब्रह्म बेला में पेड़ भरवाओ (पेट के बल लेट-लेटकर पहुँचना)। पाँच गाय, तीन कुत्तों की रोटी नित नियम से निकाली जाएँ। तुलसी का चौरा और पीपल का पेड़ ढारे। घर में सुंदर कांड का पाठ करो। साला सुमेर क्या, सुमेर का बाप चला आएगा परलोक से। तप की माया, देवी-देवता का सिंहासन हिला दे, आदमी की क्या विसात?"⁵⁰ इसमें शीलो सभी दुःख सहते हुए सारे व्रत-उपवास रखती है।

माता-पिता के लिए अपनी संतान से बढ़कर कोई नहीं होता। वह अपने बच्चों की तकलीफों को नहीं देख सकते। महाश्वेता देवी के 'जंगल के दावेदार' उपन्यास में एक पुत्र के तबीयत के खराब होने पर उसकी माँ को गाँव का देवता सुझाव देता है- "इसके लिए दरवाजा घेरकर, चौखट के पास कोयले से तसवीर बना। देखना कि बीमारी भाग जाएगी। मेरी पूजा दे। सफेद मुर्गी की बलि देकर पूजा दे।"⁵¹ आदिवासियों में देवी-देवताओं को बलि देकर प्रसन्न किया जाता है। ऐसा माना जाता है कि बलि देने से देवता प्रसन्न होकर बच्चे को जल्दी ठीक कर देते हैं।

अंधविश्वास के चलते भी आदिवासी आज भी इन पर विश्वास करते हैं। मधुकांकरियाँ के उपन्यास 'खुले गगन के लाल सितारे' में नवलकिशोर बाबू बताते

हैं कि- “इस देश में आदिवासी इलाकों में आज भी ढेरों ऐसे लोग हैं जो आँखों की ज्योति के मंद पड़ जाने पर सामर्थ्य होते हुए भी अपना इलाज नहीं करवाते कि भाग्य में इतने ही दिनों तक नेत्र-सुख बदा था।”⁵²

भाग्यवादी होने के कारण भी आदिवासी महिलाएँ किसी की बात नहीं मानती। उनका मानना है कि भाग्य में जो होगा वो तो होकर ही रहेगा।

आदिवासी स्त्रियाँ यह मानती हैं कि अगर चौथ के दिन कुँवारी लड़की उपवास रखकर पूजा करे तो उसकी मनोकामना जरूर पूरी होती है। ‘कोट्टा’ उपन्यास में पीचलु इसी दिन उपवास रखती है, जिससे वह मल्लय्या को एक बार देख सके। “वह मुँह अँधेरे उठकर नदी में स्नान करके झोंपड़ी में आयी। वस्त्र के नाम पर उसने कमर पर केवल ‘नेक्की के पत्ते’ बाँध रखे थे। ‘करुमें लता’ से बुनी डलिया में चावल, केले और गन्ने के साथ जवा, केतकी, किसुगार और सेंवती के फूल भी रखे। उसने पूर्व दिशा की ओर मुँह करके सूर्य को नमस्कार किया। नागसंपिगे के वृक्ष को भी नमस्कार किया। उसने किसी भी मंत्र का जाप नहीं किया। कोई गीत अपने मधुर कंठ से गाया नहीं। व्याध जाति के कप्पण्णा की तरह अपना सब कुछ परमात्मा को अर्पित करते हुए प्रार्थना की, हे भगवान, जीवन में एक बार उनके दर्शन करा दो।”⁵³

नारी का मन कोमल होता है। इस वजह से वह किसी भी धार्मिक विश्वास को तुरंत मान लेती है। जिससे उसकी मनोकामना पूर्ण हो जाए।

बहुत सारे धार्मिक विश्वास विवाह से भी जुड़े होते हैं। जैसे- “लोढा दूलहे को अपनी दुलहन से विवाह करने से पहले आम के पेड़ से शादी करनी होती है। इसी प्रकार लड़कियों को पहले महुआ के पेड़ से शादी करनी पड़ती है।”⁵⁴

आदिवासियों में देवताओं की शरण में जाकर ही बिमारी ठीक की जाती है। देवताओं के कोप से गोटिया या भगत (पुजारी) की सहायता से ही बचा जा सकता है।

गोटिया चाहे से कितने भी भ्रष्ट क्यों न हो। 'सहराना' उपन्यास में नंदराम की औरत के पेट में दर्द होने पर पाखंडी फगुवा गोटिया की शरण में ही जाया जाता है। फगुवा गोटिया के पाखंड का वर्णन पुन्नी सिंह ने इस प्रकार किया है- “जैसा कि सर्वविदित है, इस विशाल भू-भाग पर सदियों से देवताओं का ही एक छत्र राज रहा है। कभी तो उनकी संख्या तैंतीस करोड़ हुआ करती थी और अब वह संख्या अरबों में जरूर जा पहुँची होगी। लेकिन इतने विशाल क्षेत्र में फैले देवताओं की आदतें लगभग एक-जैसी हैं। वे हर दौर में और हर जगह, गरीब-मेहनतकश लोगों को ही अपना कोप भाजन बनाते रहे हैं। उन तक सीधी पहुँच किसी आदमी की नहीं होती। हर जगह गोटिया या भगत की सहायता लेकर ही देवता के कोप से बचा जा सकता है। हर देवता की लगाम किसी न किसी गोटिया के हाथ में है। वह जैसा चाहे वैसा इन देवताओं को नचा सकता है। उनसे चाहे वैसा काम ले सकता है। इन्हीं देवताओं को साधने के कारण उसका सहराने में आतंकपूर्ण सम्मान भी है। यही कारण है कि भगत के बहुत सारे ऐबों पर सहराने का ध्यान ही नहीं जाता।”⁵⁵

फगुवा गोटिया जैसे लोग ही धार्मिक विश्वास के नाम पर भोले-भाले आदिवासियों को अपने जाल में फँसाते हैं। अशिक्षित होने के कारण ये लोग ऐसे लोगों की बातों में आ जाते हैं और अपना नुकसान करवाते हैं।

धार्मिक विश्वास टोने-टोटको से भी जुड़े होते हैं। वीणा सिन्हा के 'सपनों से बाहर' उपन्यास में आदिवासी रूप कुँवर जयदीप से कहती है- “मलगे के गड्ढे में हल्दी और कोयला गाड़ दो तो देवी दाई प्रसन्न हो जाती है। फिर हल्दी-चावल बाँधकर ऊपर लटका दो तो दलिदर नहीं आता।”⁵⁶ ये टोने-टोटके पीढ़ियों से चले आ रहे हैं। और आदिवासी महिलाएँ इन्हें सदियों से मानती आ रही हैं।

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास 'अल्मा कबूतरी' में जंगलिया की मृत्यु पर जो कर्मकाण्ड किये उसका वर्णन देखिये- “कुँआरी लड़की से चबूतरा लिपवाया गया। अगरबत्ती-मोमबत्ती जलाई गई। देवताओं की मढ़िया बनाने के लिए कोरा कपड़ा

थोड़ा उठाकर ताना गया। तब बारी-बारी लोग आते गए। उन्हें काँती (बलि का बकरा काटने वाला चकू) पकड़ाई जाती। वे देवी के कबूतरे पर कट्टस (X) का निशान बनाते। पवित्र मंत्र की तरह सबने बोला-कौल, जंगलिया का मरण नहीं हुआ। कबूतरा कभी नहीं मरता। रानी पद्मिनी का संतान खत्म नहीं होती। कुनबी मरकर भी नहीं मरते।⁵⁷

बूंदेलखण्ड के कबूतरा आदिवासियों में स्त्रियों की पवित्रता के लिए परीक्षा ली जाती है 'जल परीक्षा'। "पुराने समय से चली आ रही रिवाजों के हिसाब से लोग गहरे तालाब के किनारे जुड़ते हैं रात के समय। जल-परीक्षा लेने वाला आदमी ताल की दूसरी ओर पत्थर फेंकेगा। जहाँ पत्थर गिरे, वहाँ लाल कपड़े के रूप में औरत की जिंदगी रख दी जाती है। सजायाफ़्ता औरत को तब तक पानी में डूबा रहना पड़ेगा, जब तक कि सामने के छोर पर तैनात आदमी जल परीक्षक को वह लाल कपड़ा उठाकर न दे दे। उतनी दूर आना और जाना....साँसों से साँसों तक की दूरी। जिंदगी और मौत का दौंव। प्राणों को डुबाकर भी स्त्री बच जाए तो उसका भाग्य। उसकी पवित्रता का सबूत।"⁵⁸

अधिकांश धार्मिक विश्वासों में स्त्री को ही निशाना बनाया जाता है। उसी को परीक्षा देनी होती है। जिससे उसकी पवित्रता साबित हो सके। ऐसी प्रथाओं पर रोक लगनी चाहिए। जिससे महिलाओं को आजादी मिले। वो आजाद होकर इस समाज में रह सके।

आदिवासियों के सारे धार्मिक विश्वास अंधविश्वास के कारण हैं। दुनिया इतनी आगे बढ़ रही है लेकिन इनके समाज में अब भी अंधश्रद्धा के कारण ऐसी बातें मानी जाती हैं, जिसका कोई तर्क नहीं होता। बड़े-बूढ़े ने जो बात कह दी वह बातें इनको माननी होती है।

संजीव के उपन्यास 'जंगल जहाँ शुरु होता है' में दुलारी को साँप के काटने पर उसकी मृत्यु हो जाती है, जिस कारण से न उसे जलाया जा सकता था न, गाड़ा जा सकता था। ऐसा माना जाता है कि साँप के काँटने पर पानी में प्रवाहित करने पर मुर्दा

जी उठता है। संजीव के शब्दों में “साँप की डँसी थी दुलारी धीया। न जलाई जा सकती थी, न गाड़ी। बड़े-बूढ़े जो कहते हैं वही करना होता है। बनकटा गाँव के बड़े-बूढ़ों की राय है कि लाश को परवाह (प्रवाहित) कर दिया जाए। कई बार तो गंगा मइया खुद ही खींच लेती है विष और मुर्दा जी उठता है।”⁶⁰

झारखण्ड के आदिवासी समाज में महिलाएँ अपने बच्चों को बुरी नजर से बचाने के लिए ओझा से बाघ की नाखूनों की बीस हड्डियों पर मंत्र पढ़वाकर गले में बाँधा जाता है। ऐसा माना जाता है कि ऐसा करने से बच्चों पर बुरी आत्मा का असर नहीं होता।

आदिवासी महिलाएँ अपने जीवन को सुखी बनाने के लिए ओझा के पास भी जाती हैं। जिससे घर-परिवार में सुख-समृद्धि आ जाए। परन्तु ये ओझा भी अपना उल्लू सीधा करने वाले होते हैं। ये सीधी-सादी स्त्रियों को खूब लूटते हैं और उनका देह शोषण करते हैं। स्त्रियाँ समाज के डर से कुछ कहती नहीं हैं। इससे इन अंधविश्वासों को ओर बढ़ावा मिलता है।

राकेश कुमार सिंह के ‘पठार के कोहरा’ उपन्यास में सोनारा की मां रंगेनी सोनारा को बुखार आने पर टोना-टोटका करती है, जिससे वो जल्दी ठीक हो जाए। “रंगेनी ने कुछ बूटियाँ हड़तोड़वा घास के साथ पीसकर घाव पर पुल्टिस बाँधी। पट्टी करने के बाद लाल मिर्च, सरसों, आजवायन, थोड़ी रेत और हल्दी की गाँठ के मिश्रण से सोनारा को ओंइछ दिया। नजर उतारने का देहाती टोटका....। ओंइछन को सुलगते गोइंटे में जलाकर ही निश्चिन्त हुआ मन। बुरी नजर जल गयी।”⁶⁰

एक माँ ही होती है जो अपने बच्चों को जरा सा कुछ हो जाने पर चिंतित हो जाती है। जिसके लिए वो न जाने क्या-क्या टोने-टोटके करती है। जिससे उसके बच्चे को बुरी नजर न लगे।

इन धार्मिक विश्वासों में एक आस्था छिपी होती है। आदिवासी महिलाएँ अशिक्षित होने के कारण इन कर्म-काण्डों पर ज्यादा विश्वास करती हैं। शिक्षा के माध्यम से इन अंधविश्वासों को समाप्त किया जा सकता है।

सारांश

स्त्री अपने सम्पूर्ण जीवन में बहुत सारे रिश्ते निभाती है और उनका सम्मान करती है। स्त्री के अंदर ही इतनी क्षमता होती है जो सभी रिश्तों का मान रखती हुई अपने जीवन में आगे बढ़ती है। लोकगीतों और लोककथाओं की परम्परा को आगे बढ़ाने में स्त्रियों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जीवन के विभिन्न पक्षों की सरल तथा स्वाभाविक अभिव्यक्ति महिला द्वारा गाए लोग गीतों में ही होती है। लोकपर्व आदिवासियों की पहचान है। कोई भी पर्व स्त्री के बिना अधूरा होता है। वे इसमें बढ़-चढ़कर हिस्सा लेती हैं। इनके अधिकांश त्योहार वनों से जुड़े होते हैं। वनों का अस्तित्व समाप्त होने से इनके पर्वों की परम्परा का भी धीरे-धीरे क्षरण होता जा रहा है। पर्यावरण के विनाश के साथ ही इनका सांस्कृतिक क्षरण होने लगा है।



संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. रमणिका गुप्ता : बहू-जुठाई-शिल्पायन, पृ.सं.-97
2. पुन्नी सिंह : सहराना-ग्रंथकेतन, पृ.सं.-182
3. वही, पृ.सं.-5
4. एम. वीरप्पा मोयिली : कोट्टा-भारतीय ज्ञानपीठ, पृ.सं.-75
5. मैत्रेयी पुष्पा : अल्मा कबूतरी-राजकमल प्रकाशन, पृ.सं.-242
6. वही, पृ.सं.-256
7. महाश्वेता देवी : जंगल के दावेदार-राधाकृष्ण पैपरबेक्स, पृ.सं.-102
8. मैत्रेयी पुष्पा : झूलानट-राजकमल प्रकाशन, पृ.सं.-30
9. वही, पृ.सं.-43
10. डॉ. बापू रावदेसाई : लोक साहित्य-विनय प्रकाशन, पृ.सं.-75
11. वही, पृ.सं.-75
12. महाश्वेता देवी, इतवा मुंडा ने लड़ाई जीती-नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, पृ.सं.-44
13. राकेश कुमार सिंह : पठार पर कोहरा-भारतीय ज्ञानपीठ, पृ.सं.-199
14. राकेश कुमार सिंह : जो इतिहास में नहीं है-भारतीय ज्ञानपीठ, पृ.सं.-33
15. रमणिका गुप्ता : युद्धरत आम आदमी, रमणिका गुप्ता मुद्रक, नई दिल्ली, पृ.सं.-44
16. मैत्रेयी पुष्पा : अल्मा कबूतरी, राजकमल प्रकाशन, पृ.सं.-42
17. वही, पृ.सं.-44
18. रमणिका गुप्ता : युद्धरत आम आदमी, रमणिका गुप्ता मुद्रक, नई दिल्ली, पृ.सं.-44
19. पुन्नी सिंह : सहराना-ग्रंथकेतन, पृ.सं.-59
20. राकेश कुमार सिंह : पठार पर कोहरा-भारतीय ज्ञानपीठ, पृ.सं.-224
21. वही, पृ.सं.-224

22. सं. रमणिका गुप्ता : आदिवासी स्वर और नई शताब्दी-वाणी प्रकाशन,
पृ.सं.-115
23. सं. रमणिका गुप्ता : आदिवासी स्वर और नई शताब्दी-वाणी प्रकाशन,
पृ.सं.-116
24. सं. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा : हिंदी साहित्य कोश-ज्ञानमण्डल लिमिटेड, पृ.सं.-591
25. डॉ. बापू राव देसाई : लोक साहित्य-विनय प्रकाशन, पृ.सं.-109
26. वही, पृ.सं.-110
27. राकेश कुमार सिंह : पठार पर कोहरा-भारतीय ज्ञानपीठ, पृ.सं.-234
28. राकेश कुमार सिंह : जो इतिहास में नहीं है-भारतीय ज्ञानपीठ, पृ.सं.-88
29. डॉ. रामनाथ शर्मा, डॉ. राजेन्द्र कुमार शर्मा : मानवशास्त्र-एटलांटिक पब्लिशर्स
एण्ड डिस्ट्री ब्यूटर्स, पृ.सं.-409
30. सं. रमणिका गुप्ता : आदिवासी स्वर और नई शताब्दी-वाणी प्रकाशन,
पृ.सं. 300
31. रमणिका गुप्ता : युद्धरत आम आदमी-रमणिका गुप्ता मुद्रक नई दिल्ली,
पृ.सं.-48
32. सं. रमणिका गुप्ता : आदिवासी स्वर और नई शताब्दी-वाणी प्रकाशन,
पृ.सं.-299
33. राकेश कुमार सिंह : जो इतिहास में नहीं है-भारतीय ज्ञानपीठ, पृ.सं.-408
34. एम. वीरप्पा मोयिली : कोट्टा-भारतीय ज्ञानपीठ, पृ.सं.-230
35. राकेश कुमार सिंह : पठार पर कोहरा-भारतीय ज्ञानपीठ, पृ.सं.-65
36. महाश्वेता देवी : इतवा मुंडा ने लड़ाई जीती-नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया,
पृ.सं.-16
37. वही, पृ.सं.-17
38. राकेश कुमार सिंह : जो इतिहास में नहीं है-भारतीय ज्ञानपीठ, पृ.सं.-114
39. वही, पृ.सं.-114
40. वही, पृ.सं.-114

41. वही, पृ.सं.-119
42. महाश्वेता देवी : इतवा मुंडा ने लड़ाई जीती-नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, पृ.सं.-22
43. वही, पृ.सं.-23
44. राकेश कुमार सिंह : पठार पर कोहरा-भारतीय ज्ञानपीठ, पृ.सं.-222
45. वही, पृ.सं.-199
46. वही, पृ.सं.-199
47. पुन्नी सिंह : सहराना-ग्रंथकेतन, पृ.सं.-54
48. वही, पृ.सं.-104
49. राकेश कुमार सिंह : पठार पर कोहरा-भारतीय ज्ञानपीठ, पृ.सं.-229
50. मैत्रेयी पुष्पा : झूलानट-राजकमल प्रकाशन, पृ.सं.-42
51. महाश्वेता देवी : जंगल के दावेदार-राधाकृष्ण पेपरबैक्स, पृ.सं.-49
52. मधु कांकरिया : खुले गगन के लाल सितारे-किताबघर प्रकाशन, पृ.सं.-63
53. एम. वीरप्पा मोयिलि : कोट्टा-भारतीय ज्ञानपीठ, पृ.सं.-66
54. महाश्वेता देवी : इतवा मुंडा ने लड़ाई जीती-नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, पृ.सं.-41
55. पुन्नी सिंह : सहराना-ग्रंथकेतन, पृ.सं.-52
56. वीणा सिन्हा : सपनों से बाहर-मेधा बुक्स, पृ.सं.-192
57. मैत्रेयी पुष्पा : अल्मा कबूतरी-राजकमल प्रकाशन, पृ.सं.-26
58. वही, पृ.सं.-76
59. संजीव : जंगल जहाँ शुरु होता है-राधाकृष्ण पेपर बैक्स, पृ.सं.-22
60. राकेश कुमार सिंह : पठार पर कोहरा-भारतीय ज्ञानपीठ, पृ.सं.-146

चतुर्थ अध्याय
आदिवासी नारी के बदलते आयाम

1. भूमिका
2. आधुनिकता का प्रभाव
3. शिक्षा का प्रभाव
4. आदिवासी कल्याण परिषद जैसी स्वयंसेवी संस्थाओं का प्रभाव
5. सरकारी प्रयास
- (i) रोजगार का प्रभाव
- (ii) भविष्य की दिशाएँ
6. सारांश

अध्याय चतुर्थ

आदिवासी नारी के बदलते आयाम

भूमिका

आधुनिक वैज्ञानिक और तकनीकी विकास के परिणाम स्वरूप आये परिवर्तनों से आदिवासी स्त्री भी वंचित नहीं रही है। बदलते समय में आदिवासी महिला में भी बदलाव आया है। शिक्षा के प्रचार के कारण देश और समाज में आये नवीन परिवर्तनों ने आदिवासी नारी की जीवन शैली और जीवन दृष्टि को सर्वथा नवीन आयाम प्रदान किया है। प्रस्तुत अध्याय में आदिवासी नारी पर बदलते समय में जो प्रभाव हुआ है, उसका चित्रण किया गया है।

आधुनिकता का प्रभाव

नारी सृष्टि का आधार मानी जाती है। किसी भी देश की आधी आबादी स्त्री है। यदि देश की आधी आबादी अर्थात् स्त्री को घर की चार दीवारी के अंदर बंद कर दिया जाएगा तो देश की प्रगति भी आधी ही रह जाएगी। स्त्री के बिना राष्ट्र की उन्नति संभव नहीं है। जिस राष्ट्र में उसके स्वाभिमान की रक्षा नहीं होगी, वहाँ उन्नति नहीं होगी।

स्त्री का केवल स्वतंत्र होकर निर्णय लेना या आर्थिक रूप से स्वतंत्र हो जाना ही उसकी अस्मिता नहीं है। स्त्री अस्मिता का अर्थ है स्त्री के प्रति समाज के दृष्टिकोण और मानसिकता में बदलाव, जिसमें स्त्री का स्वयं का दृष्टिकोण भी शामिल हो। धीरे-धीरे इनमें बदलाव आ रहा है। आधुनिकता का प्रभाव स्त्री पर भी दिखाई देने लगा है।

आदिवासी महिलाएँ अब अपने अधिकार पहचानने लगी हैं। वह किसी से भी छगना नहीं चाहती। वह अपना हक चाहती है। अब वह मजदूरी करने भी जाती है तो निडर होकर। रमणिका गुप्ता के कहानी संग्रह 'बहू-जुठई' की परबतिया भी अब किसी से नहीं डरती। "मजदूर उसकी बहादुरी का लोहा मानने लगे थे। अब वह मजदूरों के मामले लेकर प्रायः हर रोज ठीकेदार बाबू से भी झगड़ने लगी थी। मजदूरों ने परबतिया को अपना लीडर चुन लिया। उन दिनों ठीकेदारों के खिलाफ केदला में हड़तालों का जोर था। यूनियन के साझा नेतृत्व में मजदूर, लठैतो-पहलवानों का मुकाबला करते हुए कुछ कर गुजरने पर उतारु थे। वे ईंट का जवाब पत्थर से देने के लिए तैयार थे। परबतिया इन सब में सबसे आगे रहती थी। वह मर्दों के दंगल की सरदारिन बन गई और यूनियन में अपनी पोखरी की प्रतिनिधि।"¹

आदिवासी नारी घर की चार दिवारी में बंद नहीं रहती। वह पुरुषों के बराबर काम करती है। आधुनिक समय में आदिवासी स्त्री हर क्षेत्र में कार्य कर रही है। जैसे परबतिया सबकी सरदारिन बन गई थी।

आदिवासी नारी समाज के बंधनों में बँधी रहती है। रमणिका गुप्ता के 'सीता-मौसी' उपन्यास में सीता के बारे में आया है- "सीता के गाँव वाले सब रुष्ट हो गए। उन्होंने आदिवासी तरीके से बिरादरी बुलाकर उसे मरा घोषित कर, भोज-भात कर लिया। सीता मुक्त हो गई बिरादरी से भी, पहले पति से भी और पुरानी रुढ़ियों के बंधन से भी। वह अब खटती थी।"²

सीता जैसी स्त्री अभी भी समाज के अत्याचार का शिकार हो रही है। उसका पति दूसरी शादी करके कहीं और चला गया है। उससे सीता को एक बच्चा है। पहला पति तो अपनी जिम्मेदारी से मुँह मोड़ उसे छोड़कर चला गया। ऐसे में सीता एक मुसलमान यासीन से विवाह कर लेती है। जो उसके बच्चे की जिम्मेदारी भी उठाता है। आदिवासी महिला को समाज की परवाह किये बिना आगे बढ़ना होगा। समाज के पुराने बंधनों से आजाद होना होगा। तभी वो चैन से जी सकती है।

पुन्नी सिंह के 'सहराना' उपन्यास में सोमा की माँ अंजनी काकी सोचती है कि उसके जमाने में शादी-ब्याह की बातें बड़े ही करते थे। लेकिन अब जमाना बदल गया है। बच्चे अपनी पसंद से विवाह करने लगे हैं। सोमा जब चंपा से विवाह करने के बारे में कहता है तो अंजनी काकी सोचती है- "उसके जमाने में तो शादी-ब्याह की बातों को लेकर मोड़ा-मोड़ी नहीं खोलते थे। सही में अब जमाना बदल गया है।"³

अब समय बदल रहा है। लोगों की सोच बदल रही है। आदिवासी महिलाओं के प्रति लोगों का नजरिया बदल रहा है। मधु कांकरिया के 'खुले गगन के लाल सितारे' में मणि इंद्र की बातों के बारे में सोचती है- "बड़े-बड़े शहरों में जो दिखता है उसे ही सच मानकर नहीं बैठ जाओ....अब समय बदल रहा है। लोगों का सोच बदल रहा है....आने वाले समय में तुम देखना, खेतों में पसीना बहानी एवं जीवन की लड़ाई स्त्रियाँ ही सुन्दर कहलाएँगी। सुंदर वह हर कोई जो अपने श्रम, ऊर्जा से और आत्मिक सौंदर्य से दूसरों के संसार को भी सुंदर बनाए।"⁴

जैसे-जैसे समय आगे बढ़ रहा है, लोगों की सोच में भी परिवर्तन आता जा रहा है। आदिवासी नारियों पर इसका प्रभाव विशेषकर हो रहा है। जो काम उन्हें अच्छे नहीं लगते थे, वही काम, अब वे बड़े चाँव से करती हैं।

आदिवासी समाज में लड़कियों के जन्म पर खुशियाँ नहीं मनाई जाती हैं। लड़का-लड़की में फर्क किया जाता है। लेकिन पुन्नी सिंह के 'सहराना' उपन्यास की अंजनी काकी एक शहरी सरदारिन के सम्पर्क में आकर अपनी सोच को बदल लेती हैं और अपनी पोती के जन्म पर खुशियाँ मनाती हैं। पुन्नी सिंह ने इसका रोचक वर्णन किया है- "अंजनी काकी ने सहराने की लीक तोड़ दी थी। सहराने में पहली बार किसी लड़की के भये पर ढपला बजा था। इस काम के लिए सहराने के बूढ़ों ने जहाँ अंजनी काकी का दबे स्वर में विरोध किया, वहीं कुछ महिलाओं ने काकी के इस काम को सराहा भी। चंपा को यह देखकर कि उसकी लड़की के पैदा होने पर ऐसी खुशी मनाई जा रही है, बेहद खुशी हुई थी। काकी के प्रति उसका आदरभाव सवाया हो चला था।"⁵

“काकी के मन में लड़कियों के प्रति ऐसे उदार विचार हमेशा से नहीं थे अभी कुछ साल से घाटी में एक अन्य दबंग महिला से उसका सम्पर्क हुआ था। वह महिला है सरदार लहनासिंह की माँ। उसको सब लोग प्यार से मम्मी कहते हैं। मम्मी का आना-जाना इधर के सहारानों में अकसर होता है। नये सहाराने में वे ज्यादा आती हैं। तब वे आती है तब उनके साथ एक-दो उनकी नातिनें भी रही हैं। वे लड़कियाँ अपनी दादी के साथ जिस तरह से खुश रहती हैं और दादी उनके साथ जिस तरह से स्नेहपूर्ण व्यवहार करती है, वह इधर घाटी की जिन्दगी में दुर्लभ है। मम्मी और उनकी नातिनों को जो भी देखता है उसे प्रेरणा जरूर मिलती है। उसी से काकी के विचार बदले हैं।”⁶

शहरी लोगों का प्रभाव आदिवासी स्त्रियों पर ज्यादा हुआ है। जिस प्रकार अंजनी काकी एक शहरी महिला के सम्पर्क में आने से अपने विचारों में परिवर्तन कर लेती है। उसी प्रकार अन्य स्त्रियों पर भी इसका प्रभाव हुआ है।

शहरियों के सम्पर्क में आने पर पुरुषों की सोच में स्त्रियों को लेकर बदलाव आया है। रमणिका गुप्ता के ‘बहू-जुठाई’ कहानी संग्रह में संकलित कहानी ‘जिरवा और जिरवा-माय’ में जिरवा-माय का पति उसे छोड़कर शहर चला जाता है। शहर में दर-दर की ठोकरे खाने के बाद वह लौट आता है, परन्तु इस बार स्त्रियों को लेकर उसका सोच में परिवर्तन आ जाता है।

रमणिका गुप्ता ने इसका वर्णन इस प्रकार किया है- “जिरवा-माय का पति, जिसे अपने गाँव और समाज से विरासत में औरत को देखने का सामंती नजरिया मिला था, समाज के उस पक्ष को भूल चुका था जो ऐसे मामले में औरत के प्रति उदार था, जिससे उसका नजरिया अत्यधिक संकीर्ण हो गया था। ग्रामीण समाज में, परदेस में रहने वाले पतियों की औरतों के लिए दी जाने वाली छूट और ढीले नियम अब उसे गँवारु लगने लगे थे। अब वह मध्यमवर्गीय छद्म अहम् के कारण शर्म से सिर गड़ाए बैठा था।”⁷

वर्तमान समय में सांस्कृतिक विखण्डन हो रहा है। आदिवासी स्त्रियाँ शहरी महिलाओं के सम्पर्क में आने पर उनका जैसा बर्ताव करने लगती है। शहरी सभ्यता को अपनाने लगी है। मैत्रेयी पुष्पा के 'झूलानट' उपन्यास में शीलो की सास शहरी महिलाओं पर क्रोध करते हुए बोलती ही है- "इस गाँव में भी शहरी औरतों ने आ-आकर बवाल मचा दिया है। नहीं तो हमारे घर कलह होती? आग लगे, मैं भी होड़ कर बैठी। काए-काए की होड़-सेंग करूँगी? वे तो अपने आदमियों का नाम लेकर ऐसे बुलाती हैं, जैसे किसी बच्चा को टेर रही हों।"⁸ एक आदिवासी नारी को ऐसा कहना अटपटा जरूर लगता होगा, लेकिन धीरे-धीरे आधुनिकता का प्रभाव उस पर भी हो रहा है।

आदिवासी स्त्रियाँ अब खेत-खलिहानों से निकलकर फैक्ट्रियों में काम करने लगी है। फैक्ट्रियों में काम में आगे होने के साथ-साथ वह आन्दोलनों में भी भाग लेने लगी है। रमणिका गुप्ता के 'सीता-मौसी' उपन्यास में सीता एक ऐसा ही पात्र है। "सीता यूनियन के हर कार्यक्रम में आगे रहने लगी थी और सरकारीकरण के आंदोलन के समय और बाद में भी वह ग्रामीणों और बचे हुए मजदूरों के रोजगार की लड़ाई में लीडर बन गई थी। आंदोलन के दौरान वह और सरस्वतिया दोनों ही जेल हो आई थी। झंडा लेकर आगे चलना हो, पुलिस का मुकाबला करना हो या ठेकेदारों को 'गरियाना' (गाली देना) हो तो सीता आगे रहती थी और तो और, खदान में भी अरखे की नापी में गड़बड़ी हो, काम का अरखा (कार्यस्थल) देने का विवाद हो या कमनी (कमाई) के बँटवारे की लड़ाई हो-सीता ने सभी मामले सुलटाने और सुलझाने की क्षमता हासिल कर ली थी। पुलिस से मुकाबला करने की उसकी हिम्मत ने उसे आदर का पात्र बना दिया था। उसका रुआब स्टाफ मुंशी और ठेकेदारों पर भी था। अब सरकारी मैनेजर भी उससे भय खाते थे।"⁹

आज हर आदिवासी स्त्री को सीता जैसा बनना पड़ेगा। उसे अपने अधिकारों की लड़ाई स्वयं लड़नी होगी। स्वयं अपने अधिकारों के बारे में सचेत होना पड़ेगा। तभी जाकर इन महिलाओं की दशा सुधरेगी।

रमणिका गुप्ता के 'सीता-मौसी' उपन्यास में सीता के पुत्र जन्म पर उसका आदिवासी नाम वर्ष, दिन या महीने पर न रखकर शहरी नाम सुनील रखा। आधुनिक समाज का प्रभाव अब इनके जन-जीवन पर भी हो रहा है। इनमें भी अब जागृति आने लगी है। वो समय अब दूर नहीं, जब इन नारियों के जीवन में भी पूरा सवेरा होगा।

आदिवासी जंगलों में निवास करते हैं। अब इन जंगलों पर पूँजीपतियों की आँखें जम गई हैं। इन दीकुओं के प्रवेश से आदिवासियों सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन होने लगे हैं। इनके सम्पर्क में आने से आदिवासी अपनी मौलिकता खोते जा रहे हैं। इनके रीति-रिवाजों और संस्कारों का अब घालमेल शुरू हो गया है।

आदिवासी महिलाओं का एक बड़ा वर्ग पलायन करने को विवश है। ये दिल्ली, मुम्बई, कलकत्ता जैसे महानगरों में दाई, आया का काम करती हैं। ईंट भट्टों में मजदूरी करती हैं। इन जगहों पर इनका शारीरिक और मानसिक शोषण होता है।

रमणिका गुप्ता ने सीता-मौसी उपन्यास में राँची की आदिवासी महिला के शोषण का वर्णन बेबाकी से किया है। "राँची की आदिवासी महिलाएँ प्रायः अकेले ही काम करने आती थीं। छैलों का यह दल झारखंडी नेता सन्त के नेतृत्व में बाहरी-भीतरी का सवाल उठाकर, इन महिलाओं का काफी भयदोहन और शोषण करता था। एक दहशत-सी फैल गई थी कोलियरी क्षेत्र में खासकर औरतों और प्रेमी युगलों में। ये नेतागण औरतों व लड़कियों को बदमाश व बदचलन कहकर, उनका शोषण गाहे-बगाहे स्वयं भी कर लेते थे। इस क्षेत्र के स्थानीय लोगों के लिए यह एकदम नया हथियार था। कोलियरी में ठेकेदारों, पहलवानों की दादागीरी चलती थी; अपराधियों और सूदखोरों की पठानगीरी भी प्रचलित थी, अपराधियों और सूदखोरों की पठानगीरी भी प्रचलित थी, पर भयादोहन से लोग अनजान थे। कोलियरियाँ सरकारी होने के बाद वही ठेकेदार, पैटी ठेकेदार और पहलवान या तो कोलियरियों में मुंशी, सुपरवाइजन नौकरियों में घुस गए या हाजिरीबाबू की। इन्होंने मजदूर-जमात का अलग तरीके से

शोषण कर दिया। सूदखोरी, दारु की भट्टी, पुलिस और बंदूक का भय दिखाकर, ये नेता के रूप में उभरने लगे। त्राता का चोला-पर रंगदारी की प्रक्रिया, जिसे अपना कर वे कभी जबरन सूद, कभी चंदा वसूलने लगे।”¹⁰

जब तक पुरुष वर्ग आदिवासी महिलाओं को मनुष्य नहीं समझेगा तब तक उनका शारीरिक व मानसिक शोषण होता रहेगा। आदिवासी नारी को लड़ना होगा अपने अस्तित्व व अस्मिता की रक्षा के लिए अपनी जमात के लिए अपने समाज के लिए उसे आगे बढ़ना होगा संकीर्ण सोच से।

स्त्री चाहे किसी भी वर्ग या वर्ण की हो। कैसी भी धार्मिक, सामाजिक स्थिति की हैसियत वाली हो, उसे अपना फैसला करने का हक देना, समाज अपनी तौहीन मानता है। मध्यम वर्ग की महिलाओं में यह सब कुछ सामाजिक सुरक्षा के नाम पर होता है, तो उच्च वर्ग की महिलाओं में सुरक्षा के साथ-साथ अहम्, आन-बान, वंश, संस्कार और प्रतिष्ठा के नाम पर होता है। आदिवासी नारियों में आर्थिक परिस्थितियाँ उनकी मजबूरी होती है।

एक आदिवासी स्त्री जानती है कि उसकी आर्थिक हालात जब तक नहीं बदलेंगे जब तक उनमें शिक्षा का विकास नहीं होगा। रमणिका गुप्ता के ‘सीता-मौसी’ उपन्यास में मौसी अपने भाई के बेटे के लिए सोचती है- “फुआ का सपना था, मोहना पढ़-लिखकर खूब बड़ा आदमी बने। पुलिस का हवलदार नहीं तो कोलिया का मुंशी या ठेकेदार जरूर बने! खेत में नहीं खटेगा मेरा मोहना। खेत हमनी के पेट भी तो नहीं भर सकता है। न ही पढ़ाई का खर्च दे सकता है। महुआ चुनकर, सखुआ बीनकर, कुसुम-फूल सिझाकर, कैसे सालो भर पेट भरतै ? अब महुआ-सखुआ पर भी तो बहुतों की नजर लगी रहत है। सिपाही से लेकर मुखिया, नेता, रंगदार सभी का हिस्सा देवे पड़त है। खेती करे पर भी तो नहीं पुरात। तब भी हजारी बाग आकर खटे के पड़ ही जात है। तब ‘काहे ले करेंगे’ अब खेती ? ‘कुछे’ नहीं धरा इस खेती में। मूली, टमाटर उगाओं-दस कोस शहर में बेचे जाओ, तब भी दस रुपया बैलगाड़ी उठा

लेता है व्योपारी। बेचारी झुमरा वाली तो चुरचू पहाड़ से आउती है। चार आना किलो टमाटर का भी नहीं मिलता। मेहनत, खाद, बीज, पानी भी तो लौटत न है। क्या जरूरत है ऐसी खेती करे के? इससे अच्छा है कोलियरी में जाके कहीं कोई काम धर ले।”¹¹

इन महिलाओं को अब ये समझ में आने लगा है कि शिक्षा के अभाव में ये आगे नहीं बढ़ सकती। इसलिए अब ये अपने बच्चों को पढ़ने के लिए शहर भेजने लगी है। जिससे आने वाले समय में इनको परेशानियों का सामना न करना पड़े। जमाने के बदलने के साथ-साथ इनमें भी परिवर्तन होने लगे है।

गैर आदिवासियों ने इनके उद्योग, व्यापार, संचार और शिक्षा माध्यमों पर प्रभुत्व कायम कर लिया है। सभ्य समाज के लोग इन्हीं आदिवासी महिलाओं के चित्र बनाते हैं और उन्हें ऊँचे दामों में प्रदर्शनियों में बेच देते है। इसके लिए जागरूक इन्हें ही होना पड़ेगा।

रमणिका गुप्ता के ‘बहू-जूठाई’ कहानी संग्रह में प्यारी मैनेजर से कहती है—
“पचास फिट से ज्यादा दुलाई नहीं करेंगे, ज्यादा कहोगे तो जहाँ पचास फिर खत्म होगा वहीं कोयला या माटी-पाथर बीग (फेंक) देंगे। मनीजर साब यदि वहाँ तुम खड़ा रहेगा तो तुमरे ई सिर पर बीग देंगे सब माल।”¹²

प्यारी जैसी हिम्मत और होसला सभी आदिवासी स्त्रियों में होनी चाहिये। जिससे मैनेजर जैसे लोग उनका शोषण न कर सके। अब सोचने की जरूरत है कि अब पहले की तरह कुछ चलने वाला नहीं है। पहले जमाने ने इनको बदला था लेकिन अब इन नारियों को जमाने को बदलना होगा।

आदिवासी स्त्रियों को अपने हक की लड़ाई अकेले लड़नी होगी। कोई उन्हें राह नहीं दिखाएगा, उन्हें स्वयं अपनी राह बनानी होगी। अकेले साहस करना होगा अपनी पहचान बनाने के लिए।

रमणिका गुप्ता के 'सीता-मौसी' उपन्यास में सीता समय के साथ चलती है और अपने उद्देश्यों को पहचानती है। रमणिका गुप्ता ने सीता का वर्णन इस प्रकार किया है- "सीता लड़ती है, झुकती नहीं है। वह नहीं जानती उद्देश्य क्या होता है, लक्ष्य क्या होता है? पर वह जानती है, उसे दूसरों की खातिर लड़ना है। एकता करनी है-संगठन बनाना है।"¹³

इसी तरह एक स्त्री को आगे बढ़ना है। अपनी जमात में एकता लानी है। संगठित होकर अपनी लड़ाई लड़नी है। तभी उन्हें सम्मान मिलेगा। जिसकी वे हकदार हैं।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष में पहुँचते हैं कि आदिवासी नारियों पर भी आधुनिकता का प्रभाव हो रहा है। वे हर क्षेत्र में अपने कदम बढ़ा रही हैं। अब देखना ये है कि वे अपने को शोषित होने से कैसे बचाती हैं और बिना किसी की परवाह किये बगैर अपने को सक्षम करती हैं।

शिक्षा का प्रभाव

आदिवासी समाज शुरु से ही अंधविश्वासों में जकड़ा हुआ है। इसका प्रमुख कारण है अशिक्षा। इनमें कुरीतियाँ, उनका शोषण, अज्ञानता इसी अशिक्षा के कारण है।

समय के साथ-साथ इनमें भी जागृति आई है। अब ये भी पढ़ने लगे हैं। स्त्री-शिक्षा के क्षेत्र में वृद्धि तो हुई है, लेकिन वह इतनी नहीं हुई की उन्हें जागृत किया जा सके। आदिवासी महिलाएँ बहुत कम शिक्षित हैं। इनको ये बात समझनी होगी कि जिस समाज में महिलाएँ जितनी साक्षर होगी, वह समाज उतनी ही ज्यादा प्रगति करेगा।

शिक्षा के अभाव के कारण ये स्त्रियाँ सशक्त नहीं हो पाएगी। आदिवासी समाज में लड़कियों को पढ़ाने की उपेक्षा की जाती है। लड़की को ये इसलिए पढ़ाना नहीं चाहते कि ये पराये घर जाकर चूल्हा फूँकेगी। लेकिन अब समय बदल गया है। आदिवासियों की लड़कियाँ भी पढ़ने लगी हैं।

एम. वीरप्पा मोयिलि के उपन्यास 'कोट्टा' में पीचलू आदिवासी स्त्रियों के लिए एक मिशाल है। जो पढ़-लिखकर आगे बढ़ती है। "कोट्टा में ही रहते प्राइवेट परीक्षाएँ पास करने वाली पीचलू अब मैसूर विश्वविद्यालय के पत्राचार पाठ्यक्रम में पढ़ने वाली पूरे कोट्टा निवासियों की मार्गदर्शिका बन गयी है। आजकल मल्लय्या के सारे कार्य वही निभा रही है। 'कोरग समग्र अभिवृद्धि संघ' का सिलसिलेवार हिसाब लिखना, अधिकारियों से पत्र व्यवहार करना आदि सभी कुछ वही तो कर रही है।"¹⁴

पीचलू की तरह सभी आदिवासी नारी को पढ़ना चाहिये। जिससे वे समाज की कुरुतियों को समाप्त कर सकें।

अब इन महिलाओं को ये समझ में आने लगा है कि अगर इनके बच्चे नहीं पढ़ते हैं तो इनका भविष्य अंधकार में होगा। इसलिए अब ये भी पढ़-लिखकर आगे बढ़ने लगे हैं।

जैसे-जैसे इनमें शिक्षा का विकास हो रहा वैसे ही ये शहरी संस्कृति का दुष्प्रभाव भी इन पर हो रहा है। रमणिका गुप्ता ने 'बहू-जुठाई' कहानी संग्रह में इसका वर्णन इस प्रकार किया है-

"कुछ लोगों ने बच्चों को पढ़ाना भी शुरु कर दिया था लेकिन स्कूल जाने वाली लड़कियों को माँ का हाथ बँटाने के लिए प्राइमरी के बाद स्कूल जाने से बंद भी कर दिया जाता था। घर के लड़के पढ़ने तो लगे पर वे स्कूल-कॉलेजों में अधकचरी संस्कृति से प्रभावित भी होने लगे। फलतः वे अपने मुक्त रीति-रिवाजों, औरतों की आजादी के प्रावधानों पर लोक लगाने लगे।"¹⁵

विभिन्न क्षेत्रों में महिलाएँ, पुरुष से बराबरी के अधिकार के साथ अपनी गिनती कराने लगी है। दफ्तरों में, उद्योगों में, शिक्षण संस्थानों में और सार्वजनिक समाजसेवा तथा राजनीति में भी उनकी स्थिति उत्साहवर्द्धक है।

पुन्नी सिंह के 'सहराना' उपन्यासा में सोमा अपनी बेटी को पढ़ाना चाहता है। सहराने में फैले अज्ञान व अंधकार को वो शिक्षा के द्वारा समाप्त करना चाहता है। “गत तीन-चार साल से, जब उसकी बेटी पढ़ने के काबिल हुई है, तब से इस विषय पर उसने गम्भीरता से सोचना शुरू किया है, तभी से उसे बराबर इस बात का अभास होता रहा है कि घाटी का यह अंधेरा निरंतर गहराता जा रहा है। इसके चलते घाटी के सहरिया आज भी सबसे कठिन जिंदगी जी रहे हैं। इस अंधकार को मिटाने के लिए अब तक जो कुछ हुआ है, वह महज एक तमाशा ही है। इस तमाशे के चलते घाटी के सहरियों को शिक्षा जैसी जरूरी चीज से भी मोहभंग हो गया है। वे शिक्षा के प्रति पूरी तरह से उदासीन हो चले हैं। उनकी यह उदासीनता देख-देखकर सोमा की पीड़ा गत दिनों में बढ़ती ही गयी है।”¹⁶

सोमा जैसे आदिवासी को पता है कि अगर उसकी बेटी शिक्षा नहीं मिलती है तो उसका भविष्य अंधकार में है। शिक्षा ही ऐसा जरिया है, जिससे सहराने के लोगों में जागृति आ सकती है।

कुछ लोग हैं जो इनके पढ़ने-लिखने का विरोध करते हैं। उनका मानना है कि अगर इनके बच्चे पढ़-लिख जाएंगे तो खेती-बाड़ी का काम कौन करेगा। इन सब बातों को दरकिनार करते हुए ये लोग अब पढ़ने लगे हैं।

रमणिका गुप्ता के कहानी संग्रह 'बहू-जुवाई' में बाबू सुंदर सिंह जैसे जमींदार इनके बच्चों को पढ़ने नहीं देते। ये वकील की माँ के घर में घुस कर कहता है- “बच्चा तो तुम लोग इहाँ (यहाँ) तक पहुँच गए हो ? खटिया पर बैठे-बैठे बतियाते हो ? खपड़े का घर क्या छान लिया कि हमरी बरोबरी करे लगे हो। लौंडा के स्कूल पढ़ा के कलक्टर बनाएगी क्या री चमाइन! आखिर तो हमरा दिया ही खाती हो, बच्चे ही तो जनाओगी न हमरे घरों में। हमराई खेत जोतेगा न तेरा बेटा भी! इतना गुमान मत पाल।”¹⁷

जमींदार लोग आदिवासी महिलाओं की बेइज्जती करते हैं। उन्हें हमेशा नीचा दिखाते हैं। इन सबके बाद भी वकील की माँ ने अपने बेटों को कॉलेज में पढ़ने भेजा। इससे दूसरे लोग उसका सम्मान करने लगे। वकील की माँ का मानना था कि— “समय के साथ बदलना पड़ेगा। यह कलियुग है। यहाँ ‘मुडी’ (सर) गिनी जाती है, जन्म नहीं। संख्या में ज्यादा ‘मुडी’ इन्हीं छोट-जात वालों के पास है। निखालिस जन्म या ‘जात’ लेकर अब क्या करेगे हम ? चाटेंगे क्या ? पिछला जन्म नहीं अब इसी जन्म का जमाना है।”¹⁸

इस तरह स्त्रियों को समझ में आने लगा है कि शिक्षा के अभाव में उनके जीवन में रोशनी नहीं आ सकती। वे अब अपने बच्चों को पढ़ाना चाहती हैं। जिससे उससे उसका आने वाला भविष्य सुधरे। लड़कों के साथ-साथ अब लड़कियों की शिक्षा पर भी आदिवासी ध्यान देने लगे हैं। परिवर्तन तो आया है पर वो तेजी से नहीं आया। आने वाले वक्त में इनके हालात जरूर सुधरेंगे।

महाश्वेता देवी की कहानी ‘इतवा मुंडा ने लड़ाई जीती’ में आलोमणि बताती है कि— “जब हम बच्चे थे, तब कहाँ थे आज की तरह स्कूल! आज तो लड़कियाँ भी स्कूल जाने लगी हैं मेरे भाई ने तो अपनी लड़की को शहर के स्कूल में पढ़ने को भेज दिया है। वह वहीं रहेगी भी।”¹⁹

आदिवासियों के लिए पढ़ना-लिखना बहुत जरूरी है। ये अब जानने लगे हैं। जिससे इन आदिवासियों के भोलेपन का कोई फायदा न उठा सके। कैसी भी मुश्किले आए इनको पढ़ना जरूर चाहिये। यह बहुत ही दुःख की बात है कि अधिकांश बच्चे पढ़ने नहीं जाते और जो जाते हैं, वे ठीक ढंग से पढ़ नहीं पाते।

अब आदिवासी समाज में भी स्त्रियाँ बुद्धिजीवी, प्रोफेसर, व्याख्याता शिक्षक, लेखक आदि बनने लगी हैं। समय के साथ-साथ महिलाएँ जागरुक हो गई हैं। उन्होंने सफलता की सीढ़ियाँ चढ़कर कीर्ति अर्जित की है।

आदिवासी महिला को स्वयं अपने हक के लिए लड़ना होगा। स्वयं नेतृत्व करना होगा। स्त्री यदि जीवन के हर क्षेत्र में आगे बढ़ना चाहती है तो उसे छुई-मुई, नाजुक, शर्मिली, त्यागमयी, तपस्विनी, सती साध्वी की भंगिमा तोड़कर और उपभोक्ता सामग्री सी बाजार में बिकाऊ वस्तु की तरह चकाचौंध भरी, मोहक दुनिया नकारकर-एक मेहनतकश, अन्याय न सहने वाली, स्वावलम्बी, स्वतंत्र एवं आत्मनिर्भर और अपने प्रजातांत्रिक अधिकारों का उपभोग करने वाली नारी की भूमिका अदा करनी हो। तभी उसे अपने समस्त अधिकार प्राप्त हो सकते हैं।

आदिवासी कल्याण परिषद जैसी स्वयंसेवी संस्थाओं का प्रभाव

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् सरकार ने आदिवासियों में सुधार तथा उनकी समस्याओं के निराकरण के लिए विभिन्न योजनाएँ बनाईं। उनमें से एक है आदिवासी कल्याण परिषद। प्रारंभ से ही आदिवासियों की स्थिति में सुधार के लिए स्वयंसेवी संस्थाएँ अपना योगदान देती आ रही है।

आदिवासी समाज में अनेक विभिन्नताएँ होती हैं तथा इस सांस्कृतिक व सामाजिक विभिन्नता के कारण इनके लिए एक जैसी योजनाएँ सही नहीं होती हैं।

आदिवासियों के विकास की सर्वप्रथम पहल ईसाई मिशनरियों ने अपने धर्म के प्रचार के लिए की। इन धर्म प्रचारकों ने दुर्गम स्थानों व खराब मौसम की परवाह किए बिना स्वयं इन आदिवासियों की सेवा की। इन मिशनरियों ने आदिवासियों से मधुर संबंध बनाएँ तथा इन्हें विकास तथा अधिकारों के प्रति जगरुक बनाया। आदिवासी विकास कार्यक्रमों में आदिवासी महिलाओं को अछूता छोड़ दिया है। विकास कार्यक्रमों में महिलाओं की भागीदारी को बढ़ावा देना चाहिए।

आदिवासियों के विकास में प्रारंभ से ही स्वयंसेवी संस्थाएँ अपना योगदान दे रही हैं। गुजरात के झावोद में भारतीय आदिम जाति सेवक संघ ने आदिवासी महिलाओं के लिए प्रशिक्षण केन्द्र खोला, जिससे ये प्रशिक्षित महिलाएँ ग्रामीण तथा आदिवासी क्षेत्रों में बच्चों की कल्याणकारी योजनाओं को लागू करने में मदद करे।

आन्ध्रप्रदेश के श्री कालूलम में आदिवासी की बालिकाओं के लिये एक आदिवासी बालिका आश्रम स्कूल का संचालन किया जा रहा है। यह आश्रम स्कूल में दुर्गम स्थानों से आने वाली बालिकाओं को शिक्षा प्राप्त करने में सफल हुआ है।

विभिन्न स्वयंसेवी संगठन आदिवासियों के कल्याण को प्रोत्साहन देने में जुटे हुए हैं। अखिल भारतीय स्तर के कुछ संगठन निम्न हैं-

- ◆ हरिजन सेवक संघ-दिल्ली
- ◆ भारतीय रेडक्रास सोसायटी-नई दिल्ली
- ◆ हिन्दू स्वीपर आदिम जाति सेवक संघ-नई दिल्ली
- ◆ रामकृष्ण मिशन-नरेन्द्रपुर
- ◆ भारतीय आदिम जाति सेवक संघ-नई दिल्ली
- ◆ आन्ध्र प्रदेश आदिम जाति सेवक संघ, नैल्लोर
- ◆ रामकृष्ण मिशन तथा भारतीय समाज उन्नति मंडली
- ◆ भिवंडी (महाराष्ट्र) ठक्कर बापा आश्रम
- ◆ सर्वेट्स ऑफ इण्डिया सोसायटी, पूणे (महाराष्ट्र)
- ◆ सामाजिक कार्य अनुसंधान केन्द्र, तिलोनिया (राजस्थान)

इन स्वयंसेवी संस्थाओं को सरकार आदिवासियों के बीच रहकर कार्य करने के लिए अनुदान सहायता मुहैया कराती है। “यद्यपि कभी-कभी सरकार पर यह आरोप लगाया जाता है कि जनजातियों के विकास जैसे कठिन कार्य के लिये वह जरूरत से ज्यादा स्वयं सेवी संस्थाओं पर निर्भर कर रही है। जनजातियों के विकास

में स्वयं सेवी संस्थाओं के सहयोग की अपेक्षा में बुराई नहीं है तथापि उन पर नियंत्रण रखा जाना आवश्यक है। सामाजिक कल्याण तथा विकास के क्षेत्र में स्वयं सेवी संस्थाएँ विश्व स्तर पर काम कर रही हैं। यह भी पाया गया है कि सरकारी अधिकारियों की तुलना में स्वयं सेवी संस्थाओं द्वारा आर्थिक स्रोतों के दुरुपयोग के आरोप प्रायः लगते रहते हैं किन्तु इसके लिये सभी स्वयं सेवी संस्थाओं द्वारा किये जा रहे कार्यों को नकारा नहीं जा सकता। जनजातियों के विकास के लिये तथा उनकी निर्धनता को समाप्त करने के लिये आवश्यक है कि सरकारी संगठन तथा स्वयं सेवी संस्थाएँ दोनों परस्पर सहयोग से संपूर्ण जनजातीय क्षेत्र में इस कार्यक्रम को सफल बनाएँ।²⁰

मेरा तो यह मानना है कि स्वयं सेवी संस्थाओं द्वारा महिलाओं के लिये अलग से योजनाएँ बनाई जानी चाहिये। जिसका सीधा लाभ इन आदिवासी स्त्रियों को मिल सके।

जागरूक आदिवासी महिलाएँ ही 'आदिवासी कल्याण परिषद' की योजनाओं का लाभ उठा पाई हैं। सभी स्त्रियों को लाभ हो इसके लिए स्वयं सेवी संस्थाएँ ठीक प्रकार से कार्य करे। सबको यह अहसास कराया जाए की महिलाओं की महत्ता और स्त्री का कल्याण भी देश के विकास में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

सरकारी प्रयास

(i) रोजगार का प्रभाव :-

भारत जैसे विकासशील देश में स्त्रियों के अधिकारों का हनन और रोजगार के अवसरों में कमी, नियमों का बहाना बनाकर अधिक की जाती है। यदि आदिवासी महिलाओं को बराबरी की बात करती है तो यदि वे रोजगार के बराबर अवसर चाहती हैं तो उन्हें जोखिम उठाना होगा।

अधिकांश आदिवासी महिलाएँ कोयला खदानों में कार्य करती हैं। सरकारीकरण के बाद से कोयला खदानों में औरतों को पुरुष के बराबर मजदूरी मिलने लगी है। इन खदानों में एक समस्या है 'यौन-शोषण'। जिसका हर महिला को सामना करना पड़ता है।

आदिवासी इलाकों में पुरुष से अधिक महिलाएँ खेतों में काम करती हैं। भीषण संघर्ष के बाद जो नौकरियाँ मिलती हैं वो पुरुष को मिलती हैं। भीषण गरीबी के कारण ये महिलाएँ शहरों की ओर पलायन कर रही हैं। आदिवासी महिलाएँ पलायन क्यों कर रही हैं, इसके प्रमुख कारण निम्न हैं-

- ◆ सर्वप्रथम आदिवासियों में गरीबी एक समस्या है।
- ◆ इन महिलाओं को शहरी-आकर्षण होता है।
- ◆ परिवार का ऋण ग्रस्त होना।
- ◆ रोजगार का विकल्प न होना।
- ◆ जमीन कम हो जाने से आय के साधनों में कमी।
- ◆ महिलाएँ पुरुषों की तुलना में अधिक जिम्मेदार होती हैं। इसलिए पुरुषों की गैर जिम्मेदारी के कारण ही महिलाओं को कमाने हेतु बाहर जाने को मजबूर होना पड़ता है।

सबसे अधिक कोयला खदानों में स्त्रियाँ काम करती हैं। ये यहाँ जोड़ी या दंगलों में काम करती हैं अर्थात् अपने पति, पिता व भाई के साथ या मजदूरों के किसी समुह के साथ सामुहिक रूप से जुड़कर। यदि आदिवासी महिला अकेली व परिवार से अलग हो या कमजोर, बीमार या बूढ़ी हो तो ऐसी परिस्थितियों में उन्हें अधिक परेशानियों का सामना करना पड़ता है। समुह के लोग अपनी सामुहिक कमाई में

कमी आने के डर से उन्हें अपने साथ काम कराने के लिए तैयार नहीं होते। क्योंकि सरकार व गैर सरकारी दोनों क्षेत्रों में ये जितना काम करते हैं उतनी मजदूरी मिलती है।

दूसरी समस्या आदिवासी महिलाओं को काम करते समय आती है वह है, महिला श्रमिक के बच्चों की देखभाल के लिए सेंटर का न होना है। आज भी ये महिलाएँ अपने दूधमुहँ बच्चों को दूध पिलाने की अनुमति भी मुंशी को घूस देनी पड़ती है। तब जाकर मुंशी दूध पिलाने की अनुमति देता है।

काम पर जाते समय बच्चों की देखभाल करने की सरकार के पास कोई व्यवस्था नहीं है। जो है वह नगण्य है या कागजों पर है। प्रसव-छुट्टी की समस्याओं पर भी सरकार ध्यान नहीं देती। बच्चे के जन्म से दस दिन पहले या फिर प्रसव पीड़ा शुरू होने तक प्रायः आदिवासी महिलाएँ काम करती हैं। वैसे कार्यरत महिलाओं को निम्न समस्याओं का सामना करना पड़ता है-

- ◆ रोजगार वाले क्षेत्र में डिस्पेंसरियाँ पर्याप्त नहीं हैं तथा वहाँ पर स्त्री-चिकित्सकों का भी अभाव है।
- ◆ प्रसव के समय इन्हें अतिरिक्त अवकाश नहीं दिया जाता है। गरीबी के कारण ये प्रसव के दिन तक काम करती हैं।
- ◆ निर्धारित अवकाश के बाद भी अगर महिला नहीं आ पाई तो उसकी पगार पहले आधा फिर पूरा वेतन कटने लगता है।
- ◆ कोयला खदानों में कार्य करने वाली महिला के सामने एक भीषण समस्या भी सामने आती है- 'छंटनी की समस्या'।
- ◆ कभी-कभी अविवाहित आदिवासी महिला से सफेदपोश लोग शादी कर लेते हैं। लेकिन गर्भवती होते ही छोड़ देते हैं। रोजगार कार्यस्थल पर इनका यौन शोषण जारी है।

- ◆ प्रबंधन ने महिलाओं के लिए स्वैच्छिक-अवकाश की योजना चालू कर रखी है, जिसके द्वारा सुनियोजित तरीके से स्त्री मजदूरों को नौकरी से हटाना शुरू कर दिया है।
- ◆ स्वैच्छिक अवकाश योजना में 57 वर्ष की महिला यानी की जिसकी नौकरी में तीन वर्ष बाकी है, वो अपने बेटे, पति, देवर, दामाद या किसी भी अन्य व्यक्ति को अपनी नौकरी देकर स्वेच्छा से रिटायर हो सकती है।
- ◆ अब पुत्र या दामाद ही अपनी माँ या सास को बीमार बनाकर उसे नौकरी देने के लिए मजबूर करता है।
- ◆ महिलाओं में भी बेटे-दामाद को नौकरी देकर स्वयं घर में आराम करने की प्रवृत्ति बढ़ रही है।
- ◆ महिलाओं की सुविधाओं पर अलग से विचार नहीं किया जाता है। पुरुष-मजदूरों को दी गई सुविधाएँ ही उनकी सुविधाएँ मान ली जाती हैं।

इन सभी समस्याओं के बाद भी महिला कार्य करने जाती हैं। जिससे उसे आर्थिक समस्याओं का सामना न करना पड़े।

इन सभी समस्याओं का निराकरण शीघ्र की करना होगा। आदिवासी महिला मजदूरों को कार्यस्थल पर कोई परेशानी न हो, इसके लिए निम्नलिखित समाधान किये जा सकते हैं-

- ◆ आदिवासियों के निवास स्थल में ही 'काम के बदले अनाज' या अन्य योजनाओं को चलाना चाहिये। जिससे इनको अपना गाँव न छोड़ना पड़े। जिससे इनके पलायन पर रोक लगेगी।
- ◆ सरकार को रेलवे स्टेशनों पर स्त्री स्वचायड रखने चाहिए। जिससे काम के लिए आने वाली प्रवासी महिला मजदूरों के समुह से सम्पर्क स्थापित कर, उन्हें बिना वजह पलायन से रोककर अपने ही स्थान या गाँव में काम दिलाने की व्यवस्था करे।

- ◆ जो स्त्री मजदूर जहाँ काम के लिए जा रही हो, उनका पूरा पता दर्ज करे और सम्बन्धित राज्य के अधिकारियों को सूचना दे, जिससे इनका शोषण न किया जा सके। उनको ले जाने वाले व्यक्ति का भी नाम, पता व हुलिया दर्ज करना चाहिये।
- ◆ खेतों में कार्यरत, लकड़ी बेचने, सब्जी बेचने, महुआ बीनने, साल बीच बेचने, तेंदु पत्ता चुनने आदि कार्य स्वरोजगार के अन्तर्गत आते हैं। ये सभी कार्य आदिवासी महिलाएँ करती हैं। इन कामों के लिए न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करनी चाहिए।
- ◆ आदिवासी ग्रामीण महिला को संगठित करना चाहिए। इसमें समाजसेवी स्त्रियों को सक्रिय साझेदारी करनी चाहिए।
- ◆ महिलाओं के कार्यस्थल पर कुछ स्त्री अफसर होने चाहिये, जिससे इनकी शिकायतों को निराकरण हो सके।
- ◆ महिलाओं के कार्य का भुगतान उनके हाथ में मिलना चाहिये। जिससे उनके पुरुष उनकी कमाई शराब, जुए आदि में व्यर्थ नहीं कर सके।
- ◆ स्त्रियाँ घरों के काम के साथ खदानों में भी काम करती हैं। इसके लिए कार्यस्थल पर ही खाने के डिब्बे या सस्ती कैंटीनों की व्यवस्था करनी चाहिये। यह सुविधाएँ, जहाँ महिलाएँ काम करती हैं उन स्थानों पर सरकार या प्रबंधन द्वारा उपलब्ध कराई जानी चाहिये। जिससे काम के पहले या बाद में महिलाओं को खाना बनाने से मुक्ति मिल सके।
- ◆ यौन-शोषण के बारे में आदिवासी महिलाओं को कानूनी सलाह प्रशिक्षण और सहायता देनी चाहिये। इसके लिए सरकारी तथा गैरसरकारी संस्थाओं की ओर से समय-समय पर कक्षाएँ चलानी चाहिए।

अन्य सरकारी प्रयास भी है जिसके द्वारा आदिवासी महिलाओं को रोजगार दिलाया जा सकता है।

- ◆ सरकार को अनिवार्य शिक्षा को बढ़ावा देना चाहिए।
- ◆ आदिवासी ग्रामों में समय-समय पर सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन करना चाहिए।
- ◆ ग्रामीण विकास की ओर युवाओं को जागरुक करना चाहिये।
- ◆ स्वरोजगार की सम्भावनाओं को तलाश कर उसकी ओर आगे बढ़ना चाहिए।
- ◆ प्राकृतिक संसाधनों पर आधारित उद्योग प्रारम्भ करने की दिशा में पहल करना चाहिए।
- ◆ आदिवासी उत्पादों के लिए बाजार की व्यवस्था करना चाहिए।
- ◆ पढ़ने वाली लड़कियों की बुनियादी समस्याओं को समझते हुए उनके निदान का प्रयास करने के साथ ही जागरुकता अभियान चलाना चाहिए।
- ◆ आदिवासी महिलाओं को तकनीकी शिक्षा देने का प्रयास करना चाहिए और किसी भी प्रबंधन में नौकरियों में स्त्रियों के लिए कुछ निश्चित अनुपात रखना चाहिये।

इन सभी समस्याओं का समाधान करके कार्यस्थल पर होने वाले शोषण से आदिवासी महिला को बचाया जा सकता है। जिससे ये सम्मानजनक जीवन जी सके।

(ii) भविष्य की दिशाएँ

“हजारों बरसों से या कहुँ सदियों से आदिवासियों को खदेड़ने का काम जारी है। उन्हें जंगलों में आदिम जीवन जीने के लिए मजबूर कर सभ्यता से दूर रखने की साजिश भी इस बीच जारी रही और जारी रहा उनका शोषण और दोहन। उनकी संस्कृति को न तो यहाँ के वासियों ने पनपने या विकसित होने दिया और न ही उसे आत्मसात कर मूलधारा में शामिल होने दिया। उल्टे हमेशा उन पर असभ्य, आदिम या जंगलीपन की पहचान थोपकर, उनमें हीन-भावना भरी जाती रही, जिससे आदिवासियों पर उनका वर्चस्व कायम रहे। फलस्वरूप, आदिवासियों के समाज का विकास ठहर-सा गया, सोच का विकास रुक गया और रुक गया उनकी संस्कृति और भाषा का विकास। परम्परा और अन्धविश्वास से जुड़ा यह समाज, बस जीने की चाह के बल पर कठिन-से-कठिन परिस्थितियों का अपने कठिन श्रम से मुकाबला करता रहा-दीन दुनिया से बेखबर। लेकिन इन सबके बावजूद उसने अपनी पहचान आदिवासी के रूप में कायम रखी।”²¹

आदिवासी महिलाओं को शिक्षित करके उनके आने वाले भविष्य को संवारा जा सकता है। इनमें जन-जागृति लाकर, इनमें व्याप्त बुराईयों से अवगत कराकर इन्हें आगे बढ़ाया जा सकता है।

समाजसेवी संगठनों व महिला संगठनों को शहर में अभियान न चलाकर इनके गाँवों में अभियान चलाना चाहिये। जिसमें इनकी कुप्रथाओं से अवगत कराया जाना चाहिये।

आदिवासी महिलाओं में अशिक्षा के कारण अन्धविश्वास भी बहुत है। इनमें किसी बिमारी के होने पर भूत-प्रेत का प्रकोप माना जाता है और जब तक बीमार व्यक्ति की हालत गम्भीर नहीं हो जाती, तब तक अस्पताल नहीं ले जाया जाता है। बच्चों की शिक्षा और प्रौढ़ शिक्षा के द्वारा इन अन्धविश्वासों को दूर किया जा सकता

है। प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों को अक्षर ज्ञान का केन्द्र न बनाकर अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र बनाया जाए, जिससे आदिवासी महिलाएँ वर्तमान समय से भी परिचित हो सकें और उनका शोषण गैर-आदिवासियों द्वारा न किया जा सके।

आदिवासी समाज में बहुविवाह की प्रथा प्रचलित है। इस प्रथा को जड़ से समाप्त करने के लिए सरकार को हिंदू विवाह कानून के तहत दंड देना चाहिए। इस प्रथा पर रोक लगाकर स्त्री को समाज में सम्मानजनक दर्जा दिया जा सकता है।

आदिवासी महिलाओं के समग्र विकास के लिए एक प्रारूप बनाना चाहिये। जिसमें महिलाओं की समस्याओं पर ध्यान देना चाहिए। तभी जाकर भविष्य में ये अपना विकास कर सकेगा।

आदिवासी शिक्षकों के लिए अलग से प्रशिक्षण की योजना बनानी चाहिए। स्थानीय आदिवासियों में से ही योग्य व युवा-पढ़े-लिखे उम्मीदवारों को चयन किया जाना चाहिए। अगर इनका अध्यापक आदिवासी होगा तो, उनकी समस्याओं को अच्छे से समझ सकेगा।

आदिवासी महिलाएँ जितनी अधिक पढ़ी लिखी होगी, उतनी अच्छी तरह से वे घर की सार-संभाल व बच्चों का पालन-पोषण कर सकेगी। छात्राओं के विद्यालय में एक-दो कालांश ऐसी भी होने चाहिए, जिसमें घरेलू जिम्मेदारियों के बारे में जानकारियाँ दी जाए। उच्च स्तर पर पढ़ने की इच्छुक छात्राओं को छात्रावास उपलब्ध कराए जाए और इन्हें विशेष प्रोत्साहन राशि दी जाए। जिससे इनका भविष्य उज्ज्वल हो सके।

रोजगार देने के नाम पर जो बड़ी योजनाएँ बनाई जाए उनमें आदिवासी महिलाओं की सहभागिता को बढ़ाया जाए, जिससे इन्हें ये महसूस हो कि सरकार हमारे विकास के लिए कार्य कर रही है।

‘पठार पर कोहरा’ उपन्यास में राकेश कुमार सिंह ने सही कहा है- “बरगद की बरोहों की भाँति वनवासियों के भीतर धंसी हैं, ढेरों आदिम परम्पराएँ...। यह सार्थक आस्थाएँ ही तो थी जिन्होंने सैकड़ों कबीलाई युद्ध जीते। शाश्वत विश्वासों के दम पर ही इन वनपुत्रों ने रच लिये हैं अनेक जंगली मिथक। अनन्त अरण्य गाथाएँ। बेशक इनमें से अधिकांश को अन्धविश्वासों के खाते में ही डाला जाता रहेगा, पर किन्हीं आस्थाओं का मखौल उड़ाकर आस्थावान के मानस को नहीं बदला जा सकता। किसी के विश्वासों का सिर्फ मजाक बनाकर उसकी चेतना को माँजना-धोना असम्भव है। यह तो तभी सम्भव है जब आस्थावान की आस्था और विश्वास को धीरे-धीरे सार्थक चिन्तन और वैज्ञानिक दृष्टिकोण की ओर झुकने को विवश कर दिया जाए। एक तर्कसंगत सोच निर्मित की जाय और इस दीर्घकालीन प्रक्रिया में पूरे धैर्य और सावधानी की जरूरत होती है।”²²

स्त्री चाहे निम्न वर्ग की हो मध्यवर्ग की हो या उच्च वर्ग की हो, अगर वे प्रयास करेगी तो उनकी स्थिति जरूर सुधरेगी। जिन दायरों में महिला परम्परागत परम्पराओं से मुक्त दिखाई देती है, वहाँ भी कुछ नई समस्याओं का उसे सामना करना पड़ेगा। मेरा मानना है कि ये समस्याएँ परिवर्तन और प्रगति की हैं और उनसे निराश होने की कोई जरूरत नहीं है।

इस प्रकार ये कहा जा सकता है कि आदिवासी महिलाओं के विकास के लिए धन खर्च करने के साथ-साथ ऐसे समर्पित अधिकारी व कर्मचारियों को सरकार द्वारा चुना जाना चाहिए जो इन स्त्रियों की समस्या को सुने और उन समस्याओं का निराकरण करे। आदिवासी स्त्रियों के प्रति सरकार का यह दायित्व है कि उन्हें न सिर्फ आर्थिक शोषण से बचाया जाए बल्कि उन्हें कार्यस्थल पर किये जा रहे यौन-शोषण से भी बचाया जाए। सरकार इन स्त्रियों को संतुष्टिदायक जीवन जीने के लिए अवसर, आत्मनिर्भरता के महत्त्व का ज्ञान व मार्गदर्शन दे सकती है।

सारांश

आदिवासी नारी पर आधुनिकता का प्रभाव हो रहा है। वे सभी क्षेत्र में अपने कदम बढ़ा रही हैं। स्त्री का केवल स्वतन्त्र होकर निर्णय लेना या आर्थिक रूप से स्वतन्त्र हो जाना ही उनकी अस्मिता नहीं है। स्त्री अस्मिता का अर्थ है स्त्री के प्रति समाज के दृष्टिकोण और मानसिकता में बदलाव, जिसमें स्त्री का स्वयं का दृष्टिकोण भी शामिल हो।

आदिवासी महिलाओं को शिक्षित करके उनके आने वाले भविष्य को संवारा जा सकता है। इनमें जन-जागृति लाकर, इनमें व्याप्त बुराइयों से अवगत कराकर इन्हें आगे बढ़ाया जा सकता है।



संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. रमणिका गुप्ता : बहू-जुठाई-शिल्पायन, पृ.सं.-74
2. रमणिका गुप्ता : सीता-मौसी-ज्योति लोक प्रशासन, पृ.सं.-35
3. पुन्नी सिंह : सहराना-ग्रंथ केतन, पृ.सं.-16
4. मधुकांकरिया : खुले गगन के लाल सितारे-किताबघर प्रकाशन, पृ.सं.-142
5. पुन्नी सिंह : सहराना-ग्रंथकेतन, पृ.सं.-88
6. पुन्नी सिंह : सहराना-ग्रंथकेतन, पृ.सं.-89
7. रमणिका गुप्ता : बहू-जुठाई-शिल्पायन, पृ.सं.-79
8. मैत्रेयीपुष्पा : झूलानट-राजकमल प्रकाशन, पृ.सं.-145
9. रमणिका गुप्ता : सीता-मौसी-ज्योतिलोक प्रकाशन, पृ.सं.-43
10. वही, पृ.सं.-65
11. वही, पृ.सं.-96
12. वही, पृ.सं.-99
13. वही, पृ.सं.-88
14. एम.वीरप्पा मोयिलि : कोट्टा-भारतीय ज्ञानपीठ, पृ.सं.-233
15. रमणिका गुप्ता : बहू-जुठाई-शिल्पायन, पृ.सं.-127
16. पुन्नी सिंह : सहाराना-ग्रंथकेतन, पृ.सं.-213
17. रमणिका गुप्ता : बहू-जुठाई-शिल्पायन, पृ.सं.-107
18. वही, पृ.सं.-115
19. महाश्वेता देवी : इतवा मुंडा ने लड़ाई जीती-नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, पृ.सं.-25
20. डॉ. हरिश्चंद्र उत्प्रेती : भारतीय जनजातियाँ : संरचना एवं विकास-राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर पृ.सं.-389
21. सं. रमणिका गुप्ता : आदिवासी कौन-राधाकृष्ण, पृ.सं.-5
22. राकेश कुमार सिंह : पठार पर कोहरा-भारतीय ज्ञानपीठ, पृ.सं.-142

पंचम अध्याय
आदिवासी नारी संघर्ष की विविध दिशाएँ

1. भूमिका
2. पारिवारिक क्षेत्र में
3. सामाजिक क्षेत्र में
4. राजनैतिक क्षेत्र में
5. आर्थिक क्षेत्र में
6. कलाओं के क्षेत्र में
7. सारांश

पंचम अध्याय

आदिवासी नारी संघर्ष की विविध दिशाएँ

भूमिका

आदिवासी महिला सभी क्षेत्रों में अपनी भूमिका जिम्मेदारी के साथ बखूबी निभाती है। पारिवारिक क्षेत्र, सामाजिक क्षेत्र, राजनैतिक क्षेत्र, आर्थिक क्षेत्र तथा कलाओं के क्षेत्र में आदिवासी नारी संघर्ष करती हुई आगे बढ़ रही है। प्रस्तुत अध्याय में इन क्षेत्रों में नारी स्थिति का चित्रण किया गया है।

पारिवारिक क्षेत्र में

आदिवासी परिवारों को मुख्य रूप से तीन भागों में बाँटा जा सकता है— एकाकी अथवा केन्द्रीय, संयुक्त तथा विस्तृत 'हो' आदिवासियों में एकाकी परिवार मिलते हैं, जिनमें पति-पत्नी एवं अविवाहित बच्चे होते हैं। खड़िया आदिवासियों में विस्तृत परिवार मिलते हैं।

भील, नागा, गोंड आदि आदिवासियों में बहुविवाही परिवार पाए जाते हैं। बहुविवाही परिवारों में एक से अधिक पत्नियाँ उनके बच्चे होते हैं। वर्तमान समय में आर्थिक दृष्टि से सुसम्पन्न आदिवासियों में ही यह परम्परा पाई जाती है। बहुपतित्व परिवार व्यवस्था के उदाहरण खस, टोडा आदि आदिवासियों में मिलते हैं।

वर्तमान में सामान्यतया यह माना जाता है कि एकाकी परिवार से नारियों की स्थिति में सुधार आया है। जबकि बहुविवाही परिवारों में उनकी स्थिति में गिरावट आई है, परंतु आदिम समाजों का सामान्य अवलोकन करने पर यह धारणा गलत प्रतीत होती है। उदाहरण के लिए बहुपतित्व परिवारों में नारियों की स्थिति अन्य प्रकार

के आदिवासी परिवारों की तुलना में अधिक अच्छी पाई जाती है। मात्र बाँझपन अर्थात् बच्चे पैदा न होने की स्थिति में ही उसकी सामाजिक स्थिति में गिरावट पाई जाती है।

आदिवासी परिवारों में कन्या के विवाह के समय वर पक्ष से धन लिया जाता है, जिससे नारियों को उच्च एवं सम्मानजनक स्थान मिलता है। यह परम्परा कुछ ही आदिवासी परिवारों में प्रचलित है।

“आदिवासी औरतों की दिनचर्या निम्नलिखित तरीके से शुरू होती है- सबेरे उठकर घर में झाड़ू देना, लीपा-पोती करना, चूल्हा जलाना, दूर-दराज झरनों, जल स्रोतों, नदियों व गहरों कुओं से पानी भरकर लाना। कई बार तो दोने से पानी उलीचकर एक घैला (घड़ा) पानी भरने में एक घंटा लगता है। खाना बनाना भी इन्हीं के जिम्मे है। इस बीच मर्द दातुन करने के सिवाय कोई काम नहीं करता। अपने मर्द, बच्चों तथा बूढ़ों को खाना परोसने के बाद खाना खाना, बरतन माँजना परिवार में स्त्रियों का नियम होता है। अगर गाय-गोरु घर में हो तो उनकी देखभाल करने का काम भी औरतों को ही करना होता है। घर के काम से निपटकर वे मर्द के साथ काम की तलाश में निकल जाती हैं अन्यथा जंगलों में मर्द के साथ लकड़ी काटने के लिए जाती हैं। दोनों मिलकर लकड़ी काटते हैं और औरत उस लकड़ी को सिर पर लादकर बेचने के लिए बाजार जाती है। उसके बाद रात को आकर औरत को खाना बनाना पड़ता है। मर्द सोने के बाद सोने जाना तथा मर्द के उठने के पहले उठ जाना भी औरतों की दिनचर्या में शामिल है।”¹ ये सभी पारिवारिक जिम्मेदारियाँ एक स्त्री निभाती है।

स्त्री कहीं-कहीं पर अपनी मर्जी से नहीं बल्कि परिवार की खुशी के लिए भी सब कुछ करती है। वीणा सिन्हा के ‘सपनों के बाहर’ उपन्यास में श्रीमती सिंह जब लड़कियों के पढ़ने का विरोध करती है और उन्हें पारिवारिक जिम्मेदारियाँ निभाने के लिए कहती है, तब निशिगंधा कहती है- “यह रानी का मान पाकर औरत और भी अधिक गुलाम हो जाती है ? साधारण गुलाम तो मालिक के डर से गुलामी करते हैं, परंतु औरत तो स्वेच्छ से भावात्मक गुलामी करती है। इस व्यवस्था में महिलाओं को

पूरी तरह गुलाम बनाने की साजिश है। उन्हें घुट्टी में पिलाया जाता है कि उनके चरित्र के आदर्श पुरुषों के आदर्श से बिल्कुल अलग है। उन्हें यह अहसास कराया जाता है कि दूसरों की अधीनता स्वीकार करने में ही सार्थकता है। सभी नैतिकताएँ स्त्री-स्वातंत्र्य के खिलाफ हैं।”² स्त्री जो भी करती है स्वयं अपनी इच्छा से करती है। परिवार के काम करने में उसे संतुष्टि होती है।

पुन्नी सिंह के ‘सहराना’ उपन्यास में सोमा और चंपा प्रेम विवाह करते हैं। चंपा के माँ-बाप इसीलिए उससे मिलने नहीं आते। वह अपने ससुराल के साथ-साथ मायके के सम्बन्धों को भी निभाना चाहती है। चंपा के माँ-बाप एकदिन उससे मिलने आ जाते हैं तो उसकी खुशी का ठिकाना नहीं रहता। इसका वर्णन देखिए-

“आज तक एक बात का मलाल उसको खाये जा रहा था। वह किसी के सामने अपने माँ-बाप की चर्चा करने में सकुचाती थी। सहराने की औरतें जब भी इकट्ठी बैठतीं, तब अपने-अपने पीहर की बड़ाई करती नहीं थकती थीं, लेकिन ऐसे मौके पर चंपा मन मारकर बैठी रहती। अपने मैयो-बाप के बारे में किसी से एक बात तक नहीं कह पाती। कुछ औरतें उससे जलती थीं। चंपा उनसे भी कुछ नहीं कह पाती थी बल्कि अपने घर आकर अकेले में बैठी रोती रहती। अंजनी काकी उसके दुःख को समझती थी। वह अकसर दिलासा देती हुई उससे कहती- ‘तू अपने मैयो-बाप को दुख मत मान, चंपा! एक न एक दिना बादाम तेये जोरे बिना बुलाये आयेगो, तू देख लीये!’ आज काकी की बात सही निकली है, इसलिए चंपा और भी ज्यादा खुश है।”³

वीणा सिन्हा ने ‘सपनों से बाहर’ उपन्यास में एक आदिवासी स्त्री रूप कुँवर को पारिवारिक कर्तव्य निभाने का वर्णन बड़े रोचक ढंग से किया है- “पीले नारंगी रंग का घाघरा-चोली पहने एक युवती बस्ती से पानी लेकर आ रही थी। माथे से खींचकर पीछे बँधे बालों की वजह से चौड़ा माथा और भी चौड़ा लग रहा था। कानों के ढार में लगा शीशा धूप में चमक रहा था। लुरकिया झूल जाती थी। छोटी सी नाक में फँसी लौंग काफी बड़ी थी। गुदने से गुदे हाथ चूरा मोगरों और बाकों से भरे थे। चलते समय पाँव के टोलड़ खनखना उठते थे।”⁴ इसमें पानी लेकर आती हुई रूपकुँवर का चित्रण है।

एक स्त्री माँ के रूप में बच्चों पर बहुत ध्यान देती है। पति के लिए वो कर्तव्यपरायण पत्नी तो बच्चों के लिए एक समझदार माँ बनना होता है। वीणा सिन्हा के 'सपनों के बाहर' उपन्यास में रूपकुँवर का पिता अपनी पत्नी की तारीफ करते हुए कहता है-

“तेरी माँ दुनिया की सबसे अच्छी औरत है, कि उसकी माँ से अच्छी रसोई कोई पका नहीं सकता, कि उसकी माँ से अच्छी कथड़ी कोई सी नहीं सकता। एक-एक टाँका इतना सधा होता था मानो मशीन से लगा हो, कि उसकी माँ के हाथ माँडना देख देवता किसी और स्थान पर विराज ही नहीं सकते थे, कि उसके हँसने-भर से फूल कुछ ज्यादा ही महकने लगते थे, कि बापू के गीतों में माँ की आत्मा बोलती थी।”⁵

अनेक बहुपत्नी परिवारों वाले आदिवासियों में नारियों की स्थिति पर्याप्त सम्मानजनक है। उदाहरण के रूप में भोटिया परिवार को देखा जा सकता है एकाकी परिवारों में नारियों की स्थिति अलग-अलग आदिवासी समाजों में विभिन्नता लिए हुए है। आदिवासियों में कहीं तो वह मात्र क्रय की वस्तु मानी जाती है, तो अन्यत्र ये समानता एवं सम्मानजनक स्थिति में है। बिरझिया आदिवासियों में एक पत्नी पारिवारिक मामलों में समान रूप से भागीदारी निभाती है, जिसे उसका पति सामान्यतया स्वीकार करता है।

मातृ-सत्तात्मक परिवारों में जहाँ सम्पत्ति का हस्तान्तरण नारी पक्ष की ओर अर्थात् माँ से पुत्री की ओर होता है, ऐसे समाजों में निःसंदेह नारियों की स्थिति श्रेष्ठ पाई जाती है। खासी तथा गारों आदिवासियों को इसके उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है।

आसाम की पहाड़ियों में पाई जाने वाली खासी आदिवासी मातृसत्तात्मक है। इन लोगों में विवाह के बाद पति को अपनी पत्नी के घर जाकर रहना होता है। इनसे जन्म लेने वाले बच्चों का वंश-नाम माता की तरफ का ही होता है। अतः स्पष्ट है कि निवास-स्थान तथा वंश-नाम दोनों के ही सम्बन्ध में माता या नारी की स्थिति पुरुषों

से कहीं अधिक अच्छी है। शायद इसीलिए इन आदिवासियों में प्रचलित लोककथाओं में इनके आदि प्रवर्तक के रूप में नारियों का नाम मिलता है। इनके अधिकतर देवताओं के नाम स्त्री-लिंगी है। इनमें सम्पत्ति भी उत्तराधिकार के रूप में माता से बेटी को प्राप्त होती है। पुरुष जो कुछ भी कमाता है, उस पर उसके विवाह से पहले तक माता के परिवार का तथा विवाह के पश्चात् पत्नी के परिवार अधिकार होता है।

आसाम के गारो आदिवासी भी मातृ सत्तात्मक है। इन आदिवासियों में बच्चों का वंश-परिचय माता के वंश के अनुसार ही होता है। इनके पूर्वज भी नारियाँ ही होती हैं, ये लोग देवीयों की ही पूजा-अर्चना करते हैं। गारो आदिवासियों में बहु-पत्नी विवाह की प्रथा है लेकिन कन्या मूल्य की प्रथा नहीं है।

“टोडा आदिवासी परिवार में संयुक्त परिवार और मेहमाननवाजी की वजह से अधिक संख्या में लोग रहते हैं। परिवार में ज्यादा बच्चे होने से भी परिवार बड़ा हो जाता है। टोडा परिवारों में मेहमानों का आना-जाना भी बहुत होता है। यह इस समुदाय की विशिष्टता है। टोडा समुदाय में जीने का यह तरीका बहुत ही प्रशंसनीय माना जाता है। परंतु वर्तमान समय और बदलती दुनिया में इसे बनाए रखना कठिन है। वर्तमान सभ्यता वाली दुनिया में टोडा औरतों की स्थिति में सुधार लाना संभव नहीं लगता। बच्चों को भी शिक्षा और स्वास्थ्य सहज सुलभ उपलब्ध नहीं है। औरतों के पास परिवार और बच्चों को देखने के अलावा अपने आपको देखने या अपना विकास करने का समय नहीं है। ज्यादा समय वे खाना बनाने या परिवार को पोसने में लगी रहती है। उसका ज्ञान कुएं के मेढ़क की तरह सीमित रहता है।”⁶

आदिवासी महिलाएँ गैर-आदिवासी महिला से अधिक स्वतंत्र होती हैं। पुरुषों के साथ खाना-पीना, नृत्य, सामाजिक व पारिवारिक कार्यों व पर्वों में वे पूरा साथ देती हैं और पुरुषों के साथ कंधा मिलाकर घर और बाहर दोनों काम करती हैं।

आदिवासी परिवारों में बहुविवाह की प्रथा पाई जाती है। जिसके चलते पति-पत्नी में कलह भी हो जाती है। ऐसा ही कुछ पुन्नी सिंह के ‘सहराना’ उपन्यास में सोमा

करता है। वह चंपा की ममेरी बहन लाड़िली के पास चला जाता है। इससे चंपा बहुत दुःखी रहने लगती है लेकिन एक दिन सोमा वापस चंपा के पास आ जाता है। बाद में लाड़िली बीमार हो जाती है। जिसने चंपा का घर उजाड़ा, उसी लाड़िली की बीमारी की खबर सुनकर चंपा रह नहीं पाती और उससे मिलने चली जाती है। स्त्री पारिवारिक रिश्तो को निभाने में आगे होती है, वही चंपा ने किया-

“वह सोचने लगी कि लाड़िली आखिर उसकी ममेरी भैंन है। बचपन में वे दोनों साथ-ही-साथ पली-बढ़ी है। खेली-कूदी है। लाड़िली को वह खूब अच्छी तरह से जानती है। वह मन की बुरी नहीं है। वह चंपा का हमेशा लिहाज करती रही है। एक यही काम उससे गलत हुआ है कि उसने सोमा को भरमा लिया था। अब जब उसका सोमा वापस मिल गया है तो लाड़िली से किस बात का झगड़ा ? उसका मन लाड़िली से मिलने को तड़प उठा, लेकिन अपने मन की तड़प वह किसी को बता भी तो नहीं सकती थी। सोमा को भी नहीं बता सकती थी। पता नहीं वह समझ पायेगा या नहीं। फिर उसका किसी से कुछ कहने का मन नहीं हुआ। सोमा को भी कुछ बताये बिना एक दिन सवेरे ही वह बिलौआ जा पहुँची।”⁷

रमणिका गुप्ता के ‘सीता-मौसी’ उपन्यास में यासीन सीता से विवाह करने के बाद भी दूसरी औरत ले आया था, इस बात पर सीता को विश्वास नहीं होता तो “वह सरस्वतिया को ले यासीन के पुराने धौड़े में गई। यासीन मियाँ को काटो तो खून नहीं! मुँह से आवाज भी न निकल रही थी। वह सीता से आँख न मिला पा रहा था। यासीन की निकाह वाली बीवी भी सीता के आगे अपराध कबूल कर रिरियाकर उससे माफी माँगती-सी लगी। सीता, जो सबके लिए लड़ती रही थी, आज अपनी लड़ाई हार चुकी थी। पर वह यह भी समझ रही थी कि उससे अभी मजदूरों की बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ लड़नी हैं यासीन के इस मुकद्दमे में वह वादी भी थी और जज भी! क्या करे सीता ? वह सोच में पड़ गई। यासीन को छोड़ दे क्या ? सीने पर पत्थर रखकर बाँटना पड़ेगा अपनी सौतिन के साथ उसे यासीन को, जिसके प्यार में वह अभी तक सराबोर थी।”⁸

आदिवासियों के बहुविवाह की प्रथा में औरते ही ठगी जाती है। इस प्रथा पर जल्दी ही रोक लगनी चाहिए। जिससे इनका पारिवारिक जीवन सुखी हो।

एक आदिवासी महिला सारा दिन कुछ ना कुछ काम करती रहती है। महाश्वेता देवी के उपन्यास 'चोट्टि मुण्डा और उसका तीर' में चोट्टि की पत्नी के कामों का वर्णन इस प्रकार किया है- "चोट्टि की पत्नी लकड़ी इकट्ठा करती। कपड़े सीती थी, मुर्गियों और बकरियों की देखभाल करती, आँगन में मिर्चे और बैंगन लगाती। फूस बटकर रस्सी बनाती। लकड़ी के अड्डे बनाकर डोरी से बाँध, बैठने के लिए चौकी बनाती। बैठी न रहती।"⁹

"वनवासी समाज में जंगल से स्त्रियों के रिश्ते पुरुषों की अपेक्षा कहीं अधिक निकट और प्रगाढ़ होते हैं। पुरुषों के जिम्मे मात्र तीन कार्य होते हैं- शिकार खेलना, हँडिया-पोचई पीना और मॉदल-ढोल की थाप लगाते अखरा में नाचना। घर-गृहस्थी के अधिकांश दायित्व स्त्रियों की जिम्मेवारी होते हैं। चूल्हे के लिए ईंधन जुटाना, पानी लाना, रोपनी, कटनी और घर की व्यवस्था।"¹⁰

स्त्री माँ के रूप में अपने बच्चे का सबसे अधिक ध्यान रखती है। जंगल से लकड़ी काटकर लाते समय उसे जब टी.टी. पकड़ लेता है तो वह अपने छोटे बच्चों का वास्ता देती है। रमणिका गुप्ता ने 'बहु-जुठाई' कहानी संग्रह में एक जुझारु महिला का वर्णन इस प्रकार किया है जो टी.टी. से कह रही है-

"देखाअ, मुँह-अँधेरे जंगल से लकड़ी-काट-काट लायले है। कसम से मुँहों भी न धोले हैं। तै रोकहीं तो हमनी सब के नान्ह-नान्ह गीदरवन (बच्चे) भूखल रह जैब। तोर पर क्षाप पड़ी हम सबनी के। कम से कम महारु के छोड़ दे। मरदवन दूसर गड़िया से चल आयब।"¹¹

रमणिका गुप्ता के 'बहु-जुठाई' कहानी संग्रह में मणिका ज्ञान के बारे में सोचती है- "उसे याद आया पटना के अपने फ्लैट में वह कैसे ज्ञान को अपनी पसन्द

के खाने बनाकर खिलाया करती थी। अपनी पसन्द के खाने बनाकर खिलाना और यह उम्मीद करना कि दूसरे उस खाने को पसन्द कर प्रशंसा करेंगे, उसे अच्छा लगता था लोग प्रायः प्रशंसा किया भी करते थे। ज्ञान तो तारीफें करते न थकता था। ज्ञान उसके हाथ का बनाया खाना बहुत प्रेम से खाता था एक-एक व्यंजन की व्याख्या करते हुए, जब वह मुग्ध होकर उसे देखते रह जाता, तो वह पागल हो उठती और फिर जग जाती थी दोनों की भूख।”¹² स्त्री को अपने हाथों से खाना बनाकर खिलाने से संतुष्टि मिलती हैं

इसके विपरीत पितृसत्तात्मक परिवारों में नारियों की स्थिति, विशेषकर निवास स्थान और सम्पत्ति पर अधिकार के मामलों में उतनी ऊँची नहीं पाई जाती है, जितनी की मातृसत्तात्मक परिवारों में है।

जहाँ पितृसत्तात्मक परिवार होते हैं, वहाँ नारी को विवाह के बाद पति के घर पर रहना पड़ता है। क्योंकि वह घर पति का होता है, इस कारण वहाँ पति का उच्च स्थान होता है। टोडा आदिवासियों में नारियों के मासिक-धर्म, प्रसूत आदि से सम्बन्धित जो विचार विश्वास या मान्यताएँ पनप गई हैं उसके फलस्वरूप भैंस, दूध और दूध से बनने वाली चीजों के संबंध में अनेक निर्योग्यताएँ भी महिलाओं पर लग गई हैं किंतु इन सब उदाहरणों से यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि पितृसत्तात्मक परिवारों में नारियों की स्थिति खराब है।

“आज भी भारत में औरत अगर अपने त्यागमयी रूप से जरा सी भी विचलित होती है तो वह तुरन्त कुलटा या खलनायिका करार दी जाती है। उसकी शुचिता के लिए पति के प्रति एकनिष्ठ होना ही कसौटी माना गया है। वह पति, परिवार, देश अथवा समाज की ही सम्पत्ति है, वहीं तक उसकी हद है। कहने के लिए ही भारतीय मानस औरत को पूज्य कहता है लेकिन डग-डग पर उसे माया, ढगनी, कुटनी कहकर अपमानित करता रहा है। कृष्ण ने तो गीता में उसे ‘पाप की पोटली’ ही कह दिया।”¹³

आदिवासियों में महिलाओं को बराबर का दर्जा दिया गया है। पारिवारिक क्षेत्र में वे अपनी सक्रीय भूमिका निभाती हैं।

सामाजिक क्षेत्र में

आदिवासी समाजों में महिलाओं की स्थिति का आंकलन करने के लिए सामाजिक क्षेत्र में उनकी स्थिति को देखना चाहिए। विभिन्न सामाजिक संस्थाओं जैसे-विवाह, परिवार, धार्मिक एवं राजनीतिक संस्थाओं में महिलाओं की भागीदारी कहाँ तक है, इसी से इनकी सामाजिक स्थिति का पता चलता है।

“आदिवासी स्त्री पति को ईश्वर नहीं समझती। उनके ये मूल्य नहीं हैं। ईश्वर मानकर या धन के लोभ से सभी सन्नास सहन किया जाए, ऐसी परम्परा आदिवासियों में नहीं है। पति के सताए जाने और सास-ससुर द्वारा तंग किए जाने पर घुट-घुट कर मर जाने की अपेक्षा उस पति को छोड़कर दूसरा साथी या दूसरा पति चुनना और अपनी पसन्द के पति के साथ जीना, आदिवासी स्त्री को अधिक पसन्द है। इस व्यवहार को आदिवासी समाज मान्यता देता है, उसका बहिष्कार नहीं करता।”¹⁴

आदिवासी समाजों में सामान्यतया विवाह एक धार्मिक संस्कार के रूप में कम तथा एक समझौते के रूप में अधिक है। जीवनसाथी के चुनने का तरीका तथा विवाह के स्वरूप उनकी स्थिति के द्योतक के रूप में है। ये तरीके सर्वाधिक बर्बरता से लेकर पर्याप्त विकसित मानव समाजों के जीवन साथी के चयन के तरीकों तक समानता रखते हैं। जहाँ एक ओर कतिपय आदिवासी समाजों में विवाह योग्य लड़के तथा लड़कियों को जीवनसाथी के चुनने की पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त है, वही विवाह की सभी तैयारियाँ माता-पिता द्वारा की जाती हैं।

अपहरण तथा क्रय द्वारा किया जाने वाला विवाह स्त्रियों की दयनीय स्थिति की ओर संकेत करता है। भील, गौड आदि आदिवासियों में इस प्रकार से देखा जा सकता है। अधिकतर समाजों में स्त्रियों को जीवन साथी चुनने की आजादी होती है।

आदिवासियों में विवाह के लिए अलग-अलग नियम होते हैं। एम. वीरप्पा मोयिलि के ‘कोट्टा’ उपन्यास में कोरग आदिवासियों में विवाह के लिए जूठन इकठ्ठा

करना होता। जितना ज्यादा जूठन इकट्ठा किया जाता है, उस परिवार में लकड़ी देना अच्छा माना जाता है। पीचलु के पिता मल्लय्या को बताते हैं कि- “यहाँ के ब्राह्मण हमें अपनी जूठन उठाने के लिए कहला भेजते हैं। यह प्रथा हमारे बाप-दादाओं के जमाने से चली आयी है। इस सबको उठाकर हम इसे पानी में धोकर पत्थर पर सुखाते हैं और लड्डू बनाकर रख लेते हैं। यही हमारे लिए छह महीने का आहार है। हमारे जमाने में जो इसका ज्यादा से ज्यादा संग्रह करके रखता था उसे कोट्टा वाले अपनी लड़की देना ज्यादा पसन्द करते थे।”¹⁵

थारु आदिवासियों में महिलाओं की सामाजिक स्थिति अच्छी नहीं। वहाँ पर स्त्री को सिर्फ खरीदा-बेचा जाता है। उसे देह-व्यापार की वस्तु समझा जाता है। संजीव के ‘जंगल जहाँ शुरु होता है’ में निम्नलिखित कथनों से इनकी स्थिति को समझा जाता है-

“एक गो जनाना का कसूर कितना बड़ा हो गया कि कोई अपने ही भाई से, अपनी ही घर में अपने ही सामने उसकी इज्जत लुटवाने पर अमादा हो जाए।”¹⁶

“नरैना ने अब तक पूरी तरह नंगा कर दिया था पड़ियाइन को और काली के एक ही धक्के में फेंकन उस नंगी औरत के ऊपर जा बहराया था।”¹⁷

“बस इसी के लिए कुत्ते की तरह आए थे दबे पाँव, आपकी औरतें तो इज्जतदार हैं, ऊँची जात के बड़े लोग! हम गरीब नीच जाति की औरतों की क्या इज्जत? खुला दरवाजा है, जो चाहे मुँह भार ले।”¹⁸

“हमरा कसूर बस एतना है कि गरीब हैं, औरत जात हैं, जो ही आता है, डरा-धमका के जबरजस्ती करने को मगजूर (मजबूर) करता है।”¹⁹

“अब सवाल रहा लड़कियों के मिलने का, तो राम जी की दया से उनकी पैदावार कुछ ज्यादा ही है और अपने यहाँ वह आफत ही समझी जाती हैं। नून चटाने से भी अब नहीं मरतीं, जैसा- तैसा खाकर भी तैयार हो जाती है। दहेज की मार है।

फिर किस घर में झगड़ा-टंटा, मुँह-फुलौवल नहीं होती! बस ऐसी औरत का पता करना है, उससे मेल-जोल बढ़ाकर उसके मन को परिवार से अलगाते रहो और मौका पाते ही निकाल ले जाओ। वैसे भी घर से भागी, घर से निकाली गई या चूसकर छोड़ी गई औरतों की कोई कमी है क्या! अब रहे खरीददार, तो रंडुए, ऐयास, ठेकेदार, बनिए, यहाँ तक कि मास्टर और पुजारी तथा बाल ब्रह्मचारी भी-औरत किसे नहीं चाहिए कोई बोलता है, कोई नहीं, बस ऊपरी लोक लाज का एक छिलका-भर है, मौका मिलने पर कोई नहीं छोड़ता है।”²⁰

उपर्युक्त सभी बातों से स्पष्ट होता है कि थारु आदिवासियों में स्त्री को एक वस्तु समझा जाता है। दुःख की बात तो यह है कि इन सभी कार्यों में एक महिला ही पुरुषों का साथ देती है। जिस समाज में महिला की स्थिति सम्मानजनक नहीं होगी वह समाज कभी उन्नति नहीं करेगा।

सामान्य तौर पर आदिवासी समाजों में विवाह युवावस्था में ही किया जाता है, किंतु आधुनिकता के प्रभाव स्वरूप बाल-विवाह का प्रचलन भी देखा जा सकता है। इसके साथ ही साथ दहेज प्रथा जैसी कुप्रथा का प्रचलन भी बढ़ा है। राजस्थान के मीणा आदिवासियों में बाल-विवाह तथा दहेज प्रथा का प्रचलन अधिक है। स्त्री शिक्षा के प्रसार ने बाल-विवाह जैसी कुप्रथा पर थोड़ा अंकुश अवश्य लगाया है।

“मीणों में भी बहु-विवाह की प्रथा प्रचलित रही है, साथ ही नाता प्रथा का भी प्रचलन रहा है, जैसे कोई विधवा औरत दूसरे आदमी से शादी करके जिंदगी बसर कर सकती है भले ही वह पहले से शादीशुदा क्यों नहीं हो। ऐसी स्थिति में शादी की रस्मों जैसी कोई क्रियाएँ नहीं होगी बस सादे ढंग से दूसरी औरत को घर में ले लिया जाता है। कई बार पत्नी अपने पति से मनमुटाव के कारण भी घर छोड़कर दूसरे के साथ रहना शुरू कर देती है ऐसी स्थिति में दूसरे वाले पति द्वारा पहले पति को हर्जाने के रूप में कुछ मुद्रा दी जाती है पर अब इस जनजाति के लोगों के शिक्षित होने और सरकारी नौकरियों में स्थान प्राप्त करने पर ये प्रथाएँ धीरे-धीरे खत्म हो रही है।”²¹

आज भी अनेक आदिवासियों में अधिक आयु में विवाह की प्रथा है। जैसे-भोट्या, तंगसा, नागा तथा कूकी आदि आदिवासियों में अधिक आयु में विवाह के नियमों का पालन किया जाता है। लेकिन इस प्रकार के अधिकांश आदिवासी वे हैं जो समाज से दूर एकान्त में निवास स्थानों पर रहते हैं तथा सांस्कृतिक सम्पर्क में नहीं हैं।

उत्तरी-पश्चिमी हिमालय की घाटियों में बसने वाले खस आदिवासियों में बहुपति प्रथा का चलन है। वर्तमान समय में माता-पिता द्वारा तय किये गए विवाह का प्रचलन बढ़ गया है।

“आदिवासी समाज में स्त्री को मनुष्य खाने वाली डायन कहकर कुचला जाता है। उसे बिन बुद्धि की बड़-बड़ करने वाली स्त्री कहकर उसकी सम्भावित भागीदारी गाँव पंचायत में नकारी जाती है। दहेज देकर आदिवासी को खरीदा जाता है और समाज में स्त्री से वस्तु या सामान अथवा गुलाम की तरह व्यवहार किया जाता है। एक से अधिक पत्नियाँ रखने का रिवाज होने के कारण और उससे पैदा होने वाले झगड़ों को ‘स्त्री विरुद्ध स्त्री’ का रूप देकर कुचला जाता है। दारु पीकर स्त्री के साथ बेदम मारपीट की जाती है।”²²

“दक्षिणी छोटा नागपुर की ‘हो’ तथा अन्य जनजातियों की औरतें, जो अधिक घने जंगलों के आसपास रहती हैं और जिन पर अभी पूर्णतया औद्योगिकीकरण का प्रभाव नहीं पड़ा, वे अभी भी पुराने रीति-रिवाजों, डायन और भूत-प्रेतों की परम्पराओं में उलझी हुई हैं, हांलाकि आर्थिक मामलों में पुरुषों से कम नहीं हैं। इसके विपरीत जहाँ औद्योगिक विकास से रीति-रिवाजों व कुरीतियों की पकड़ ढीली पड़ चुकी है। वहीं वे गिरते मूल्यों तथा ‘यौन शोषण’ की शिकार होने के साथ-साथ एक अधकचरी-मध्यवर्गीय, मानसिकता की शिकार भी होती जा रही हैं। कई बार तो इन क्षेत्रों की औरतें और उनके पति किसी औरत को डायन करार कर देते हैं। जिस औरत को बच्चा नहीं होता हो, जो औरत कई बार शादी करके विधवा हो चुकी हो और वह वाचाल हो अथवा जिस औरत के साथ किसी प्रकार का कोई अतीत जुड़ा हो, गाँव

में कोई हादसा हो जाने पर उसकी सारी जिम्मेदारी ऐसी ही किसी 'डायन' करार कर दी गई औरत के ऊपर मढ़ दी जाती है, जिसे आर्थिक और शारीरिक दोनों प्रकार के दण्ड दिए जाते हैं। कभी-कभी तो उसे इतना पीटा जाता है कि उसकी मृत्यु तक हो जाती है। उन्हें मल-मूत्र तक खाने के लिए मजबूर किया जाता है।”²³

मुण्डा आदिवासियों में भी औरत को समाज में सम्मान प्राप्त नहीं है। महाश्वेता देवी के 'जंगल के दावेदार' उपन्यास में दरोगा साली से कहता है। सो देख, आदमी हुआ शिव का अंश वे बिगड़-बिगड़ा भी सकते हैं। मैं खुद औरत की खूब पिटाई करता हूँ लेकिन औरत एक बात नहीं कहती। मुण्डा औरतें भी कैसी होती हैं यही जो तूने बात कही ? यह क्या लड़के-लड़कियों की बातें हैं ? इससे शादी करेंगे, इसे मन में बैठा लिया है, वह पसन्द नहीं है-तुम लोगों में लाज-शरम नहीं है ? कपड़े पहनोगी ऊँचे करके चलोगी लड़कों की तरह लड़की-लड़के जब औरत-मरद हो जाते हैं, तो जात की मौत होती है।²⁴ जिस समाज में पुरुषों की स्त्री के प्रति ऐसी सोच रहेगी वो कभी आगे नहीं बढ़ेगा।

सीता-मौसी उपन्यास में रमणिका गुप्ता ने कोयला-खदानों में काम करने वाली स्त्री के बारे में कहा है- “यहाँ पर औरतों को मरद चुनने और बदलने की काफी छूट है। सती-सावित्री बनकर जीवन भर एक ही मरद के साथ रोते-गाते, पिटते-पिटाते, जुल्म सहकर, भूखे पेट रहकर जिन्दगी काटने का मध्यमवर्गीय शोषक गठबन्धन, फाँसी की तरह उनके गले में नहीं पड़ा रहता। वे पुरुष की तरह ही जब मन हो गाँठ खोलकर दूसरे से रिश्ता जोड़ सकती है और जोड़ती है, भले इसके लिए दोनों जनी-मरद को कोई आर्थिक, सामाजिक या धार्मिक दंड क्यों न भरना पड़े ? आजकल यह रिवाज़ कम हो रहा है। ज्यों-ज्यों मजदूर ज्यादा पैसा पा रहा है, मध्यमवर्गीय मानसिकता का शिकार होते जा रहा है। उसे बदलने के प्रयास न श्रमिक संगठनों ने किए, न राजनीतिक संगठनों ने।”²⁵

अधिकांश आदिवासी समाज में स्त्री को प्रेम करने की स्वतंत्रता, वर का स्वयं चुनाव करना, दहेज प्रथा का न होना, स्त्री-पुरुषों का एक साथ मिलकर खाना-पीना व त्योहारों में खुले आम भाग लेना और नाचना-गाना आदि स्वतंत्रता होती है। जो गैर-आदिवासी महिलाओं को नहीं होती है।

“राजस्थान में अट्ठाईस गांवों के आदिवासियों की एक पंचायत है जिसे अट्ठाईसा कहते हैं। वहाँ मीणा पुरुष की कोई मीणा पुरुष हत्या कर दे तो उसे और उसके परिवार को देश निकाला की सजा दी जाती है तो इस स्थिति में कानून तो अपना काम करेगा ही किन्तु यह पंचायत बहुत ही उदार रुख अपनाते हुए गंगा-स्नान और सवा किलो भुने हुए चने व गुड़ तथा सवा किलो कबूतरों के लिए ज्वार की सजा सुनाती है, पर स्त्री के हत्यारों को सजा नहीं सुनाती। यानी वह पंचायत मीणा पुरुष की हत्या करने वाले मीणा समाज के पुरुष अपराधी व्यक्ति को ही गांव से निष्कासित करने की सजा सुनाती है, स्त्री के हत्यारे को नहीं। यह सरासर पक्षपातपूर्ण तथा पुरुष-प्रधान समाज की ‘स्त्री-विरोध मानसिकता का परिचायक है।”²⁶

“दरअसल हमारे धर्म, हमारी संस्कृति, हमारी परम्परा और प्रथाओं के कारण मानवीय विवेक पुरुषों में भी कम हुआ है। फिर स्त्री को तो पैदा होते ही ये पाठ पढ़ाया जाता है कि पुरुष की सुरक्षा में ही जीना उसके भाग्य में है- उसी के लिए उसे जीना है उसी के लिए मरना है। उसका घर संभालना है-पति कैसा भी हो उसी के साथ गुजर करनी है। औरत का बाहर से भला क्या काम ? ये तो मर्दों का काम है। बचपन में ही उसे औरत और मर्द के कार्यों का बँटवारा समझा दिया जाता है। इसीलिए अनजाने में यदि सामाजिक दबाव के कारण औरत को इच्छानुसार वरण का अवसर मिलता भी है तो संकोचवश वह उसे ग्रहण करने का साहस नहीं जुटा पाती। पहल करना वह स्वयं ही पुरुष का विशेषाधिकार मानती है। इसलिए वह साहित्य में अपने कई ज्वलन्त प्रश्नों को नहीं उठा पा रही है। उनकी परम्परागत झिझक तो बाधक है ही, पुरुष की असहनशीलता भी बाधक है। पुरुष चाहे साहित्यकार ही क्यों न हो वह औरत की बेबाकी पर मजा तो लेता है पर उसे समझने और आदर देने की आदत उसे अभी भी नहीं पड़ी है।”²⁷

आदिवासी महिलाएँ स्वावलंबी होती हैं। वो स्वयं ख़ट-कमाकर अपने परिवार का पालन-पोषण करती हैं। ऐसी महिलाओं को सम्पत्ति में हिस्से का हक न होने की वजह से विधवा या परित्यक्ता होने पर अपमानित, प्रताड़ित या उनकी हत्या कर देना आजकल आदिवासी समाज में आम बात हो गई है। जिससे इनके भरण-पोषण का भार किसी ओर को न उठाना पड़े।

“शादी के बाद आदिवासी समाज में औरतों को छोड़ने का प्रचलन जोरों पर है। वैसी स्थिति में लड़की कहीं की नहीं रह जाती क्योंकि आदिवासी समाज में परम्परागत व्यवस्था के आधार पर महिलाओं को पंचायत में बैठने की मान्यता नहीं है। वह अपनी समस्या भी घर के किसी पुरुष के माध्यम से ही पंचायत के समक्ष पेश करानी पड़ती है। शराब की बोतल और मुर्गे पर बिकने वाली न्याय-व्यवस्था विधवा एवं असहाय महिला के पक्ष में बहुत कम न्याय दे पाती है। आदिवासी स्त्री नियति का बड़ा सवाल सम्पत्ति से जुड़ा है। आज तक वह चल-अचल सम्पत्ति में कानूनन अधिकारी नहीं हो पाई है। परम्परागत व्यवस्था के आधार पर यदि समाज चाहेगा तो उसे सम्पत्ति में हिस्सा मिलेगा, नहीं तो महिला को उसका अधिकार नहीं मिलेगा। वैसी स्थिति में विधवा महिला को डायन कह कर हत्या करना, घर से निकाल देना, जैसी घटनाएँ रोज घट रही हैं।”²⁸

रमणिका गुप्ता ने सीता-मौसी उपन्यास में यासीन से विवाह करने के बाद सीता अपने आप को सुरक्षित महसूस करती है। लेकिन धीरे-धीरे यासीन अपनी जात की महिला से निकाल करना चाहता था। “उन सबके लिए औरत का आधार तब भी कोई मायने नहीं रखता था। सच तो था कि पुरुष-दम्भ ही सीता की त्रासदी का कारण था पर इस सत्य को स्वीकारने की बजाय, सब दूसरे कारण ही ढूँढने में लगे थे। इस मायने में औरत का महत्त्व उस अनुपाततः अधिक मुक्त समाज में भी नहीं ही था। इस समाज में भी औरत को छोड़ देना, रख लेना मामूली बात है, लेकिन वहाँ औरत को मर्द छोड़ने की छूट है।”²⁹ इस समाज में औरतों को छोड़ना बुरा नहीं माना जाता है।

मैत्रेयी पुष्पा के 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में राणा अल्मा से प्रेम करता है लेकिन राणा एक दिन अल्मा को छोड़कर आ जाता है और उसका विरोध करती हुई कहती है- "मर्द किसी औरत के रोने का मतलब नहीं समझ सकते। उनके चलने औरत का रोना कुत्ते के रोटी उठा ले जाने पर रोने जैसा होता है। तभी तो राणा उसे छोड़ आया, वह भी तो मर्द है, मेरा बेटा है तो क्या?"³⁰

'जो इतिहास में नहीं है' उपन्यास में राकेश कुमार सिंह ने रेल विभाग के टिकेदारों की मनमानी इस प्रकार किया है- "राजमहल क्षेत्र के रेल मजदूरों की स्थिति टुकटुक ताकती रहने वाली उस बकरी की भाँति थी जिसकी आँखों के सामने से उसके छौने को उठा ले जाता है कसाई। रिरियाती-गिड़गिड़ाती आदिवासियों को खिंचती देख माथे पर हाथ रखे मूक ताकते रहते थे निर्बल आदिवासी। प्रायः घायल स्तनों, खरोचों से भरे चेहरों और रक्त के थक्कों से लिथड़े योनिकेशों के साथ तम्बुओं से बाहर फेंक दी जाती थी आदिवासी बेटियाँ, बहुएँ, बहनें, नातिनें, पोतियाँ....।"³¹ आदिवासी पुरुष तो समाज में महिलाओं को बराबरी का हिस्सा देना नहीं चाहता। साथ ही गैर-आदिवासी पुरुष भी उसका सम्मान नहीं करता।

आदिवासियों में औरत को गिरवी रख दिया जाता है। मैत्रेयी पुष्पा के 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में दुर्जन अल्मा से कहता है- "अल्मा तू गिरवी धरी है, समझे रहना। भला। इसमें बुराई भी नहीं। हम कबूतराओं में तो यह चलन रहा है- जेवर-गहना-बासन और बेटी मुसीबत के समय काम आते हैं। अब तू मेरी खरीदी हुई...।"³² जिस समाज में महिला को खरीदा-बेचा जाता हो, भला वो समाज स्त्री को क्या सम्मान देगा। "क्या होगा इस समाज का? क्या होगा इस औरत का? जिसे न आदिवासी अपना समझता है न दिकू ही अपना कहता है। वह न गाँव की रही, न शहर की।"³³

आदिवासियों में युवागृह होते हैं। जहाँ अविवाहित किशोर-किशोरियों को रखा जाता है। यह एक सामाजिक संस्था होती है। "आदिवासियों के युवागृह को कहीं घोटुल कहा जाता है तो कहीं रंग-बंग। मुण्डा इसे गितिओरा कहते थे तो उरॉव

धुमकुड़िया।”³⁴ जो अपना समय इन युवाग्रह में अपना नहीं बिताते वो सामाजिक जीवन की बहुत सारी बातों से वंचित रह जाते थे। “व्यवस्था यही होती है कि एक ही विशाल प्रांगण हो जिसके चारों ओर किशोर और किशोरियों के लिए अलग-अलग झोंपड़ियाँ निर्मित हों पर लड़के-लड़कियाँ धुमकुड़िया के मुखिया-महतो या उसके सहायक-कोतवार की नजर बचाकर एक दूसरे से मिलते-जुलते भी हैं। आदिवासी समाज में विवाह पूर्व आपसी सहमति से बने यौन-सम्बन्ध जघन्य अपराध नहीं जाने जाते अतः धुमकुड़ियाँ यौन-शिक्षा का प्रशिक्षण स्थल भी होता है क्योंकि यौन-सम्बन्धों के होते हुए भी स्वगोत्रीय विवाह की अनुमति नहीं होती।”³⁵

इस युवा गृह में किशोर अपने मनपसन्द जीवन-साथी को भी चुनते हैं। “किसी लड़की से मन मिला तो एक-दूसरे को समझते थे। मन-तन को टटोलते थे। आपसी समझ और तालमेल बैठ सका तो ऐसे सम्बन्धों का निर्वाह भी किया जाता था। बात ब्याह तक भी पहुँच सकती थी अन्यथा पहली ही भेंट में बात समाप्त और प्रायः दोनों पक्ष एक-दूसरे के लिए नये-नये हो लेते थे।”³⁶

मैत्रेयी पुष्पा के ‘अल्मा कबूतरी’ उपन्यास में गैर आदिवासी लोग कबूतरा जनजाति को बदनाम किये हुए हैं। वे जबर्दस्ती उनकी बहन बेटियों को उठा ले जाते हैं। इन सब बातों से अल्मा को बहुत दुःख होता है। अल्मा सोचती है- “वे तो जो करते हैं बहुत कम करते हैं, मेरी तरह ही तुम्हारी लड़कियों को हाथ-पाँव बाँधकर उठा ले जाँ और मनमानी तरह से उसे चीड़े-फाड़े, हिसाब तब पूरा होगा।”³⁷

वैसे तो इनमें विवाह पूर्व यौन सम्बन्धों पर प्रतिबन्ध नहीं है। “आदिवासी समाज में यौन-सम्बन्ध विवाह की अनिवार्यता से बँधे नहीं होते। विवाहपूर्व के यौन-सम्बन्धों पर सामाजिक प्रतिबन्ध भले होते हों पर नैतिक प्रतिबन्धों में स्वीकार्यता हेतु पर्याप्त स्थान होता है।”³⁸ लेकिन इनमें सजातीय विवाह निषेध होते हैं।

गैर आदिवासी पुरुष आदिवासी महिलाओं को मन बहलाने की वस्तु मानते हैं। रमणिका गुप्ता के सीता-मौसी उपन्यास में सलीम का बड़ा भाई मौसी के लिए

कहता है- “ये आदिवासी लोग तो खेती के कीड़े होते हैं। इनकी औरतें तो मरदों से भी ज्यादा काम करती हैं। मरद तो महुआ पीके पड़ा रहता है। कमा के तो ये ही लाती है। अरे औरत को क्या चाहिए ? दो जून खाना, कपड़ा-लत्ता और रहने को घर। सो इसमें तो हम कभी कमी नहीं होने देंगे। मन बहलाने को उसे बच्चा भी मिल गया है। पालेगी, इस छोटे शहजादे को।”³⁹

इसी प्रकार मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास ‘अल्मा कबूतरी’ में संतोले की बहू कहती है कि- “वह तो मर्द के लिए सौ सुखों का सुख स्त्री-सुख मानती है।”⁴⁰ इसी उपन्यास में लोकमन पंडित कहते हैं- “औरत और थाली, प्यार से परसी हुई ही संतोष देती है। छीनकर खाने में क्या मजा ? आदमी माँ और जोरु से ताजिंदगी चिपका ही रहता है। चाहे-अनचाहे भी!”⁴¹

रमणिका गुप्ता के सीता-मौसी उपन्यास में मौसी मौलवी की मृत्यु के बाद जब घर लौटती है तो उसे समाज दोबारा अपनाने के लिए ‘भोज-भात’ की रस्म करने को कहता है। “बिरादरी में मिलने या मिलाने के लिए भोज-भात की रस्म जरूरी होती है, तभी सामाजिक बहिष्कार समाप्त माना जाता है। भोज-भात की रस्म जरूरी होती है, तभी सामाजिक बहिष्कार समाप्त माना जाता है। भोज-भात-यानी खाना-पीना मनुष्य को जिन्दा भी करता है और मारता भी है। कितना सच भी है यह बिरादरी में! मनुष्य से अधिक महत्व है भोजन का। ‘मरल (मरी हुई) मौसी भोज के बाद फिर जिन्दा मान ली जाती। बिरादरी के धर्मराज के सामने जाने कितनी बार जीते-जी, मरती और जीती हैं ये आदिवासी लड़कियाँ।”⁴² आदिवासी समाज में स्त्री के साथ ऐसी ही रस्में निभाई जाती हैं।

इनमें विवाह करने के लिए पुरुष किसी भी हद तक चले जाते हैं। राकेश कुमार सिंह के ‘जो इतिहास में नहीं है’ में हारिल मुरमू संताल है, जो उराँव लड़की लाली से प्रेम करता है लेकिन संताल और उराँव आदिवासियों में वैवाहिक सम्बन्ध नहीं होते हैं। इस कारण हारिल मुरमू लाली से इटूट ब्याह करना चाहता है।

“इटूट ब्याह में न बराती होते हैं, न कोई बिचौलिया। सामाजिक रीति-रिवाजों को ठुकराकर होता है ‘इटूट बापला’। इटूट में मनपसन्द लड़की को लेकर जंगल में भाग जाता है लड़का जहाँ अपनी गवाही में सिन्दूर दान करता है। ऐसे युवक के विवाह से पूर्व पकड़े जाने पर बिटलाहा भी किया जा सकता है...सामाजिक बहिष्कार। बहुत साहसी युवक ही ‘इटूट’ जैसा खतरा मोल लेता है।”⁴³ इस समाज जो एक बार वचन दे देता है, उसे निभाता जरूर है। हारिल मुरमू ने भी लाली से विवाह करने के लिए ऐसा किया।

आदिवासी समाजों में पुरुष स्त्री को एक वस्तु समझता है। रमणिका गुप्ता के सीता-मौसी उपन्यास में मौसी के बारे में कहा गया है- “ऐसे समाज की औरत जहाँ, वह केवल एक ‘जिन्स’ (चीज) समझी जाती है- मनुष्य नहीं! हर ‘जिन्स’ को संभालकर रखने वाले बलिष्ठ हाथों की जरूरत उसे होती है, जो उसे साफा-सुथरा रखें, उसे टूटने-फूटने से बचाएँ, गुम होने, लूटने-लुट जाने से बचाएँ, उसे निखारे-सँवारे और प्रेम करें, भोगें और अपने कब्जे में रखें भी, अपना कहे, अपनाएँ। यह तो आदमी की फितरत है कि वह खुद सोच सकता है, निर्णय ले सकता है पर औरत को सोचने की क्या जरूरत? वह तो बस औरत है न! उसके लिए तो सोचने के लिए बाकी सब मादवन हैं ही। वह तो ‘जिन्स’ है न जो जिन्स, अपने बारे में सोचा नहीं करती।”⁴⁴ एक स्त्री सिर्फ पुरुष का साथ चाहती है। जो उसके हर दुःख-दर्द में साथ दे, परन्तु पुरुष उसे एक वस्तु समझ बैठता है।

आदिवासियों में वचन निभाने की परम्परा है। राकेश कुमार सिंह के ‘जो इतिहास में नहीं है’ उपन्यास में शंख रुण्डा अपने गुरु को गुरु दक्षिणा के रूप में अपनी पत्नी लाली को दे देता है। यहाँ पर स्त्री को भी दौंव पर लगा दिया गया है। पंचायत बैठाई जाती है, जिसमें लाली भी आती है। “पुरुषों की पंचायत में लाली के सम्मान से अधिक गहन विमर्श का विषय था उर्रों की आन। पुरुष जाति का मान सर्वोपरि था। इस बहस में लाली की इच्छा-अनिच्छा का प्रश्न गौण था। मुख्य था पुरुषों द्वारा स्थापित रीति-रिवाजों की रक्षा प्रश्न...”⁴⁵

इसी पंचायत में शंख रुण्डा लाली को 'चीज' कहता है। इस बात पर लाली क्रोध में आकर कहती है- "चीज नहीं है हम-अब तक मौन बैठी लाली चीख उठी थी-माटी का ढेला बूझता है हमको रे निरबंसिया ? बकरी-छेरी बूझता है। हमको 'चीज' कहता है रे मऊगा।"⁴⁶

मुण्डा आदिवासियों में स्त्री-पुरुष बराबर काम करते हैं, बराबर खटते हैं, बराबर सम्मान पाते थे। मुण्डा समाज में माँ का सम्मान बहुत होता है।

रमणिका गुप्ता के बहू-जुठाई कहानी संग्रह में जिरवा और उसकी माँ का पुरुषों द्वारा उपभोग किया गया। "दोनों बड़ी आसानी से एक मरद से दूसरे के हाथों में फिसलती रही थीं, जैसे इनका अपना कोई अस्तित्व ही न हो, अपनी कोई मरजी ही न हो।"⁴⁷

आगे रमणिका गुप्ता कहती है- "मरदों ने कितना उपभोग किया। दोनों का! उन्हें कितना भोगा, कितनी ठोकरें मारी, कितना प्रताड़ित किया, कहाँ-कहाँ नहीं भटकी दोनों ? कोर्ट-कचहरी तक चढ़ी और चढ़ाया पर मरद तो आखिर मर्द ही है न! जबर है। कोर्ट का आर्डर तो चुटकी में उड़ा सकता है। 'कागद' ले घूमती रही जिरवा-माय, पर 'काचा' (रुपया), जात की 'टाँगी' (कुल्हाड़ी) की धार, मरद के अहम् की लाठी और बिरादरी की सुग्गे-सी तीखी नाक के सामने 'कागद' की क्या औकात है ? पंचों के फरमान और हुक्का-पानी बन्द के फतवे के आगे, भला कहाँ टिकेगा औरत के अधिकारों और गुजर-बसर के खर्चे का कानून ?"⁴⁸

इसी तरह 'जो इतिहास में नहीं' उपन्यास में लाली पंचायतों के फैसले के खिलाफ नहीं जा पाती है। अंत में वह मुखिया के पैरों में गिड़गिड़ाते हुए कहती है- "मरद लोगन की बात रह गयी पहान! हमरी तो जात ही नई। बकरी हैं हम। बात कौन सुने। जूठी थरिया हैं हम....शंख ने लतियाकर हारिल के आगे कर दिया हमें...। तूने भी न्याव नहीं किया पहान....।"⁴⁹ यहाँ तक की उसके रोने को अपशगुन मानकर पाहन उसे पंचायत से ले जाने का आदेश देता है।

पंचायत के ऐसे फैसले से समाज की नाक नहीं कटती है, जो दूसरे के पत्नी को दूसरे पुरुष के साथ भेज दे। यही काम अगर स्त्री किसी गैर-आदिवासी से विवाह करती है, अगर उसे वापस समाज में आना होता है तो भोज-भात देना होता है। “सवाल औरत का नहीं था। सवाल था समाज की कटने वाली नाक का। नाक, जो भोज-भात करने पर जुड़ जाती है। कोई समर्थ सामने आ जाए तो नाक कटती ही नहीं। दबी नाक भी ऊँची हो जाती है या कटकर तुरन्त आ जुड़ती है, जैसे कभी कहीं कुछ हुआ ही न हो। कटने का निशान तक बाकी नहीं रहता। कमजोर लोगों की नाक ज्यादा और जल्दी कटा करती हैं। समर्थ की नाक सख्त और समर्थ होती है न।”⁵⁰

रमणिका गुप्ता के सीता-मौसी उपन्यास में मौसी अपनी तुलना जानवरों से करती हुई सोचती है कि- “उस मुर्गी से जिसे उसने अभी-अभी काटकर रँधा था, कहाँ फरक है वह ? कोई-न-कोई मरद हर औरत की मुंडी मुर्गी की तरह ही मरोड़ने को तैयार रहता है। पंख नोचता है कि उड़े नहीं, बोटी-बोटी काटता है- पकाता है कि खा सके, पचा सके। अपने से कुछ भी तो नहीं है औरत। वह तो बस दूसरों के खाने के लिए ही बनी है...! बस एक पकवान है वह। कटोरी में परसा शोरबा है- जिसके आगे कटोरा परसा जाता है वह उसे चटखारे लेकर चखता है-पीता है। वह तो मात्र चखना जो दारु के नशे को और तेज करता है- स्वाद को बढ़ाता है। वह स्वयं कुछ नहीं है शायद। मरद के हाथों की कठपुतली है। चाहे सलीम नचाये, चाहे उसका बाप मौलवी, चाहे भगवान बाबू, चाहे मोहना। उसे माधो चुनने का, उसे अपने मन माफिक अपना साथी चुनने का, जो अपने सुख-दुःख में मददगार बन सके-अधिकार नहीं है। सभी को उससे नफरत करने का हक जरूर प्राप्त है। पूरी दुनिया को उस पर दया करने की भी छूट है, लेकिन उसे बराबर मानने का दस्तूर नहीं है। उसे याद आया गाँव का वह कुत्ता जो पड़ोसिन की कुतिया के लिए काँऊ-काँऊ करता उसे सरे आम घसीटता फिर रहा था। उसे याद आए बाड़े के वे साँड, वे भैंसे जो दिन दिहाड़े गाय या भैंस को दौड़ाते फिरते हैं! कहाँ फरक है मरद जात और इन जानवरों में।”⁵¹

अन्त में यही मौसी अनेक पुरुषों के द्वारा ठगे जाने के बाद निर्णय लेती है कि- “ नहीं बनना है उसे अब किसी बुढ़ऊ की जिन्दगी का सहारा । ना ही उसे किसी बच्चे के भविष्य का सम्बल बनना है । खुद वह ही गढ़ेगी अपना भविष्य । औरत जात का भविष्य । वह तो जन्मजात माँ है न । ममता तो उसकी रग-रग में भरी है । वह आज तक सभी को पोसती आ रही है । अब वह उन्हें पोसेगी, जिन्हें उसकी जरूरत है ।”⁵² यही फैसला मौसी अगर पहले ले लेती तो वह पुरुषों के द्वारा छली ही नहीं जाती ।

“अध्याय तो रोज बदलते हैं, हर औरत की जिन्दगी में एक के बाद एक आते हैं- जाते हैं! अपनी जिन्दगी के वरक पर औरत स्वयं नहीं लिखती, दूसरे लिखते हैं । वह तो लिखी जाती है- पन्ने पलट जाते हैं । दूसरा अध्याय शुरु होता है । लिखने वाले बदल जाते हैं । कोई और आ जाते हैं । कलम-स्याही और हाथ भी और! पन्ना भर बस उसी की जिन्दगी का होता है । वह खुद तो बस लिखी जाती है । वरक पर स्याही फेंककर लिखावट खत्म करने का प्रयास भी होता है- या पन्ना फाड़कर ही लिखे हुए को भुलाने या मिटाने का भी ।”⁵³

संताल आदिवासी समाज में विधवा एवं परित्यक्ता भी पुनर्विवाह कर सकती है । वह दोबारा अपना परिवार बसा सकती है, लेकिन ऐसा माना जाता है कि विवाह के बाद यदि पुत्र का जन्म होता है तो माँ पूजा स्थल में जा सकती है, प्रसाद ले सकती है । अगर बेटी पैदा होती है तो इन सब बातों पर बंदिश लग जाती है ।

संताल आदिवासी समाज में सबसे अच्छी बात यह है कि यहाँ दहेज के नाम पर महिलाए आत्महत्या नहीं करती । धीरे-धीरे अब इनमें भी शहरी सभ्यता के सम्पर्क में आने के कारण दहेज का प्रचलन बढ़ रहा है ।

पुरुषवादी समाज में प्रायः स्त्री के स्वाभिमान को ठेस पहुँचायी जाती है । “तुम औरत हो, तुम पुरुषों की गुलाम हो, चुल्हा जलाना और बच्चों की देखभाल करना इतना ही तुम्हारा काम है, कहकर स्त्रियों के स्वाभिमान और स्वावलंबन का भी हनन किया जाता है । यदि औरतें अपने सम्मान के लिए लड़ाई लड़े तो इस लड़ाई का

समर्थन कितने पुरुष करेंगे ? आदिवासी समाज में व्याप्त पुरुषवाद से प्रभावित आदिवासी स्त्री दुःखित है। वहाँ भी जनजातीय ऊँच-नीच के आधार पर सामाजिक विषमता है तो वर्गीय शोषण के आधार पर गरीब-अमीर का विभेद भी व्याप्त है।”⁵⁴

“स्त्रियाँ आदिवासी समाज का आधा हिस्सा हैं। उनमें भी साहित्य, कला, कौशल के गुण हैं। आदिवासी समाज में ऐसी कुछ परम्परागत मान्यताएँ रुढ़ियाँ हैं, जो आदिवासी स्त्री की प्रतिभा के विकास में रुकावट बनती है। पुरुष प्रधान व्यवस्था के दबाव तले उसके भीतर मौजूद पनपते सभी कला-गुणों को दबाया जाता है, नष्ट किया जाता है।”⁵⁵

महिला की सामाजिक स्थिति का पता उसकी परिवार में स्थिति पति-पत्नी के अधिकार और कर्तव्य, विवाह के पूर्व कन्या के अधिकार और कर्तव्य आदि बातों से चलता है। अपवाद तो सभी समाज में होते हैं, सामान्य रूप से आदिवासी समाजों में महिलाओं की स्थिति पुरुष से कम नहीं है।

“पुत्र-पुत्रियों के अधिकार लगभग समान होते हैं और पुत्रों के समान पुत्रियों को भी घूमने-फिरने की स्वतंत्रता होती है। जहाँ कुमार गृहों की संस्था है वहाँ लड़के लड़कियाँ सभी कुमार गृहों में रहते हैं और उनके कार्यों में कुछ अन्तर होने पर भी उनकी स्थिति में अन्तर नहीं होता। जनजातीय स्त्री को विवाह में स्वतन्त्र चुनाव करने की भी स्वतंत्रता होती है। इसी प्रकार तलाक के नियम भी स्त्री-पुरुष दोनों के लिये एक से ही होते हैं। कुवेद की प्रथा से तो सन्तानोत्पत्ति के समय पति भी पत्नी के समान कठोर जीवन व्यतीत करता है। यौन सम्बन्धों की स्वतंत्रता के विषय में भी स्त्री पुरुषों के लिये एक से नियम होते हैं।”⁵⁶

आदिवासी समाज में बहुत सी ऐसी बातें हैं, जिनसे स्त्रियों को आगे बढ़ने से रोका जाता है। पुरुषवादी समाज में उसे कोई अधिकार नहीं दिए जाते हैं। आज आदिवासी समाज में औरतों को लेकर सोच में परिवर्तन होना चाहिये। तभी उन्हें बराबरी का हक मिलेगा।

राजनैतिक क्षेत्र में

“सदियों पहले महिलाओं को राजनीति में प्रवेश करने पर पाबंदी थी। राजनीति में उनके प्रवेश की बात आते ही, विरोध में बुजुर्गों की भंवे तन जाया करती थीं और उन्हें यह कहकर रोक दिया जाता था कि औरते तो बस मुर्गियों की तरह हैं, पुरुषों के क्षेत्र में उनका भला क्या काम! पर बीसवीं सदी के आगमन के साथ-साथ महिलाओं ने राजनीति में सक्रिय रूप से भाग लेना शुरू कर दिया।”⁵⁷

समय बदलने के साथ-साथ स्त्रियाँ राजनीति में अपनी भूमिका निभाने लगी है। जिससे समाज में उनकी दशा सुधरी है।

“महिला का सृष्टि-कृत्रि के रूप में प्रत्येक समाज में सदैव अग्रणी स्थान रहा है तथा भारतीय समाज में सदैव महिलाओं को विशेष स्थान प्रदान किया जाता रहा है। वैदिक काल में तो महिलाओं को इतना उच्चस्थ स्थान प्राप्त था कि इन संदर्भ में यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि नारी शक्ति की पुंज है, इस काल में भारतीयों के सभी आदर्श स्त्री के रूप में पाये जाते थे, जो प्रतिकात्मक रूप में आज भी है। विद्या का आदर्श ‘सरस्वती’ में, धन का ‘लक्ष्मी’ में, शक्ति का ‘दुर्गा’ में, सौंदर्य का ‘रति’ में पवित्रता का ‘गंगा’ में इतना ही नहीं सर्वव्यापी ईश्वर को भी ‘जगत् जननी’ के नाम से सुशोभित किया गया। स्वयं ब्रह्मा ने स्वीकार किया है कि देवी ही इस ब्रह्माण्ड को धारण करती है। वैदिक काल की यह परम्परा प्राचीन भारतीय इतिहास में देखी जा सकती है तथा महिलाओं की सम्मानजनक स्थिति सामाजिक एवं राजनीतिक दोनों क्षेत्रों में बनी रही। इस सम्मान एवं उच्च स्थिति पर नकारात्मक प्रभाव मध्यकाल में विदेशी आक्रांताओं के आगमन से शुरू हुआ जो निरन्तर स्वतन्त्रता प्राप्ति तक बना रहा। महिलाओं के सम्मान और चरित्र की रक्षा हेतु उन पर परम्पराओं के नाम पर शिकंजा शुरू कर दिया गया। महिलाओं की शिक्षा पर रोक लगायी गयी और सार्वजनिक कार्यक्रमों में उनके भाग लेने में भी सीमित कर दिया गया। इन सब

सामाजिक बंधनों के कारण महिला की उन्नति का मार्ग अवरुद्ध हो गया। यद्यपि इन बन्धनों के बावजूद इस युग में कुछ महिलाओं ने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। यथा-रजिया सुल्तान, दुर्गावती, चाँद बीबी, नूरजहाँ, ताराबाई आदि।”⁵⁸

“19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में पाश्चात्य जगत् के साथ बढ़ते हुए सम्पर्क तथा अन्य परिस्थितियों ने हिंदू समाज को झकझोर दिया। महिलाओं की राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए अनेक सामाजिक सुधारकों, जैसे-राजा राम मोहन राय, महर्षि देवेन्द्र नाथ ठाकुर, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द ने महत्त्वपूर्ण प्रयास किये। 19वीं शताब्दी में हुए इन प्रयत्नों के फलस्वरूप भारतीय महिलाओं में एक नई चेतना पैदा हुई। इतिहास इस बात का साक्षी है कि भारतीय महिला ने स्वाधीनता आन्दोलन में पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम किया। साथ ही उन्होंने इस बात पर बल दिया कि महिलाओं का उत्थान भारतीय समाज के पुनर्जागरण के लिए अनिवार्य शर्त है।”⁵⁹

आजादी के पश्चात् संवैधानिक एवं वैधानिक रूप से स्त्रियों को समानता का दर्जा दिया गया, लेकिन जागरुकता की कमी एवं सामाजिक रुढ़ियों की वजह से स्त्रियाँ इन प्रावधानों के लाभ से वंचित एवं अनजान रहीं। इसमें एक वर्ग आदिवासी स्त्रियों का भी है। आदिवासी महिलाएँ शुरु से ही हाशिये पर खड़ी हैं। भारत की कुल जनसंख्या का 8 प्रतिशत आदिवासी है, जो भारत के विभिन्न प्रान्तों में जीवन यापन कर रही हैं।

आदिवासी महिलाएँ राजनीति में भी परम्परागत रूप से भागीदारी निभाती रही हैं। “थारु जनजाति की पंचायत में स्त्रियाँ पुरुषों के समकक्ष भागीदार रही हैं तथा थारु पुरुष अनेक मामलों में स्त्रियों की राय लेना श्रेयस्कर समझते हैं। इसी प्रकार ‘साँसी’ जनजातीय पंचायत में स्त्रियाँ महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती थीं। वे स्वतंत्र रूप में अपने विचारों की अभिव्यक्ति करती थीं तथा अपनी राय देती थीं। इसके

परिणाम स्वरूप स्त्रियों को सम्मानजनक स्थान प्राप्त था लेकिन कुछ मामले पर्याप्त पेचीदगीयुक्त होते थे, अतः इस क्षेत्र में पुरुषों का ही अधिपत्य रहा तथा स्त्रियाँ इस क्षेत्र में गौण मानी गईं।”⁶⁰

जो स्त्रियाँ पंचायतों में मुखिया और सरपंच चुनी गईं हैं उनमें से अधिकांश अभी भी घूंघट में हैं। उनकी जगह वास्तविक मुखियागिरी उनका पति, पुत्र या कोई अन्य पुरुष ही करता है। “भारत में आज बराबरी का अधिकार मिलने के बावजूद कुछ अपवाद छोड़ कर अधिकांश औरतें वोट का इस्तेमाल तक भी पति, पुत्र, पिता व भाई की मर्जी से करती हैं। आज तक भारत में औरतों को राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक समानता नहीं मिल पाई है। भारतीय संसद में औरतों की संख्या लगातार घटती ही जा रही है। स्त्रियों को संसद में 33 प्रतिशत आरक्षण देने के बिल को किसी-न-किसी बहाने टालने के लिए लगभग सभी पुरुष सांसद एकमत हैं। विकृत सामाजिक रुढ़ियों के कारण भी भारतीय स्त्रियाँ भयंकर शोषण का शिकार होती रहती हैं।”⁶¹ इस पुरुषवादी सोच से स्त्री को अलग होना पड़ेगा, तभी जाकर राजनीति में अपनी भागीदार सुनिश्चित कर सकती है।

“वैसे तो जैविक तौर पर औरत पुरुष से भिन्न होती है। आकार-प्रकार में भी वह अलग होती है। पुरुष और पितृसत्तात्मक समाज दोनों ने ही स्त्री को स्त्री होने के कारण हमेशा अलग प्रजाति की तो माना लेकिन उसकी जातिगत स्वतन्त्र अस्मिता को कभी नहीं स्वीकारा। इसीलिए औरत चाहे ब्राह्मण जाति की हो या अनुसूचित जाति या जनजाति की, पुरुष उसकी अलग पहचान बनने देने का सदैव विरोधी रहा है, क्योंकि लगभग पूरा समाज ही स्त्री विरोधी रहा। पुरुषों ने स्त्रियों को अशिक्षित रखकर उनके लिए गुलामी को भी सहर्ष स्वीकार्य वस्तु बना दिया। हाँ, अगर औरत पुरुष के लिए सती हो जाए, बलि चढ़ जाए, तो उसे वह पद्मिनी या सीता बनाकर इतिहास में जरूर दर्ज करता रहा है। आज जब लोकसभा में औरत को औरत के नाते यानी औरत-जात (प्रजाति) के नाते 33 प्रतिशत आरक्षण का बिल पेश होने की बात आई तब सभी अगड़ी-पिछड़ी जातियों के लोग औरत को अपनी-अपनी जाति की

बताकर, जैसे कि वे उनकी सम्पत्ति हों, उनके अधिकारों के लिए चिन्ता जताने लगे। कुछ लोकसभा में ऐसे चर्चा करने लगे, जैसे वे सब उनकी मुक्ति के लिए, उनके हकों के लिए जी-जान से परेशान हैं। वे ऐसा जताने लगे जैसे उनके मुक्त न होने पर भूकम्प आ जाएगा, विप्लव हो जाएगा, जबकि हकीकत ये है कि किसी भी जाति के पुरुषवर्ग के एक बड़े हिस्से ने अपनी-अपनी जाति की स्त्रियों को मुक्त ही नहीं होने दिया। न ही उन्हें अपनी स्वतन्त्र पहचान बनाने का अवसर दिया। अधिकांश सांसदों की अपने घरों की औरतें भी मुक्त नहीं हैं, उनकी जाति की औरतों की बात तो दूर की है। समाज में तो कई स्त्रियाँ काफी अगुआ भूमिका भी निभाने लगीं पर उन्हें राजनीतिक दलों ने टिकट देने में कभी उदारता नहीं बरती। इसमें पिछड़े-अगड़े व दलित सभी पुरुष एक समान आचरण करते हैं।”⁶²

पुरुष वर्ग स्त्री को राजनीति में मोहरे की तरह इस्तेमाल करने लगे हैं। उनका मानना है कि सुंदर महिला के जरीये वे अधिक वोट अपने नाम करवा सकते हैं।

मैत्रेयी पुष्पा के ‘अल्मा कबूतरी’ उपन्यास के सूरजभान अल्मा के बारे में कहता है- “मुश्किल यह है कि विरोधी पार्टी के लोग उसे माँ-बहन का दर्जा देकर छाती कूटेंगे। विधानसभा से लेकर लोकसभा तक मर्सिया पढ़े जाएंगे। अखबार और टीवी वालों की चाँदी हो जाएगी। समाजसेवी संस्थाएँ अलग झंडियाँ ले-लेकर दौड़ पड़ेगी। उनका चलना, फलना-फूलना ऐसी ही घटनाओं पर टिका रहता है। देखना कि कैसे उस लड़की के हगने-मूतने से लेकर महिनादारी तक का हिसाब रखती हैं और सबसे ज्यादा करीबी सिद्ध होती हैं। अनुदान पचाने के नवाब तरीके। अपने-अपने दाँव। ऐसा न होता तो देश के बड़े से बड़े साधु-तांत्रिकों के लंगोट कौन चीर पाता ? हमारे मंडल को कमंडल में धरकर बेतवा में सिराने वाले लोग....।”⁶³

सूरजभान जैसे लोग सोचते हैं कि आदिवासी अल्मा स्त्री को ढूँढकर वे लोगों की सहानुभूति पा लेंगे तथा उनकी पार्टी विजयी हो जाएगी।

“राजनीतिज्ञों का एक तबका औरतों के पहनावे और रहन-सहन पर व्यंग्य करता हुआ, उसे उसके अधिकारों से वंचित रखना चाहता है। आजकल औरत अर्धशिक्षित हो, अनपढ़ हो या पूर्ण शिक्षित, अधकचरी संस्कृति वाली आधुनिका हो या कम पढ़ी-लिखी अंधविश्वासी-अपने पतियों को खुश रखने के लिए पाउडर-लिपिस्टिक ‘आउट ऑफ फैशन’ हो गया है। रहा बाल कटे होने या लम्बे बाल वाली होने का सवाल। जैन धर्म की साध्वियाँ पूरा सिर ही घुटवा लेती हैं। उमा जी के भी बाल कटे हैं, हालांकि वे भी पिछड़ी जाति की है। बाल कटवाना या पाउडर-लिपिस्टिक लगाना भले ही आधुनिक होने का लक्षण माना जा सकता है, अगड़ा या पिछड़ा होने का नहीं। दोनों ही इसका भरपूर प्रयोग करती है। आजकल तो पुरुष भी लिपिस्टिक लगाने लगे हैं, कानों में छेद करवाकर बालियाँ पहनने लगे हैं और ऊँची एड़ी का शू पहनने लगे हैं।”⁶⁴ औरतों के पहनावे पर टिप्पणी करना पुरुषों के लिए कहाँ तक वाजिब है, इसका जवाब तो स्त्री ही दे सकती है।

अगर आदिवासी महिलाओं के लिए सीटे आरक्षित हो जाए तो वह चुनाव लड़ने के लिए प्रेरित होगी। “आरक्षण शिक्षा के लिए भी प्रेरक-बिन्दु सिद्ध हुआ है। जैसे अब नौकरी में और शिक्षा में भी आरक्षण मिलने के बाद अति पिछड़े भी पढ़ने-पढ़ाने की तरफ आकर्षित हो रहे हैं। इसी प्रकार अनपढ़ और पिछड़ी गरीब स्त्रियाँ भी स्त्रियों के लिए सीटें आरक्षित हो जाने पर अपना विकास करने और चुनाव लड़ने के लिए प्रेरित हो जाने पर अपना विकास करने और चुनाव लड़ने के लिए प्रेरित होंगी। उनका पुरुष-वर्ग जो अभी तक पाबन्दियाँ लगाए हुए है, चाहे भुनाने के लिए ही हो, उन्हें मैदान में उतारने के लिए प्रेरित होगा ही। आज जब इनमें कंपीटीशन के बाद भी भगवती देवी और फूलन देवी गरीब-दलित-पिछड़ी आबादी के बल पर चुनाव जीत सकती है तो क्या आरक्षण मिलने के बाद पिछड़ी स्त्रियाँ नहीं जीत पाएँगी? आरक्षण के बाद भी पाटियाँ अपनी नीति के अनुसार सामाजिक न्याय के आधार पर पिछड़ी स्त्रियों को टिकट दे सकती है। जैसे संसद या विधानसभा में पिछड़ी जातियों के लिए कोई आरक्षण नहीं है। वह सिर्फ दलितों के लिए है। इस प्रकार दलित जाति के आधार पर दलित स्त्रियों के लिए तो कोटा निर्धारित हो सकता है लेकिन स्त्रियों के

लिए पिछड़ी जाति की होने आधार पर आरक्षण माँगना लोकसभा की वर्तमान व्यवस्था के विपरीत है। आरक्षण न होने पर भी तो पिछड़े भारी मात्रा में जीतते हैं लेकिन अपनी सीटों में से उन्होंने कितनी पिछड़ी औरतों को हिस्सा दिया है ? स्त्रियों के लिए आरक्षण शिक्षित होने व नेतृत्व में आने के लिए प्रेरक सिद्ध होगा।”⁶⁵

महिलाओं को आरक्षण मिलने से पुरुष वर्ग की मानसिकता बदलने के साथ-साथ महिलाओं की मानसिकता में भी बदलाव आएगा। स्त्रियों में एक आत्मविश्वास पैदा होगा।

“पुरुष समाज इस आरक्षण को जितना भी धिक्कारे, उसकी निंदा करे, उसके पारित होने पर उसका फायदा उठाने से कभी नहीं चूकेगा। वह अपनी औरतों और प्रेमिकाओं को भी मैदान में उतारने लगेगा। इसी बहाने ही सही-इससे कम-से-कम औरतें मैदान में तो आएंगी। शुरु-शुरु में ऐसा हो सकता है कि औरतें अपने पतियों, पुत्रों, भाइयों, प्रेमियों की राजनीति को ढोएँ लेकिन कालांतर में वे अपनी जिम्मेवारी जरूर समझेंगी। एक इन्दिरा गांधी के प्रधानमन्त्री बनने पर औरतों को चाहे कुछ भी नहीं मिला हो पर उनकी मानसिकता में फेर-बदल जरूर हुआ था। मुखिया, सरपंच के चुनाव को ही लीजिए। अब गाँव के परम्परावादी औरत-विरोधी लोग भी उस पद को हथियाने के लिए अपने घरों में औरत उम्मीदवार की खोज करने लगे हैं। गाँव की औरतें भी समझने लगी हैं कि कुछ बदल रहा है। उनका वजन कुछ बढ़ रहा है। सत्ता का हस्तांतरण हो रहा है। कई जगह तो औरत मुखिया, सरपंच और पंच ने अपना पद अपने मर्द से वापस ले लिया है।”⁶⁶

रमणिका गुप्ता के ‘सीता-मौसी’ उपन्यास में सीता यूनियन की लीडर बन जाती है। वो हड़तालों में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लेती है। एमरजेंसी लगने पर सीता कहती है- “दीदी! सरकार तो आपन पार्टी की हय, फिर वह हमारी बात काहे नायी सुनती ? आपन पार्टी के नेतागण मजदूरवन के डरा देयल हैं। चलो हमनी सब मिल के इन्द्रा गाँधी ठिन चलब। उ तो जनी है। की उ जनी के दुःख नाय सुनतै ? हमनी सब पर उकर

पार्टी, व उकरी यूनियन के नेता की-की जुल्म कर रहल हैं- उसकी रिपोर्ट इन्द्रा गांधी ठिन जाके करबै, तो की ऊ कुछे नाये करतै ? इन्द्रा गांधी बोकारो आयल रहल, तो हमनी तो एक सौ ट्रक में जायके भीड़ लगाय देयल रहल।”⁶⁷ हर औरत को सीता जैसी जागरुक बनना होगा। जिससे वे अपने राजनीतिक अधिकारों के लिए लड़ सके और स्वयं की एक पहचान बना सके।

स्त्री जब राजनीति के क्षेत्र में प्रवेश करती है तो लोग उसका भरोसा करते हैं। रमणिका गुप्ता के सीता के यूनियन का नेता बनने के बाद लोग उसका सम्मान करने लगते हैं। सीता सोचती है- “कितना भरोसा करते हैं मजदूर मुझ पर! नेताजी भी मुझी पर भरोसा करती है। अब आगे बढ़कर पीछे हटना ठीक नहीं होगा। मजदूरों से कितना सम्मान, कितना प्यार मिलता है मुझे! मैनेजर साला भी डरता है मुझसे।”⁶⁸ इससे महिला की सामाजिक, राजनैतिक क्षेत्र स्थिति में सुधार होता है।

पुरुष समाज में स्त्री को दबाकर रखना चाहता है। स्त्री स्वयं अपने बलबूते पर कुछ करती है तो उसे वो भी नागवार गुजरता है। रमणिका गुप्ता के ‘सीता-मौसी’ उपन्यास में सीता के यूनियन में वापस लौटने पर सन्त जैसे लोग उसका विरोध करते हैं। सन्त सीता को रण्डी या वेश्या तक कह डालता है। जब भी वो सीता को मीटिंग में, रैलियों में देखता तो कहता-औरत जात होकर पुरुषों के साथ मीटिंगो में घूमते हुए शर्म नहीं आती। इस पर सीता भी जवाब देती है-

“तू आपन जोरु के देख, हमरा के तू गार्जियन न है ? बड़ा आया बोले वाला ! सरवा भाषण में कुछ बोलत है, पीछे में कुछ। पुलिस से लड़ना हो तो हमनी के आगे कर देत है और लीडर बनना हो तो कहता है हम सब औरत जात हैं। जा साले, हम तो घूमे करब। तोर के लाज लगै है तो तू डूब मर चुल्लुभर पानी मा ! नेतागिरी करे वाली औरत के ‘रंडी’ कहत है ? पुलिस और मैनेजर के आगे फिर काहे इन ‘रंडियन’ के खड़ी कर देय हय ? पुलिस के सामने भी तू काहे ले नाय खड़ा होत है ? ज्यादा बक-बक करतै, तो तोहर नेता राय बाबू ठिन धनबाद जाय के हम शिकायत कर देब।”⁶⁹

ये सब कुछ सीता को एक औरत होने की वजह से सहना पड़ता है। एक पुरुष ही है जो उसका विरोध करता है, उसे आगे बढ़ने से रोकता है।

अन्त में यही कहना चाहूँगी की- “जनजातीय स्त्री के अधिकार पुरुष से कम होने पर भी इससे उसकी स्थिति किसी भी प्रकार से नीची नहीं होती क्योंकि जनजातीय जीवन में राजनीतिक अधिकारों से अधिक कर्तव्यों पर जोर है। जनजाति के मुखिया को बहुत से अधिकार होते हैं परन्तु फिर उस पर जनजाति की रक्षा का भार भी होता है। इस गुरुतर कर्तव्य को पूरा न करने पर कोई भी व्यक्ति अपने अधिकारों को अक्षुण्ण नहीं रख सकता। वास्तव में जनजातीय समाजों में राजनीति के क्षेत्र में अधिकारों की निर्णायक शारीरिक और शस्त्र सम्बन्धी शक्ति होती है। अतः यह नितान्त स्वाभाविक है कि पुरुषों के अधिकार अधिक हैं। परन्तु ऐसे आदिम समाज भी हैं जहाँ सारे राजनीतिक अधिकार स्त्रियों के हाथ में होते हैं।”⁷⁰

आर्थिक क्षेत्र में

भारत में परिवार के जीवन-यापन या आर्थिक सहयोग के लिए महिलाएँ काम करती हैं। पुराने समय में स्त्रियाँ राजाओं के यहाँ दासी, सेविका या सखी बनकर जीविकोपार्जन करती थीं। कृषि कार्य महिलाएँ पहले भी किया करती थी और आज भी करती हैं।

“भारतीय समाज तीन वर्गों में विभक्त है- उच्च, मध्यम और निम्न। फलस्वरूप तीनों वर्गों की औरतों की समस्याएँ, अपने वर्ग-विशेष की स्थिति पर निर्भर करती हैं। यह विभेद केवल शहरों या अपवाद स्वरूप कहीं-कहीं गाँवों में भी टूट पाया है। हालाँकि भारतीय समाज में स्त्री-पुरुष दोनों को समान दर्जा प्राप्त है, फिर भी पढ़ी-लिखी व कामकाजी स्वावलम्बी स्त्रियों को न तो समाज ने बराबरी का दर्जा दिया, न स्वयं स्त्रियाँ ही खुद को बराबर समझने की मानसिकता बना पाई हैं। भारत में भले विदुषी स्त्रियाँ गुणात्मक रूप में संख्या में कम हों पर कई दूसरे देशों की तुलना में आगे हैं। तथाकथित निम्न जातियों में औरतें कमानेवाला अतिरिक्त हाथ समझी जाती हैं, आदिवासी समाज में तो वे ही मर्दों से ज्यादा खटती और कमाती हैं। उनके विवाह एवं दूसरे सामाजिक रीति-रिवाजों से भी हमें इस बात का संकेत मिलता है कि उस समाज में महिलाएँ पुरुषों पर आश्रित नहीं होती बल्कि पुरुषों के समान ही वह परिवार के पालन पोषण में बराबर की भागीदार होती हैं। उनके समाज में बेटी की शादी के वक्त उसकी कीमत लगाई जाती है चूँकि वह हमेशा से अपने परिवार यानी अपने पिता या भाई के साथ अपने खेत में या दूसरे लोगों के खेतों में काम करके परिवार की आय का साधन भी होती हैं; इसलिए उसकी शादी की भी कीमत होती है। इस तथाकथित निम्न-समाज में अगर कोई औरत अपने पति को छोड़कर दूसरा मर्द करती है तो दूसरे मर्द को औरत के पहले पति को दंड स्वरूप हर्जाने की राशि भरनी पड़ती है अन्यथा उसे सारी बिरादरी को ‘भोज’ देना पड़ता है। लड़की जब ससुराल जाती है तो वह अर्धांगिनी नहीं बल्कि ‘कमाऊ हाथ’ अधिक मानी जाती है किन्तु विडम्बना यह है कि कमाई की यह क्षमता उसके अपने विकास या उद्धार के

लिए नहीं होती बल्कि यह परिवार के प्रति स्त्रियों के कर्तव्य में शुमार की जाती है। वह शादी से पहले अपने पिता या भाई के परिवार में काम करती है और शादी के बाद अपने पति के। इस प्रकार लड़की हो या माँ अथवा बहू उनकी सारी मेहनत और कमाई को परिवार के कोटे में आरक्षित कर दिया जाता है, जिसका न तो कोई मूल्यांकन होता है और न ही आकलन।”⁷¹

अक्सर गाँव की गलियों, खेतों, जंगलों, पहाड़ों में आदिवासी महिलाएँ काम करती ही दिखाई दे जाती है। एक छोटी लड़की भी अपने छोटे भाई या बहन का ध्यान रखकर माँ का साथ देती है। इसी समय से इनमें अपने कर्तव्य का ज्ञान हो जाता है। घर का खर्चा चलाने के लिए वन से लकड़ी, दातून, फल-फूल बेचकर पैसे की व्यवस्था करना आदि काम महिलाएँ ही करती है।

प्रायः महिलाएँ मेहनत में कम रुचि लेती है और किसी भारी काम को करना पसन्द नहीं करती है लेकिन आदिवासी स्त्रियाँ इन सब बातों से आगे हैं। वे पुरुष से भी ज्यादा जी-तोड़ मेहनत करती है। ये स्वावलम्बी होती है तथा स्वयं खट-कमाकर अपना और अपने पूरे परिवार का भरण-पोषण करती है।

“आदिवासियों में भी जनजातियों के भेद के अनुसार महिला के स्तर में अन्तर है, परन्तु जहाँ तक कार्य की बात है सभी जनजातियों की महिलायें परिश्रमी होती हैं। अभी भी सभ्य पुरुषों के समाज में पुरुषों का नजरिया नारी के बारे में ‘पैर की जूती’ के बराबर होता है। पर आदिवासी समाज अभी इस स्तर पर नहीं उतरा है, हालांकि लड़ाई-झगड़ा हो जाने पर या नहीं पटने पर पुरुष महिला को छोड़ देते हैं, पर महिला भी इन्हीं कारणों की वजह से पुरुष का घर त्याग कर उसके लिए आफत खड़ी कर सकती है, क्योंकि फिर नई पत्नी लाने के लिए उसे तीन-चार हजार रुपये खर्च करने पड़ेंगे, जो उसके बलबूते के बाहर की बात होती है। वह महिला ही होती है, जिसके बलबूते पर खेतों को छोड़कर पुरुष बाहर शहरों में मजदूरी करने या कारखानों में काम करने चला जाता है और दो-दो महीनों तक वापस नहीं लौटता। ऐसे समय में वह ही घर भी संभालती है, खेतों में हल भी हाँकती है, बोती भी है, खरपतवार भी निकालती है।”⁷²

राकेश कुमार सिंह के 'पठार पर कोहरा' उपन्यास में रंगेनी अकेली रहती है। उसका बेटा सोनारा उसके साथ रहता है। दोनों का जीवन-यापन वह स्वयं करती है। "रंगेनी ने घर के पिछवाड़े की कोठरी में मुर्गियाँ पाल रखी हैं। हर मंगलवार के रोज हप्ते भर के जमा अण्डे तुपकाडीह की हाट में बेच आती है। पिछवाड़े वाली थोड़ी-सी जमीन में साग-सब्जी भी लगायी है। रोज मुँह अँधेरे में ही नदी से डोल-बहँगी में पानी ढो-ढोकर क्यारियाँ पटाती है।"⁷³ इसी प्रकार रंगेनी की गाँव की महिलाएँ भी सभी प्रकार के कार्य करती हैं।

"औरतें घर का काम-काज निपाटने के बाद जुते पड़े खेतों में लकड़ी के हथौड़े से ढेले फोड़ती हैं। खदानों के खेतों में रोपनी-कटनी करती है। फसल कटने और बोझ उठ चुकने के बाद खाली खेतों में टूटी-गिरी अनाज की बालियाँ बीनती है।"⁷⁴ इस प्रकार महिलाएँ सभी प्रकार के कार्य करती हैं।

जो महिलाएँ मजदूरी करती हैं, खेतों में काम करती हैं, सब्जी बेचती हैं, कोयला बेचती हैं या महुआ चुनती हैं, खदानों में खटती हैं, सड़कों और मकानों में ईंट, बालू और सीमेंट ढोती हैं वे भले ही अशिक्षित हैं और अपने पति से मार खाती रहती हैं, लेकिन वे स्वावलम्बी होती हैं, इसीलिए वे पुरुषों की गुलाम नहीं होती जैसी मध्यम-वर्गीय परिवार की घरेलू महिलाएँ होती हैं। वे स्वयं अपनी गृहस्थी को अपने बलबूते पर चला सकती हैं। आदिवासी महिलाएँ आर्थिक मामलों में मध्यमवर्गीय स्त्री की तरह परजीवी नहीं होती हैं।

"स्त्री अगर आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी हो तो उस पर जुल्म नहीं होंगे और यदि होंगे भी तो कम होंगे। स्वावलम्बी होने से औरत का स्वाभिमान बढ़ता है और उसका सम्मान आत्मसम्मान भी। साथ ही वह प्रतिकूल परिस्थितियों और प्रतिबंधों को नकारने की क्षमता हासिल कर लेती है। वह समाज की संकीर्ण परम्पराओं से परे मुक्ति की राह पर चल सकती है। दरअसल औरत को कमजोर बनाने में उसके परजीवी होने के साथ-साथ समाज की आचार-संहिताएँ भी जिम्मेवार हैं। स्वावलम्बन

उसे इन बेड़ियों से मुक्त करने का एक मजबूत आधार देता है। अक्सर घरेलू औरतों को यह कह-कहकर हीनभावना का शिकार बना दिया जाता है कि 'वे क्या जाने कमाने वाले की तकलीफ, वे तो बस खाली-पीली खाना जानती हैं। कमाएँ तो पता चले!' उन्हें इस हद तक दबू बना दिया जाता है कि वे बाहर भी अकेली जाने से कतराने लगती हैं। हमेशा उनके मन में डर बना रहता है कि कहीं कोई मर्द छोड़ न दे- कहीं कोई बुरी नजर से उन्हें देख न ले। ऐसी औरतों के मर्द भी अधिक शक्की होते हैं वे इस आधार पर हमेशा उन्हें पीटते रहते हैं। शक्की तो बाहर काम करने वाली औरतों के मर्द भी हो सकते हैं लेकिन वे कमाकर लाती है और बोलने की हिम्मत रखती हैं, इसलिए वे उन्हें सह लेते हैं। मैंने कई बड़े-बड़े पदों पर काम करने वाली औरतों को भी अपने पूर्वग्रह या परम्परावादी सोच वाले अपने पति से पीटते देखा है। समाज में बदनामी के डर से ऐसी स्त्रियाँ चुप रहती है चूंकि उनकी मानसिकता अभी भी पुरुष-प्रधान समाज से संचालित होती है। वे खुद को पति से हीन मानती हैं इसलिए पति की उद्दंडता को उजागर करने की बजाय सह लेती हैं। समाज व प्रशासन ने अभी ऐसे पतियों को दंड देना शुरु नहीं किया, हालाँकि पत्नी-प्रताड़ना के लिए कानून बना हुआ है। इसके लिए स्त्रियों में चेतना की दरकार है ताकि उनकी अपनी मानसिकता भी बदले। यह मानसिकता स्वावलम्बी होने पर आसानी से बदली जा सकती है।⁷⁵

मुण्डा आदिवासी महिलाएँ बहुत मेहनती होती है। महाश्वेता देवी ने 'चोटिट मुण्डा और उसका तीर' उपन्यास में मुण्डारी औरतों का वर्णन इस प्रकार किया है- "तमाम मुण्डा औरतों की तरह उसकी और कोयेल की बहू भी बहुत मेहनत करती। चोटिट की पत्नी पति-परायणा थी। कोयेल की पत्नी अगर शान्त औरत न होती तो मुश्किल होती। इस घर की बड़ी बहू गाय और बकरी चराती। बकरियाँ स्टेशन पर या जंगल के ठेकेदार को बेचकर जो कुछ मिलता, उसे टीन के डिब्बों में रखकर चूल्हे के पास गाड़ दिया जाता। चूल्हे के आस-पास रुपए रखने से वे चोरी न जाते। फसल होने पर वह हाट से चावल या गेहूँ या मक्का खरीदकर लाती। छोटी बहू खाना बनाती या घर के और काम-काज करती।"⁷⁶

आदिवासी महिलाएँ पुरुषों से आगे बढ़कर कार्य करती हैं। वे किसी भी काम में पुरुषों से पीछे नहीं रहती। रमणिका गुप्ता ने 'बहू-जुठाई' में ऐसी महिला का वर्णन किया है- "पलामू वाले बेलचे से ही कोयला बोझते (उठाते) थे। वे झोड़े (टोकरे) का इस्तेमाल नहीं करते थे पर विलासपुरिया प्रायः बिना जनी (औरत) के संडा (अकेला) खट ही नहीं सकता था। राँची, चायबासा से प्रायः औरतें ही खटने आतीं। वे ज्यादातर कोयला ही बोझती थीं। वे मर्दों को साथ नहीं लाती थीं। वे अपने साथ देस से केवल एक मर्द लाती थीं, जो सिर्फ उनका खाना बनाता या झोड़े ढोकर घर से काम के स्थान तक ले जाता-ले आता। झोड़ों में कोयला भी खुद औरतें ही भर लेती थीं। आदिवासी मर्द सिर पर झोड़ा नहीं बोझ सकता चूँकि उनके समाज में वह वर्जित है। वह उस कन्धे पर रखकर ही बोझ सकता है। जन्म-जात बोझाड़ी (बोझा ढोने वाली औरत) ये आदिवासी महिलाएँ चाहे वे राँची की हों या विलासपुर की, झोड़ा ढोने में बहुत माहिर होती हैं। दो ढाई घंटे में दस औरतें ट्रक में सोलह टन कोयला बोझा देती थीं।"⁷⁷

समय बदलने के साथ-साथ आदिवासी महिलाओं की सोच में भी परिवर्तन आने लगा है। रमणिका गुप्ता के 'बहू-जुठाई' कहानी संग्रह में प्यारी के लिए कहा गया है- "अब वह पहले की तरह सारी कमाई मर्द को लाकर नहीं देती। वह अब सब पैसा अपने पास रखती है। मर्द को जेब खर्च देती है। खटने में दोनों माहिर हैं। जानती है जिन्दगी में खटना है। उसे तो बस कोयला ही बोझना है पर अपने हक की रक्षा खुद ही करनी है। हक के लिए खुद लड़ना है। अब वह अपने आपको विश्वास के आधार पर किसी को सौंप कर निश्चिन्त नहीं रहती। वह परखना सीख गई है। पति-बेटा, भाई-बाप, ये सारे रिश्ते अब उसे प्रभावित नहीं करते। केवल मेहनत, वह भी अपने हाथ की मेहनत और स्वयं दूसरों को अपने साथ लेकर खटने और लड़ने की क्षमता ही उसे आकर्षित करती है।"⁷⁸ स्त्री अब किसी के आगे झुकने वाली नहीं है। उनके अधिकारों के प्रति सचेत हो गई है।

आदिवासी महिलाओं की सबसे बड़ी समस्या है, काम के स्थान पर उनका यौन-शोषण। इनके समाज में यौन-सम्बन्धों को हेय दृष्टि से नहीं देखा जाता है, लेकिन इसका मतलब ये नहीं है कि इनसे कोई भी यौन-सम्बन्ध बना ले। गैर-आदिवासी लोग अकेली महिला का यौन-शोषण करने से नहीं चूकते हैं। रमणिका गुप्ता ने 'सीता-मौसी' उपन्यास में कहा है- “राँची की आदिवासी महिलाएँ प्रायः अकेले ही काम करने आती थीं। छैलों का यह दल झारखड़ी नेता सन्त के नेतृत्व में बाहरी-भीतरी का सवाल उठाकर, इन महिलाओं का काफी भयादोहन और शोषण करता था। एक दहशत-सी फैल गई थी कोलियरी क्षेत्र में खासकर औरतों और प्रेमी युगलों में। ये नेतागण औरतों व लड़कियों को बदमाश व बदचलन कहकर, उनका शोषण गाहे-बगाहे स्वयं भी कर लेते थे।”⁷⁹ पुरुष को अपनी इस सोच में परिवर्तन लाना होगा।

ज्योति सेन ने खासी जनजाति में स्त्रियों की आर्थिक भूमिका का उल्लेख करते हुए कहा है कि-

- (अ) खासी जनजाति में स्त्रियाँ व्यापार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं जबकि आमतौर पर अन्यत्र इस क्षेत्र में पुरुषों का वर्चस्व रहता है।
- (ब) अनेक स्त्रियाँ विविध प्रकार के क्रिया-कलापों में संलग्न होकर अपने परिवारों का अकेले ही भरण-पोषण करती हैं।
- (स) अनेक स्त्रियाँ जो व्यापार में संलग्न होती हैं, समय-समय पर एवं मौसम के अनुसार अपनी क्रय-विक्रय की वस्तुओं में परिवर्तन करती रहती हैं।⁸⁰

घर के कार्य के अतिरिक्त स्त्री-मजदूर प्रायः निम्नलिखित प्रकार के काम करती हैं-

1. मिट्टी, पत्थर व माल (कोयला, फायरक्ले, पत्थर आदि) जो पुरुष (मलकट्टे) काटते हैं उसे-स्त्री मजदूर टोकरी से ढेकर एक स्थान पर रखती हैं।

2. ट्रकों में माल लोड करती है।
3. ट्रकों में मिट्टी ढोती है।
4. पत्थर तोड़ती है।
5. जंगलों में लकड़ी काटकर तथा सिर पर बोझा लादकर बाजार में बेचती है।
6. महुआ चुनती है।
7. तेंदू-पत्ते तोड़ती, सरियाती और बंडल बनाकर ठेकेदारों को माल सप्लाई करती है।
8. साल बीज चुनती है।
9. बीड़ी बनाती है।
10. खेतों में कटनी, निकोनी, रोपनी का काम करती है। आदिवासी क्षेत्रों में हल चलाना छोड़कर, सभी काम औरत ही करती है। खेतों में हल चलाना औरत के लिए वर्जित है। मिजोरम में औरतें हल भी चलाती हैं।
11. घर बनाने के काम में छप्पर छाने का काम केवल पुरुष ही कर सकता है। बाकी सभी काम जैसे दीवार जोड़ना, गारा बनाना, सामान जुटाना, फूस या खपरालाना और चढ़ाना आदि औरतें ही करती हैं।
12. महुआ से दारु चुआना, हड़िया बनाना आदि सभी कार्यों में औरत की ही भूमिका मुख्य है, मरद केवल टीन या पीपे में दारु भरकर बाजारों में जाकर उसे बेचता भर है। वैसे यह काम भी अधिकांश जगहों में घैले या हांडी (घड़े) में भरकर औरतें ही करती हैं।
13. सब्जी बेचने का काम अधिकांशतः औरतें ही करती हैं।

1 4. ईट-भट्ठा में भी औरतें अधिक संख्या में काम करती हैं। केवल परम्परागत निषिद्ध कामों में छोड़कर, गैर आदिवासी औरतों से वे अधिक सबल होती हैं। दरअसल छोटे से लेकर बड़े काम औरत के हिस्से ही आते हैं।⁸¹

आदिवासी महिला किसी भी काम में पुरुष से पीछे नहीं होती है, बल्कि पुरुष से अधिक काम करती है। “सब्जी बेचने वाली औरतें बाजारों, शहरों या हाटों में दो से दस कोस तक की दूरी पैदल तय करती हैं और तब कहीं कुछ पैसे कमा पाती है। महुआ चुनने वाली औरतें प्रायः शोषण का शिकार होती हैं। ऐसी ही स्थिति लकड़ियाँ चुनने वाली औरतों की भी है। औरतें जंगल के सिपाही तथा महुआ के पेड़ों के मालिक दोनों की शिकार होती हैं। जंगलों में प्रायः अगल-बगल के गाँव के शक्तिशाली लठ्ठर व पैसे वाले लोग महुआ के पेड़ों पर अपना अवैध अधिकार घोषित कर देते हैं, कई जगह ये पेड़ सचमुच उन्हीं के होते हैं क्योंकि सरकार द्वारा वे इन पेड़ों को नीलामी में ले लेते हैं। बहरहाल तीन टोकरी महुआ में एक ही टोकरी औरत-मजदूर के हाथ आती है और बाकी मालिक हड़प लेते हैं। इसी महुआ के बदले औरत-मजदूर नमक, तेल व अन्य सामान अपने खेतों की उपज को बदल कर लाती है। इस महुआ का भात सिझाकर (उबालकर) खाना, उससे शराब बनाना तथा डोरी (महुआ का बीज) का तेल निकलवाकर बेचना भी उनकी आर्थिक संरचना का अंग है। ईट-भट्टों में भी आदिवासी औरतें ईट बनाने व ढोने में मर्दों से अधिक पटु मानी जाती है और संथाल परगना तथा छोट नागपुर की आदिवासी औरतें एक तरफ पटना के इर्द-गिर्द व बिहार के कोने-कोने में स्थित ईट-भट्टों में बहुत ही कम मजदूरी पर दलालों द्वारा ले जाई जाती हैं। वे वहाँ बारह-बारह घंटे काम करने पर मजबूर की जाती हैं। दूरदराज राज्यों के प्रान्तों में भी इसी इलाके की आदिवासी औरतों को खेतों में काम करते देखा जाता है। चाय बगानों में भी ये औरतें बड़े पैमाने पर ले जाई जाती रही हैं। अंडमान निकोबार में भी रांची, हजारीबाग, संथालपरगना के आदिवासी जोड़े वर्षों पहले ले जाए गए थे, जिन्होंने एक पूरा इलाका ही वहाँ पर बसा लिया है। वहाँ इन्हें नरभक्षी कबीले वाले इलाके में

रखा गया था जो अब भी छिपकर इन पर वार करते हैं। ये लोग वहाँ रखे गए हैं जहाँ दिन में बन्दूकधारी पुलिस के संरक्षण में ही जाया जा सकता है। आदिवासी औरतें विपरीत स्थितियों में भी काम करने में नहीं डरती।”⁸²

इन भोली-भाली औरतों के द्वारा इकट्ठी की गई सामग्री को शहरी लोग बहुत कम दामों में खरीदते हैं। वे इनकी मेहनत का पूरा पैसा भी इन्हें नहीं देते हैं। राकेश कुमार सिंह ने ‘पठार पर कोहरा’ उपन्यास में इसका वर्णन इस प्रकार किया है- “गजलीठेरी की औरतें और कुछ अँखफोर हो गये किशोर पत्ते बीनने निकलने की तैयारी में है। ख़ूब मेहनत से लू-धाम में सहेजा जाएगा एक-एक पत्ता। सौ-पचास की गड्डी बनाएँगे। फिर इन गड्ड़ियों को औने-पौने भाव में खरीद लेंगे बीड़ी-पत्तों के ठेकेदार और भर-भर बोरे पत्ते ख़ूब मुनाफे वाले भाव पर बेचेगे। मुण्डाओं के हाथ तो पत्तों के बदले कुछ पत्ते ही आ पाते हैं। गड्ड़ियाँ ठेकेदार की...”⁸³

महिलाएँ इस शोषण का शिकार ज्यादा होती हैं। वह पुरुष की बातों में आकर ही अपना नुकसान करती हैं। “औरतें इस समाज में हमेशा ही ज्यादा खटती रही हैं। अब थोक माल में उन्हें सस्ते मजदूर के रूप में सप्लाई करना या व्यक्तियों के हाथ बेचना या अन्य गलत पेशों में लगना भी शुरू हो गया है। बाहरी दलालों की तरह इनके समाज में भी एक दलाल जमात पनप गई है। यह दलाल जमात बाहर के शहरी सपने समाज को दिखाकर, पुराने मूल्यों को नष्ट कर रही है।”⁸⁴

राजस्थान की गरासिया आदिवासी औरतें गुजरात में अपने परिवार वालों के साथ तम्बाकू साफ करने और ईंट-भट्टों पर काम करने के लिए जाती हैं। वहाँ ये दो-तीन महीने तक रहती हैं। गरासिया नवयुवक, औरत का आर्थिक सहयोग करने के कारण हर काम में उसकी राय लेता है। पत्नी को साथ ले जाकर ही वह घर के लिए सामान खरीदता है। वस्तुएँ खरीदने में पत्नी की पसंद का खास ध्यान रखा जाता है। इनमें पैसे पत्नी के पास ही रखे जाते हैं।

‘हो’ आदिवासियों में अधिकतर पुरुष अपने आलसीपन के लिए प्रसिद्ध हैं तथा स्त्रियों के द्वारा ही इनका परिवार चलता है। पुरुषों में व्यापत इस आलसीपन के बारे में डी.एन. मजूमदार ने लिखा है कि पुरुष आमतौर पर कोई भी श्रमयुक्त कार्य तब तक नहीं करते हैं जब तक कि यह आवश्यक ही न हो तथा जब तक कि स्त्री की कमाई से उसे दो जून रोटी प्राप्त होती है, पुरुष कोई कार्य नहीं करते हैं। यहाँ तक कि पुरुष अपनी स्त्रियों को खदानों में मेहनत मजदूरी करने के लिए भेजते हैं तथा स्वयं अपने गाँवों में निष्काम पड़े रहते हैं।⁸⁵

इस प्रकार आदिवासी समाज में औरत की आर्थिक स्थिति पुरुष से किसी भी प्रकार से कम नहीं है। वे अर्थोपार्जन की क्रियाओं में पुरुष के साथ मिलकर काम करती हैं। आर्थिक रूप से मजबूत होने के कारण वे अत्याचार सहन नहीं करती और न ही पुरुष की दासी बनकर रहना पसंद करती हैं। वे आज भी सभ्य महिलाओं से इस दृष्टि में अच्छी स्थिति में हैं।

जब तक सारी दुनिया की औरतें आर्थिक स्वतन्त्रता के साथ-साथ मन की स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं करेंगी और संगठित होकर अपने हितों की रक्षा के लिए कदम नहीं उठाएँगी तब तक पुरुष वर्ग उन्हें आगे नहीं बढ़ने देगा।

कलाओं के क्षेत्र में

प्रकृति ने आदिवासियों के कला एवं हस्तकला के ज्ञान को आगे बढ़ाया है। आदिवासी महिलाओं को नए काम करने का अवसर बहुत कम मिलता है। वे हस्ताशिल्प का काम, मिट्टी के बर्तन बनाने या ईंधन एकत्रित करने और कृषिजन्य कामों में लगी रहती है।

“जनजातीय हस्तशिल्प के क्षेत्र में स्त्रियों की भूमिका पर्याप्त महत्त्वपूर्ण रही है। इनके उपकरणों में कलात्मक अभिव्यक्ति के साथ-साथ एक अटूट विश्वास की झलक दिखायी देती है चाहे यह देवी देवताओं के प्रति आस्था हो अथवा जादुई कृत्यों से सम्बद्ध अथवा उपयोगिता एवं सजावट का द्योतक हो।”⁸⁶

आदिवासियों में आमतौर पर कलात्मक वस्तुओं का निर्माण अपने समाज में आवश्यकता के लिए करते हैं। “कतिपय जनजातियों के लोग अपवाद के रूप में हैं जो अपने समुदाय की आवश्यकताओं की पूर्ति के पश्चात् बाह्य समाजों के साथ अपनी हस्तनिर्मित वस्तुओं का क्रय करते हैं। इस दिशा में आदिवासी स्त्रियाँ पर्याप्त महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। जैसे मणिपुर, त्रिपुरा, नागालैण्ड की जनजातियाँ एवं टोडा जनजाति में स्त्रियाँ रंग-बिरंगे वस्त्रों का निर्माण कर अपनी कलात्मक अभिरुचि का परिचय देती हैं। भोटान्तिक नारी अपने बाल्यकाल से ही कताई, बुनाई, दरी-कालीन आदि वस्त्र निर्माण की कला अपनी माता एवं अन्य वरिष्ठ स्त्रियों के संरक्षण में सीखती है। यह कला ही उसके भावी जीवनसाथी के चयन में निर्णायक भूमिका अदा करती है। उदाहरण के तौर पर, विवाह के अवसर पर लड़के पक्ष के लोग जब लड़की का चयन करने के लिये जाते थे तो उस अवसर पर लड़की द्वारा निर्मित वस्त्र ही उसकी योग्यता के परिचायक के रूप में माने जाते थे न कि उसका रूप-रंग एवं पारिवारिक पृष्ठभूमि। अपनी इस अद्वितीय कला के परिणामस्वरूप ही भोटान्तिक नारी एक विशिष्ट एवं सम्मानजनक प्रस्थिति प्राप्त किये हुए है तथा भोटान्तिक समाज के आर्थिक क्रिया-कलापों का केन्द्र बिन्दु बनी हुई है।”⁸⁷

इसके अतिरिक्त, सौंदर्यशास्त्र की झलक भी जनजातीय कलाकृतियों में देखने को मिलती है। लाखेर जनजाति में बाँस की टोकरी आदि का चलन है। इस कार्य में स्त्रियाँ विशेष निपुणता रखती हैं। इसी प्रकार इनके समाज में मिट्टी के बर्तन बनाने का चलन भी है। इस कार्य को या तो अविवाहित लड़कियाँ अथवा विधवाएँ करती हैं।⁸⁸

आदिवासी महिलाओं ने कला व संगीत के क्षेत्र में भी अपना योगदान दिया है। चित्रकारी के क्षेत्र में भी वे अब सक्रिय नजर आने लगी हैं। कुछ महिलाएँ कलाकार व गायिकाएँ भी हैं जिनके म्यूजिकल एलबम व ऑडियो-वीडियो कैसेट्स भी बाजार में आ चुके हैं।

“प्राचीनकाल में सौन्दर्य प्रतियोगिता का किसी ने नाम भी नहीं सुना था। पहले खासी महिलाएँ कभी भी अपनी देह या देह के किसी भाग का लेश मात्र भी प्रदर्शन नहीं करती थीं और शालीन और मर्यादित वस्त्र धारण किया करती थी। जबकि आजकल युवा वर्ग में सौन्दर्य प्रदर्शन इतना लोकप्रिय है जिसकी कभी कल्पना भी नहीं की गई थी।”⁸⁹

बाहरी सम्पर्क में आने की वजह से आदिवासी महिलाओं में भी सुंदर दिखने की चाह बढ़ी है। इनमें शरीर को गुदवाकर सजाया जाता है। “आमतौर पर स्त्रियाँ शरीर में ‘गोदन’ करती थी जैसे-गौंड तथा बैगा जनजाति की स्त्रियाँ शरीर के अधिकाधिक अंगों को गोदती थीं, जिसे सुन्दरता के प्रतीक के रूप में माना जाता था।”⁹⁰

इनमें शरीर को सजाने के बहुत सारे तरीके हैं- “कुछ अवसरों पर लोग अपने बदन को विभिन्न प्रकार की चित्रकारी से सजाते हैं। गौंड तथा बैगा लोग सुन्दर कंधियाँ बनाकर अपने बालों में लगाते हैं। अविवाहित युवक एवं युवतियाँ कंधियों का आदान-प्रदान करते थे, जो उनमें प्रेम के संकेत के रूप में होता था। समुद्र के किनारे तटीय प्रदेशों एवं द्वीप समूहों में रहने वाले आदिवासी सीप तथा अन्य बहुमूल्य पत्थरों

आदि का संग्रह कर उनसे अपने बदन को सजाते सँवारते हैं। राजस्थान की गरासिया जनजाति की स्त्रियाँ सुन्दर दिखने के लिये अक्सर अपने कपालों में लाल रंग लगाती हैं। गरासिया तथा भील जनजाति की स्त्रियाँ अपने बदन में कभी-कभी फूल तथा पक्षी आदि के चित्र बनाकर अपने-आपको सुन्दर बनाने का प्रयास करती हैं।”⁹¹

मुण्डा आदिवासियों की महिलाएँ भी कला के क्षेत्र में आगे रहती हैं। ये अपने हस्तनिर्मित उत्पादों को बाजारों में बेचते हैं। महाश्वेता देवी ने ‘चोट्टि मुण्डा और उसका तीर’ में चोट्टि की पत्नी भी हस्तकला में निपुण है। “फूस बटकर रस्सी बनाती। लकड़ी के अड्डे बनाकर डोरी से बाँध, बैठने के लिए चौकी बनाती।”⁹² इस प्रकार वे अपनी आर्थिक स्थिति भी मजबूत करती हैं।

इसी उपन्यास में अमलेश चोट्टि की पत्नी की बनाई हुई चटाई को देखकर आश्चर्यचकित हो जाता है। “चोट्टि की पत्नी ने टुकड़े-टुकड़े कर चटाई बुनी थी। उसके बाद लाल-पीले धागों के टुकड़ों से उन्हें जोड़ा था। लाल और पीले धागों का नमूना बड़ा सुन्दर था।”⁹³

आदिवासी कला को जीवित रखने में स्त्रियों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। लेकिन बाहरी लोगों के सम्पर्क में आने के कारण धीरे-धीरे इनकी कला का पतन होता जा रहा है। गैर-आदिवासी लोगों के सम्पर्क में आने से इनके मन में हीनता की भावना घर कर गई है, जिससे इन्होंने अपनी हस्तनिर्मित वस्तुओं का त्याग करना शुरु कर दिया है।

चाहे जो हो आदिवासी महिलाएँ अपनी कला को बचाने का पूरा प्रयास करती हैं। इसीलिए वे पीढ़ी-दर पीढ़ी अपने कौशल को सिखाती हैं। जिससे इनकी कला को बचाए रखा जा सके।

सारांश

आदिवासी महिलाओं को समाज में बराबर का दर्जा दिया गया है। आदिवासी समाजों में महिलाओं की स्थिति का आंकलन करने के लिए उनकी सामाजिक स्थिति को देखना चाहिये। ये स्वावलंबी होती हैं तथा स्वयं खट-कमाकर अपने परिवार का पालन-पोषण करती हैं। ऐसी महिलाओं को सम्पत्ति में हिस्से का हक न होने की वजह से विधवा या परित्यक्ता होने पर अपमानित, प्रताड़ित या उनकी हत्या कर देना आजकल इनके समाज में आम बात हो गयी है।

आदिवासी समाज में बहुत सी ऐसी बातें हैं, जिनसे स्त्रियों को आगे बढ़ने से रोका जाता है। पुरुषवादी समाज में उसे कोई अधिकार नहीं दिए जाते हैं। आज आदिवासी समाज में औरतों को लेकर सोच में परिवर्तन होना चाहिये। तभी उन्हें बराबरी का हक मिलेगा।



संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. रमणिका गुप्ता : स्त्री विमर्श, कलम और कुदाल के बहाने-शिल्पायन, पृ.सं.-131
2. वीणा सिन्हा : सपनों से बाहर-मेधा बुक्स, पृ.सं.-25
3. पुन्नी सिंह : सहराना-ग्रंथकेतन, पृ.सं.-99
4. वीणा सिन्हा : सपनों से बाहर-मेधा बुक्स, पृ.सं.-191
5. वीणा सिन्हा : सपनों से बाहर-मेधा बुक्स, पृ.सं.-205
6. सं. रमणिका गुप्ता : अखिल भारतीय आदिवासी विशेषांक, पृ.सं.-98
7. पुन्नी सिंह : सहराना-ग्रंथकेतन, पृ.सं.-207
8. रमणिका गुप्ता : सीता-मौसी-ज्योतिलोक प्रशासन, पृ.सं.-54
9. महाश्वेता देवी : चोट्टि मुण्डा और उसका तीर, राधाकृष्ण पेपरबैक्स, पृ.सं.-278
10. राकेश कुमार सिंह : जो इतिहास में नहीं है-भारतीय ज्ञानपीठ, पृ.सं.-73
11. रमणिका गुप्ता : बहू-जुठाई-शिल्पायन, पृ.सं.-117
12. वही, पृ.सं.-137
13. रमणिका गुप्ता : स्त्री विमर्श : कलम और कुदाल के बहाने-शिल्पायन, पृ.सं.-20
14. सं. रमणिका गुप्ता : आदिवासी कौन-राधाकृष्ण, पृ.सं.-21
15. एम. वीरप्पा मोयिलि : कोट्टा-भारतीय ज्ञानपीठ, पृ.सं.-170
16. संजीव : जंगल जहाँ शुरु होता है-राधाकृष्ण पेपरबैक्स, पृ.सं.-118
17. वही, पृ.सं.-119
18. वही, पृ.सं.-182
19. वही, पृ.सं.-196
20. वही, पृ.सं.-212
21. डॉ. एस.के. सैनी : राजस्थान के आदिवासी-यूनिक ट्रेडर्स, पृ.सं.-120
22. सं. डॉ. रमणिका गुप्ता : आदिवासी कौन-राधाकृष्ण, पृ.सं.-21

23. रमणिका गुप्ता : स्त्री विमर्श : कलम और कुदाल के बहाने-शिल्पायन, पृ.सं.-132
24. महाश्वेता देवी : जंगल के दावेदार-राधाकृष्ण पेपरबैक्स, पृ.सं.-132
25. रमणिका गुप्ता : सीता-मौसी-ज्योतिलोक प्रकाशन, पृ.सं.-64
26. रमणिका गुप्ता : आदिवासी सम्मेलन, रांची, पृ.सं.-96
27. रमणिका गुप्ता : स्त्री विमर्श : कलम और कुदाल के बहाने-शिल्पायन, पृ.सं.-76
28. सं. रमणिका गुप्ता : अखिल भारतीय आदिवासी विशेषांक, पृ.सं.-91
29. रमणिका गुप्ता : सीता-मौसी-ज्योतिलोक प्रकाशन, पृ.सं.-39
30. मैत्रेयी पुष्पा : अल्मा कबूतरी-राजकमल प्रकाशन, पृ.सं.-205
31. राकेश कुमार सिंह : जो इतिहास में नहीं है-भारतीय ज्ञानपीठ, पृ.सं.-52
32. मैत्रेयी पुष्पा : अल्मा कबूतरी-राजकमल प्रकाशन, पृ.सं.-244
33. रमणिका गुप्ता : सीता-मौसी-ज्योति लोक प्रकाशन, पृ.सं.-99
34. राकेश कुमार सिंह : जो इतिहास में नहीं है-भारतीय ज्ञानपीठ, पृ.सं.-91
35. वही, पृ.सं.-92
36. वही, पृ.सं.-95
37. मैत्रेयी पुष्पा : अल्मा कबूतरी-राजकमल प्रकाशन, पृ.सं.-359
38. राकेश कुमार सिंह : जो इतिहास में नहीं है-भारतीय ज्ञानपीठ, पृ.सं.-102
39. रमणिका गुप्ता : सीता-मौसी-ज्योतिलोक प्रकाशन, पृ.सं.-113
40. मैत्रेयी पुष्पा : अल्मा कबूतरी-राजकमल प्रकाशन, पृ.सं.-361
41. मैत्रीय मैत्रेयी पुष्पा : अल्मा कबूतरी-राजकमल प्रकाशन, पृ.सं.-363
42. रमणिका गुप्ता : सीता-मौसी-ज्योतिलोक प्रकाशन, पृ.सं.-140
43. राकेश कुमार सिंह : जो इतिहास में नहीं है-भारतीय ज्ञानपीठ, पृ.सं.-190
44. रमणिका गुप्ता : सीता-मौसी-ज्योतिलोक प्रकाशन, पृ.सं.-161
45. राकेश कुमार सिंह : जो इतिहास में नहीं है-भारतीय ज्ञानपीठ, पृ.सं.-396
46. वही, पृ.सं.-397

47. रमणिका गुप्ता : बहू-जुठाई-शिल्पायन, पृ.सं.-77
48. वही, पृ.सं.-76
49. राकेश कुमार सिंह : जो इतिहास में नहीं है-भारतीय ज्ञानपीठ, पृ.सं.-398
50. रमणिका गुप्ता : सीता-मौसी-ज्योतिलोक प्रकाशन, पृ.सं.-164
51. वही, पृ.सं.-172
52. वही, पृ.सं.-173
53. वही, पृ.सं.-123
54. सं. रमणिका गुप्ता : अखिल भारतीय आदिवासी विशेषांक-पृ.सं.-104
55. सं. रमणिका गुप्ता : आदिवासी कौन-राधाकृष्ण, पृ.सं.-20
56. डॉ. रामनाथ शर्मा, डॉ. राजेन्द्र कुमार शर्मा : मानवशास्त्र-एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स-पृ.सं.-366
57. सं. रमणिका गुप्ता : अखिल भारतीय आदिवासी विशेषांक-पृ.सं.-97
58. पडालिया, मुन्नी : भारतीय राजनीति में महिलाएँ, लोकतंत्र समीक्षा, जुलाई 2008, पृ.सं.-156
59. माथुर, एल.पी., भारत की महिला स्वतंत्रता सेनानी, अविष्कार पब्लिशर्स, जयपुर, 2003, पृ.सं.-156
60. डॉ. हरिश्चन्द्र उप्रेती : भारतीय जनजातियाँ संरचना एवं विकास- राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पृ.सं.-308
61. रमणिका गुप्ता : स्त्री विमर्श : कलम और कुदाल के बहाने-शिल्पायन, पृ.सं.-22
62. वही, पृ.सं.-30
63. मैत्रेयी पुष्पा : अल्मा कबूतरी-राजकमल प्रकाशन, पृ.सं.-312
64. रमणिका गुप्ता : स्त्री विमर्श : कलम और कुदाल के बहाने-शिल्पायन, पृ.सं.-35
65. वही, पृ.सं.-36
66. वही, पृ.सं.-37

67. रमणिका गुप्ता : सीता-मौसी-ज्योतिलोक प्रकाशन-पृ.सं.-52
68. वही, पृ.सं.-55
69. वही, पृ.सं.-76
70. डॉ. रामनाथ शर्मा, डॉ. राजेन्द्र कुमार शर्मा : मानव शास्त्र-एंटलाटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, पृ.सं.-367
71. रमणिका गुप्ता : स्त्री विमर्श : कलम और कुदाल के बहाने, शिल्पायन, पृ.सं.-155
72. डॉ. एस.के. सैनी : राजस्थान के आदिवासी -यूनिक ट्रेडर्स, पृ.सं.-140
73. राकेश कुमार सिंह : पठार पर कोहरा-भारतीय ज्ञानपीठ, पृ.सं.-74
74. वही, पृ.सं.-47
75. रमणिका गुप्ता : स्त्री विमर्श : कलम और कुदाल के बहाने-शिल्पायन, पृ.सं.-15
76. महाश्वेता देवी : चोट्टि मुण्डा और उसका तीर-राधाकृष्ण पेपरबैक्स, पृ.सं.-59
77. रमणिका गुप्ता : बहू-जुठाई-शिल्पायन, पृ.सं.-20
78. वही, पृ.सं.-104
79. रमणिका गुप्ता : सीता-मौसी-ज्योतिलोक प्रकाशन, पृ.सं.-65
80. डॉ. हरिश्चंद्र उप्रेती : भारतीय जनजातियाँ: संरचना एवं विकास- राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पृ.सं.-298
81. रमणिका गुप्ता : स्त्री विमर्श : कलम और कुदाल के बहाने-शिल्पायन, पृ.सं.-124
82. वही, पृ.सं.-130
83. राकेश कुमार सिंह : पठार पर कोहरा-भारतीय ज्ञानपीठ, पृ.सं.-187
84. रमणिका गुप्ता : सीता-मौसी-ज्योतिलोक प्रकाशन, पृ.सं.-151
85. ब्रह्मकुमार शुक्ला : द डफलाज ऑफ नार्थ ईस्ट फ्रंटियर ऐजेंसी, शीलांग 1959, पृ.सं.-89

86. डॉ. हरिश्चंद्र उप्रेती : भारतीय जनजातियाँ : राजस्थान हिन्दी संरचना एवं विकास, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पृ.सं.-295
87. वही, पृ.सं.-295
88. कमला देवा चट्टोपाध्याय, पूर्वार्द्ध, पृ.सं.-232
89. रमणिका गुप्ता : अखिल भारतीय आदिवासी विशेषांक, पृ.सं.-97
90. डॉ. हरिश्चंद्र उप्रेती : भारतीय जनजातियाँ : राजस्थान हिन्दी संरचना एवं विकास, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पृ.सं.-310
91. वही, पृ.सं.-311
92. महाश्वेता देवी : चोट्टि मुण्डा और उसका तीर-राधाकृष्ण पेपरबैक्स, पृ.सं.-248
93. वही, पृ.सं.-288

उपसंहार

उपसंहार

आदिवासी भारतीय संस्कृति और इतिहास में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। ये आरम्भ से ही प्रकृति के साथ रहे हैं, लेकिन वर्तमान में इनके वनों पर गैर-आदिवासियों ने कब्जा कर लिया। इससे ये पलायन करने को मजबूर हो गए हैं। इससे इनमें अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो गईं। इन समस्याओं से आदिवासी महिला अधिक प्रभावित हुईं। इन्होंने अनेक पारिवारिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक समस्याओं का सामना किया, शोध में इन सब स्थितियों का सूक्ष्म दृष्टि से विवेचन किया गया है।

शोध में विभिन्न स्थानों पर निवास करने वाले आदिवासियों, उनकी समस्याओं, खानपान, वेशभूषा, त्योहार, परम्पराएँ और उनके सांस्कृतिक परिवर्तन को भी प्रस्तुत किया गया है। भारत में निवास करने वाली आदिवासी महिला पर हिन्दी में कितना और कौनसा साहित्य सामने आया इसका सर्वेक्षण शोध की प्रमुख उपलब्धि है।

भारत सांस्कृतिक विविधताओं का देश है। यहाँ पर विभिन्न जातियाँ निवास करती हैं। जिनमें आदिवासियों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। आदिवासी हमारी प्राचीन संस्कृति के परिचायक हैं, जो समाज से अलग रहने के कारण पिछड़ गये हैं। आज आदिवासी समाज संकट के कठिन दौर से गुजर रहा है। जल, जंगल और जमीन की समस्या, लोक संस्कृति की समस्या, शिक्षा, स्वास्थ्य और स्त्रियों से जुड़ी समस्याएँ दिनो-दिन गंभीर होती जा रही हैं।

यद्यपि भारत के आदिवासी समाज देश की जनसंख्या का केवल 8.2 प्रतिशत ही है। ये आदिवासी देश के प्रत्येक प्रांत में पाए जाते हैं। देश के उत्तर-पूर्वी भाग में मंगोल प्रजाति के लक्षणों वाले आदिवासी अलग-अलग राज्यों में पाए जाते हैं। इसी प्रकार आदिवासियों का एक विशाल क्षेत्र देश के मध्य भाग में निवास करता है। जिनमें झारखण्ड, बिहार, छत्तीसगढ़, उड़ीसा और मध्यप्रदेश, राजस्थान, महाराष्ट्र

और गुजरात को भी जोड़ दे तो यहाँ के आदिवासी समाज देश की कुल आदिवासी जनसंख्या के 87 प्रतिशत के लगभग होंगे। इसके अलावा अन्य राज्यों में भी आदिवासी पाए जाते हैं।

आदिवासी समाज एवं संस्कृति में हिंदुओं के रीति-रिवाज, प्रथा एवं धर्म का अधिक प्रभाव दिखाई देने लगा है। कुछ आदिवासी समुदाय ऐसे हैं, जिनमें परिवर्तन शीघ्रता से हो रहा है। वे समाज अब आधुनिक समाज के तौर-तरीके को अपनाते हुए अपने आपको आगे बढ़ाना चाहता है तथा प्रगति पथ पर चलना चाहता है।

आदिवासी सम्पूर्ण भारत में फैले हुए हैं। भारत के आदिवासी समाज देश की जनसंख्या का केवल 8.2 प्रतिशत ही है। ये आदिवासी मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, नागालैण्ड, अरुणाचल प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान मेघालय, गुजरात बिहार आदि राज्यों में निवास करते हैं। आदिवासियों का निवास जंगल में होता है, इसलिए भोजन के रूप में वनों से प्राप्त फल तथा कृषि पर आश्रित रहते हैं। ये महुआ, कंद, मूल, फल आदि का सेवन करते हैं। आदिवासियों को सजने-सँवरने का शोक होता है। वेशभूषा के द्वारा आदिवासियों की विशेषताओं का भी पता लगाया जा सकता है। वस्त्रों को पहनने का ढंग वस्त्रों के प्रकार की भिन्नता तथा रंग सभी आदिवासियों को एक-दूसरे से अलग रखती है। त्योहारों के द्वारा आदिवासी अपनी परम्पराओं को संरक्षित किए हुए हैं।

भारत के आदिवासियों की समस्याएँ बहुत कठिन हैं और उनके रीति-रिवाज, रहन-सहन, सभ्यता, आचार-विचार, संस्कृति, धर्म ललित कला आदि में सुधार की जरूरत है। सभ्य समाज से सम्पर्क में आने के कारण उनके सामने अनेक समस्याएँ खड़ी हो गई हैं। बाहरी संस्कृति के सम्पर्क में आने के कारण वे अपनी संस्कृति का त्याग करते जा रहे हैं। विभिन्न संवैधानिक प्रावधानों तथा आरक्षण के बाद भी आदिवासी समाज का एक बड़ा भाग सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़ा ही रह गया। अब ऐसे प्रयास किये जाने चाहिये जो जनसामान्य तक पहुँच सके, जिससे इनका विकास हो सके।

प्राचीनकाल से ही आदिवासी वनों और पहाड़ों में रह रहे हैं। जीविकोपार्जन के लिए ये वनों पर ही निर्भर रहते हैं। इनकी प्रमुख समस्या जल, जंगल, जमीन से जुड़ी हुई है। विकास के नाम पर विस्थापित करके इन्हें वनों से खदेड़ा जा रहा है। इन सारी समस्याओं का चित्रण आदिवासी साहित्य में हो रहा है।

समय के साथ आदिवासी कथा लेखन आगे बढ़ रहा है। आदिवासी लेखक, कहानी, उपन्यास, व्यंग्य, नाटक आदि विधाओं में लिख रहा है। लेखक अपनी रचनाओं में देश की समस्याओं को उजागर कर रहे हैं। आदिवासी जीवन से जुड़े उपन्यासों व कहानियों का उद्देश्य इस गतिमान समय में जीते हुए आदिवासियों के समग्र पहलुओं को उद्घाटित करना है।

रमणिका गुप्ता, मैत्रेयी पुष्पा, महाश्वेता देवी, वीणा सिन्हा, संजीव, पुन्नी सिंह, मधु कांकरिया, राकेश कुमार सिंह, एम. वीरप्पा मोयिलि, संजीव बख्शी आदि के उपन्यासों व कहानियों में आदिवासियों को चित्रित किया गया है।

वर्तमान में आदिवासी कथा साहित्य समृद्ध हो चुका है। साहित्यकारों ने विभिन्न दृष्टिकोणों से आदिवासी साहित्य लिखा है। इन लेखकों ने अपने कथा साहित्य में आदिवासी जीवन के अनेकानेक पक्षों, उनकी समस्याओं तथा परिणामों को संवेदनापूर्ण अभिव्यक्ति दी है। यह कथा साहित्य हिन्दी साहित्य में विशिष्ट स्थान पाने का अधिकारी है। इस प्रकार अपने अस्तित्व के लिए लड़ रहे, आदिवासी समाज के जीवन संघर्षों और उनकी संस्कृति को स्वर देता आदिवासी साहित्य एक नये ढंग से इनके अपरिचित पहलुओं को उजागर कर रहा है।

लोककथाओं की परम्परा को बचाए रखने में आदिवासी महिलाएँ अपना अधिक महत्त्व रखती हैं। स्त्रियाँ ही अपने बालक-बालिकाओं को लोककथा सुनाकर नैतिक शिक्षा देती हैं। लोककथाओं में परीकथाएँ, पशु-पक्षी कथाएँ, नीति कथाएँ, पुराण कथाएँ, स्थानीय परम्परागत कथाएँ आदि आती हैं। लोककथाएँ मनोरंजन का साधन होती हैं। जिससे आदिवासी नीरस जीवन में आनंद का अनुभव करता है। लोककथाएँ मनुष्य के ज्ञान में वृद्धि करती हैं।

स्त्री अपने सम्पूर्ण जीवन में बहुत सारे रिश्ते निभाती है और उनका सम्मान करती है। स्त्री के अंदर ही इतनी क्षमता होती है जो सभी रिश्तों का मान रखती हुई अपने जीवन में आगे बढ़ती है। लोकगीतों और लोककथाओं की परम्परा को आगे बढ़ाने में स्त्रियों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जीवन के विभिन्न पक्षों की सरल तथा स्वाभाविक अभिव्यक्ति महिला द्वारा गाए लोकगीतों में ही होती है। लोकपर्व आदिवासियों की पहचान है। कोई भी पर्व स्त्री के बिना अधूरा होता है। वे इसमें बढ़-चढ़कर हिस्सा लेती हैं। इनके अधिकांश त्योहार वनों से जुड़े होते हैं। वनों का अस्तित्व समाप्त होने से इनके पर्वों की परम्परा का भी धीरे-धीरे क्षरण होता जा रहा है। पर्यावरण के विनाश के साथ ही इनका सांस्कृतिक क्षरण होने लगा है।

आधुनिक वैज्ञानिक और तकनीकी विकास के परिणाम स्वरूप आये परिवर्तनों से आदिवासी स्त्री भी वंचित नहीं रही है। बदलते समय में आदिवासी महिला में भी बदलाव आया है। शिक्षा के प्रचार के कारण देश और समाज में आये नवीन परिवर्तनों ने आदिवासी नारी की जीवन शैली और जीवन दृष्टि को सर्वथा नवीन आयाम प्रदान किया है।

आदिवासी महिलाओं में अशिक्षा के कारण अन्धविश्वास भी बहुत है। इनमें किसी बिमारी के होने पर भूत-प्रेत का प्रकोप माना जाता है और जब तक बीमार व्यक्ति की हालत गम्भीर नहीं हो जाती, तब तक अस्पताल नहीं ले जाया जाता है। बच्चों की शिक्षा और प्रौढ़ शिक्षा के द्वारा इन अन्धविश्वासों को दूर किया जा सकता है। प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों को अक्षर ज्ञान का केन्द्र न बनाकर अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र बनाया जाए, जिससे आदिवासी महिलाएँ वर्तमान समय से भी परिचित हो सकें और उनका शोषण गैर-आदिवासियों द्वारा न किया जा सके।

आदिवासी नारी पर आधुनिकता का प्रभाव हो रहा है। वे सभी क्षेत्र में अपने कदम बढ़ा रही हैं। स्त्री का केवल स्वतन्त्र होकर निर्णय लेना या आर्थिक रूप से स्वतन्त्र हो जाना ही उनकी अस्मिता नहीं है। स्त्री अस्मिता का अर्थ है स्त्री के प्रति समाज के दृष्टिकोण और मानसिकता में बदलाव, जिसमें स्त्री का स्वयं का दृष्टिकोण भी शामिल हो।

आदिवासी महिलाओं को शिक्षित करके उनके आने वाले भविष्य को संवारा जा सकता है। इनमें जन-जागृति लाकर, इनमें व्याप्त बुराइयों से अवगत कराकर इन्हें आगे बढ़ाया जा सकता है।

आदिवासी महिला सभी क्षेत्रों में अपनी भूमिका जिम्मेदारी के साथ बखूबी निभाती है। पारिवारिक क्षेत्र, सामाजिक क्षेत्र, राजनैतिक क्षेत्र, आर्थिक क्षेत्र तथा कलाओं के क्षेत्र में आदिवासी नारी संघर्ष करती हुई आगे बढ़ रही है।

आज भी भारत में औरत अगर अपने त्यागमयी रूप से जरा सी भी विचलित होती है तो वह तुरन्त कुलटा या खलनायिका करार दी जाती है। उसकी शुचिता के लिए पति के प्रति एकनिष्ठ होना ही कसौटी माना गया है। वह पति, परिवार, देश अथवा समाज की ही सम्पत्ति है, वहीं तक उसकी हद है। कहने के लिए ही भारतीय मानस औरत को पूज्य कहता है लेकिन डग-डग पर उसे माया, ठगनी, कुटनी कहकर अपमानित करता रहा है। कृष्ण ने तो गीता में उसे 'पाप की पोटली' ही कह दिया।

आदिवासियों में महिलाओं को बराबर का दर्जा दिया गया है। पारिवारिक क्षेत्र में वे अपनी सक्रीय भूमिका निभाती है। जनजातीय स्त्री के अधिकार पुरुष से कम होने पर भी इससे उसकी स्थिति किसी भी प्रकार से नीची नहीं होती क्योंकि जनजातीय जीवन में राजनीतिक अधिकारों से अधिक कर्तव्यों पर जोर है। जनजाति के मुखिया को बहुत से अधिकार होते हैं परन्तु फिर उस पर जनजाति की रक्षा का भार भी होता है। इस गुरुतर कर्तव्य को पूरा न करने पर कोई भी व्यक्ति अपने अधिकारों को अक्षुण्ण नहीं रख सकता। वास्तव में जनजातीय समाजों में राजनीति के क्षेत्र में अधिकारों की निर्णायक शारीरिक और शस्त्र सम्बन्धी शक्ति होती है। अतः यह नितान्त स्वाभाविक है कि पुरुषों के अधिकार अधिक है। परन्तु ऐसे आदिम समाज भी हैं जहाँ सारे राजनीतिक अधिकार स्त्रियों के हाथ में होते हैं।

आदिवासी महिलाओं को समाज में बराबर का दर्जा दिया गया है। आदिवासी समाजों में महिलाओं की स्थिति का आंकलन करने के लिए उनकी सामाजिक स्थिति

को देखना चाहिये। ये स्वावलंबी होती है तथा स्वयं खट-कमाकर अपने परिवार का पालन-पोषण करती है। ऐसी महिलाओं को सम्पत्ति में हिस्से का हक न होने की वजह से विधवा या परित्यक्ता होने पर अपमानित, प्रताड़ित या उनकी हत्या कर देना आजकल इनके समाज में आम बात हो गयी है।

आदिवासी समाज में बहुत सी ऐसी बातें हैं, जिनसे स्त्रियों को आगे बढ़ने से रोका जाता है। पुरुषवादी समाज में उसे कोई अधिकार नहीं दिए जाते हैं। आज आदिवासी समाज में औरतों को लेकर सोच में परिवर्तन होना चाहिये। तभी उन्हें बराबरी का हक मिलेगा।



संदर्भ ग्रन्थ सूची

संदर्भ ग्रन्थ सूची

(अ) उपन्यास

1. राकेश कुमार सिंह, जो इतिहास में नहीं हैं, (2005), भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली
2. महाश्वेता देवी, चोट्टि मुण्डा और उसका तीर (2008), राधा कृष्ण पेपरबैक्स, नई दिल्ली
3. मैत्रेयी पुष्पा, अल्मा कबूतरी (2011), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
4. मधु कांकरिया, खुले गगन के लाल सितारे (2011), किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली
5. संजीव बख्शी, भूलन कांदा (2012) अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद, उ.प्र.
6. एम. वीरप्पा मोयिलि, कोट्टा (2009) भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली
7. संजीव, जंगल जहाँ शुरु होता (2010) राधाकृष्ण पेपरबैक्स, नई दिल्ली
8. मैत्रेयी पुष्पा, झूलानट (1999), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
9. पुन्नी सिंह, सहराना (2012), ग्रंथकेतन, दिल्ली
10. वीणा सिन्हा, सपनों से बाहर (2003), मेधा बुक्स, दिल्ली
11. रमणिका गुप्ता, सीता-मौसी (2010), ज्योतिलोक प्रकाशन, दिल्ली
12. महाश्वेता देवी, जंगल के दावेदार (1998), राधाकृष्ण पेपरबैक्स, नई दिल्ली
13. राकेश कुमार सिंह, पठार पर कोहरा (2005), भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली

(ब) कहानी-संग्रह

1. रमणिका गुप्ता, बहू-जुठाई (2010), शिल्पायन, दिल्ली
2. महाश्वेता देवी, इतवा मुंडा ने लड़ाई जीती (2013), नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया नई दिल्ली

हिन्दी शब्द कोष

1. हिन्दी भाषा एवं साहित्य विश्वकोश (खण्ड-3), डॉ. गणपती चन्द्र गुप्त
1995
2. हिन्दी शब्द कोश, धीरेन्द्र वर्मा
3. राजस्थानी हिन्दी शब्दकोश (खण्ड-1), आचार्य बद्रीप्रसाद सांकरिया 1997
4. हिन्दी शब्दकोश, आचार्य सुधाकर द्विवेदी जी
5. हिन्दी का आधारभूत शब्दकोश, ब्रिजेश्वर शर्मा
6. हिन्दीशब्द कोश का आठवाँ भाग, श्याम सुन्दर दास
7. हिन्दी शब्द सागर प्रथम भाग, श्याम सुन्दर दास
8. डायमण्ड हिन्दी शब्दकोश, गिरिराम शरण अग्रवाल बलजीत सिंह
9. वृहत प्रामाणिक हिन्दी शब्दाकोश, रामचन्द्र वर्मा
10. हिन्दी शब्दकोश, हरदेव बाहरी
11. भारत ज्ञान कोश (खण्ड-2), इन्दु रामचन्दानी

पत्र-पत्रिकाएँ

1. युद्धरत आम आदमी, रमणिका गुप्ता
2. अरावली उद्घोष, बी.पी. पथिक
3. हंस, राजेन्द्र प्रसाद
4. अक्षर पर्व, देश बन्धु
5. समीक्षा, श्री गोपाल राय
6. वर्तमान साहित्य, धनंजय
7. नया ज्ञानोदय, रवीन्द्र कालिया

8. संचेतना, डॉ. महीप सिंह
9. आजकल, प्रताप सिंह 'विष्ट'
10. कादम्बिनी, राजेन्द्र अवस्थी
11. आलोचना, नामवर सिंह
12. वसुधा, हरिशंकर परसाई
13. दिनमान, घनश्याम पंकज
14. विशाल भारत, बनारसीदास चतुर्वेदी
15. सुधा, निराला

अन्य संदर्भ ग्रंथ

1. डॉ. रमणिका गुप्ता : आदिवासी कौन, राधाकृष्ण प्रकाशन
2. डॉ. रमणिका गुप्ता : आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, वाणी प्रकाशन
3. डॉ. रमणिका गुप्ता : स्त्री विमर्श कलम और कुदाल के बहाने, शिल्पायन प्रकाशन
4. डॉ. रमणिका गुप्ता : मेरे साक्षात्कार, किताबघर, प्रकाशन
5. डॉ. एस.के. सैनी : राजस्थान के आदिवासी, यूनिवर्सिटी ट्रेडर्स जयपुर
6. डॉ. शिवतोष दास : भारत की जनजातियाँ, किताबघर प्रकाशन
7. उमाशंकर मिश्रा व प्रभात कुमार तिवारी : भारतीय आदिवासी, हिन्दी ग्रंथ अकादमी
8. डॉ. रमणिका गुप्ता : आदिवासी लोक, अंश प्रकाशन
9. रूपचंद वर्मा : भारतीय जनजातियाँ, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार
10. डॉ. श्री नाथ : जनजाति समाजशास्त्र, हिंदी ग्रंथ अकादमी

- 1 1. डॉ. राजेन्द्र जैन : झाबुआ के भीलों की संस्कृति, मानसी पब्लिकेशन
- 1 2. धर्मराज सिंह : अरुणाचल की आदि जनजाति का समाज भाषिकी अध्ययन, वाणी प्रकाशन
- 1 3. एस. अहमद : छत्तीसगढ़ की जनजातियाँ, प्रखर पब्लिशर्स
- 1 4. सुदर्शन वशिष्ठ : जनजाति संस्कृति, सुहानी बुक्स दिल्ली
- 1 5. डी.आर. आहुजा : राजस्थान लोक संस्कृति और साहित्य, नेशनल बुक ट्रस्ट
- 1 6. हरिनारायण दत्त व श्रीमती जसप्रीत बाजवा : संस्कार और प्रथाएँ, आकृति प्रकाशन
- 1 7. श्याम राव राठौड़ : साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी विमर्श, मिलिन्द प्रकाशन
- 1 8. महाश्वेता देवी व त्रिपाठी : नक्सलवाद, वाणी प्रकाशन
- 1 9. शैलेन्द्र मौर्य : भारतीय समाज में महिला विमर्श एवं यथार्थ, पोइन्टर पब्लिशर्स
- 2 0. रवीन्द्रनाथ मुकर्जी : सामाजिक मानव शास्त्र की रूपरेखा, विवेक प्रकाशन
- 2 1. डॉ. रामनाथ शर्मा, डॉ. राजेन्द्र कुमार शर्मा : मानव शास्त्र, एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स
- 2 2. डॉ. बापू राव देसाई : लोक साहित्य, विनय प्रकाशन
- 2 3. माथुर, एल.पी., भारत की महिला स्वतंत्रता सेनानी, अविष्कार पब्लिशर्स, जयपुर, 2003
- 2 4. ब्रह्मकुमार शुक्ला : द डफलाज ऑफ नार्थ ईस्ट फ्रंटियर ऐजेंसी, शीलांग 1959



परिशिष्ट

प्रश्न 1 आपका जन्म स्थान कहाँ पर है?

उत्तर मेरा जन्म 22 अप्रैल, 1930 को सुनाम पंजाब में हुआ था।

प्रश्न 2 आपके माता-पिता का क्या नाम है?

उत्तर माता-स्वर्गीय लीलावती बेदी तथा पिता-स्वर्गीय लेफ्टिनेंट कर्नल प्यारे लाल बेदी हैं।

प्रश्न 3 आपका व्यवसाय क्या है?

उत्तर मेरा व्यवसाय लेखन, सम्पादन एवं समाज सेवा है।

प्रश्न 4 आपकी प्रथम रचना कौनसी है?

उत्तर मेरी प्रथम रचना चौदह वर्ष की उम्र में अपनी दादी की मृत्यु पर 'मृत्यु' नाम की कविता लिखी है।

प्रश्न 5 आपका लिखने का उद्देश्य क्या है?

उत्तर स्वान्तः सुखाय लेखन का कोई अर्थ नहीं। लिखना है तो किसी दिशा और उद्देश्य के लिए लिखना चाहिए। जो सामाजिक सरोकारों से जुड़ा हो। सामाजिक सरोकारों से जुड़ा हुआ लेखन जड़ता और परम्परा को तोड़ता है तथा दृष्टिकोण को बदलता है। केवल आनंदित होने के लिए लिखना लेखन नहीं कहलाता है। न सिर्फ भेड़चाल चलने की बल्कि स्वयं एक नई दिशा देने की जिससे मनुष्य के मूल्यों की रक्षा की जा सके। मैं उसी लेखन को सक्षम मानती हूँ, जो किसी के दिल पर चोट करें और उसकी न सिर्फ मानसिकता बदले बल्कि उसे समाज के प्रति जिम्मेदार बनाए।

प्रश्न 6 आदिवासी लेखन क्यों शुरु किया?

उत्तर शुरु से जो मेरा लेखन था मेरी कविताएँ जो प्रेम व प्रकृति की थी वे मनुष्य से जुड़ी हुई रही हैं। प्रतिरोध का स्वर मेरी रचनाओं में रहा। मैं मानती हूँ कि अन्याय का विरोध करना लेखन का मकसद होता है। सबसे ज्यादा हमारे

देश में वंचित दलित, आदिवासी, स्त्री व अल्पसंख्यक है और बचपन से ही मैंने दलितों की लड़ाई शुरु कर दी थी। हमारे इलाके पटियाला स्टेट में जहाँ मैं पैदा हुई वहाँ आदिवासी नहीं थे हम जानते भी नहीं थे। जब मैं बिहार गई वहाँ मैं आदिवासियों से रुबरु हुई। मैंने हजारी बाग में जब मजदूरों, किसानों, विस्थापितों की लड़ाई शुरु की वहाँ आदिवासी ही थे जो आगे-आगे संघर्ष में चलते थे और मरने मिटने को तैयार थे। वहाँ मैं उनके साथ झोपड़ों में ही रहती थी वहाँ मैंने यह महसूस किया कि जरूरत तो इनके लिए है। मध्यमवर्गीय समाज अपने घरों में रहते हैं ये जो समाज जो वंचित है। उनमें सबसे पहले मैंने दलित की लड़ाई शुरु की। जब मैंने दलितों पर विशेषांक निकाला, तब अरावली उद्घोष के सम्पादक पथिक वर्मा उन्होंने मुझे एक पत्र लिख उसमें लिखा कि मैंने दलितों की कहानियों को तो लिया, आदिवासियों को क्यों नहीं लिया। तो मैंने उनसे प्रेरित होकर मैं उनसे मिलने गई और मैंने उनसे पूरे आदिवासी लेखकों के पते लिए। मैंने 9 राज्यों के आदिवासी लेखक शामिल किये। 2 जून 2002 को अखिल भारतीय आदिवासी सम्मेलन आयोजित किया। वहाँ हमने तय किया कि हमने आदिवासी साहित्य के ग्यारह मुद्दों पर लिखना शुरु किया।

प्रश्न 7 आदिवासियों पर कब से लिखना शुरु किया?

उत्तर आदिवासियों पर सन् 1996 से लिखना शुरु किया।

प्रश्न 8 आदिवासी कौन हैं?

उत्तर बिना जंगल, जमीन अपनी भाषा, संस्कृति, जीवन शैली, मूल्यों के बिना आदिवासी नहीं रह सकता है और यही उससे छीना जा रहा है। आदिवासी इस देश के मूल निवासी है। आर्यों से पहले बोडो यहाँ आए थे। उनकी अपनी राजनीतिक व सामाजिक कारणों से वो जंगलों में भगा दिए गए, जिसके चलते ये पिछड़े गए। तथाकथित आधुनिक सभ्य समाज या प्रस्थापित समाज द्वारा विस्थापित होने को मजबूर होते रहें। अभी विकास के नाम पर

विस्थापित किया जा रहा है। इसके बावजूद उन्होंने अपनी संस्कृति, भाषा, जीवन शैली और मूल्यों को कायम रखा। लगभग भारत में आदिवासियों की 690 बोलियाँ हैं। जिनमें से तीन को मान्यता मिली, कोंकणी, संथाली और बोडो। जिनमें से नब्बे भाषाओं में आदिवासी साहित्य लिखा जा रहा है। लेकिन भारत बाकि भाषाओं के अस्तित्व से ही अनजान है। और वे इन्हें जंगली और असभ्य कहकर पुकारता है। जबकि सबसे ज्यादा समृद्ध वाचिक लोक साहित्य इन्हीं भाषाओं में मिलता है। आदिवासी एक अलग नस्ल हैं जिन्हें उनके नाक, नक्श, बोली से पहचान सकते हैं। आदिवासी समूह में रहता है। आदिवासी समानता, भाईचारा और आजादी को जीता है केवल नारा नहीं लगाता। जबकि बाकि सभ्य समाज इन तीनों गुणों की प्राप्ति के लिए नारे लगाता है।

प्रश्न 9 आदिवासी साहित्य के चर्चित लेखक कौन-कौन हैं?

उत्तर निर्मला पुतुल, हरिराम मीणा, केदार प्रसाद मीणा, शंकर लाल मीणा, ग्रेस कुजूर, सरीता बड़ाईक, रोज केरकेट्टा, मोहनपारगी, रामदयालमुण्डा, रमेश चन्द्र मीणा, गंगासहाय मीणा, हेसल सारु, नीतिशा खल्कों, कृष्णचन्द्र टुड्डू, पुष्पा टेस्टे, पीटर पॉल एक्का, सोन सिंह पुजारी, महादेव टोपों, सत्यनारायण मुण्डा, मृदुला सांगा, बंदना टेटे, महावीर उराव, प्रीति मुर्मू आदि प्रमुख आदिवासी लेखक हैं।

प्रश्न 10 आपकी प्रमुख रचनाएँ कौन-कौन सी हैं?

उत्तर सोलह कविता संग्रह प्रकाशित, जिनमें प्रमुख हैं-खूँटे, मैं आजाद हुई, भला मैं कैसे मरती, आदम से आदमी तक, तिल-तिल नूतन, भीड़ सतर में चलने लगी है, गीत-अगीत, अब और तब आदि। मेरे प्रमुख कहानी संग्रह हैं- बहू जुठाई, दूसरी दुनिया का यथार्थ, समकालीन कहानियाँ आदि। उपन्यास हैं- सीता मौसी। मैंने प्रमुख आलेख प्रकाशित किए हैं।

प्रश्न 1.1 आपने 'युद्धरत आम आदमी' के महिला केन्द्रित अंक में लिखा है कि औरत जब भोगे हुए सच को लिखती है तो उसमें एक अनुभूति की प्रामाणिकता झलकती है, लेकिन पुरुष जब नारी-व्यथा को उजागर करता है तो वह हमदर्दी हो जाती है। उसमें अनुभूति की प्रामाणिकता नहीं आती। आपके अनुसार महिला की व्यथा को महिला द्वारा ही उद्घाटित किया जाना चाहिए। मैं पूछना चाहूँगी कि यदि व्यथित महिला अनपढ़ हो या लेखिका न हो, तो?

उत्तर पहले तो दलित लेखन वाले सभी तर्क महिला लेखन पर भी लागू होते हैं। हम यह कहते हैं कि जब औरत या दलित भोगे हुए सच को लिखती है या लिखता है तो उसमें अनुभव की प्रामाणिकता झलकती है तो वह उसी महिला या दलित के सन्दर्भ में कहा जाता है, जो महिला या दलित लेखिका या लेखक हो। पढ़ा-लिखा व्यक्ति भी यदि वह लेखक न हो, किसी व्यथा को साहित्यिक ढंग से व्यक्त नहीं कर सकता। हम ऐसी तुलना दो समानधर्मी, समकक्ष व्यक्तियों के बीच ही करते हैं- एक गैर-दलित लेखक या महिला लेखिका के साथ ही किसी दलित लेखक या महिला लेखिका की तुलना की जाती है, गैर-लेखक के साथ नहीं। यह स्थिति गैर-दलित, दलित अथवा महिला पर समान रूप से लागू होती है। बिना पढ़े-लिखे गैर-दलित भी अपनी भावनाओं को अभिव्यक्ति देने में लिखित रूप में सक्षम नहीं होते, पर लोक-साहित्य के पुरोधा तो अनपढ़ लोग ही होते हैं।

प्रश्न 1.2 क्या आपको लगता है कि स्त्री-विमर्श में आर्थिक प्रश्नों, मसलन काम का अधिकार, समान वेतन का अधिकार, उत्तराधिकार, सम्पत्ति का अधिकार आदि की उपेक्षा की गयी है और ऐसा वर्गीय दृष्टिकोण छोड़ देने के कारण हुआ है? या आपको लगता है कि पुरुष-सत्तात्मकता का सवाल वर्ग-निरपेक्ष रूप से सभी स्त्रियों की साझा और सबसे बड़ी समस्या है?

उत्तर स्त्री-देह के अधिकार में ही सम्पत्ति का अधिकार, समान वेतन, उत्तराधिकार और काम का अधिकार आदि समाहित हैं। स्त्री की देह पर स्त्री का अधिकार तभी हो सकता है जब उसे ये सभी अधिकार प्राप्त होंगे। ऐसे तो ये सारे अधिकार मोटा-मोटी पुरुष और स्त्री दोनों पर समान रूप से लागू होते हैं, लेकिन स्त्री के सन्दर्भ में ये इसलिए अधिक महत्त्व रखते हैं, चूँकि स्त्री आज के समाज में इन अधिकारों से वंचित रखी गयी है। अधिकारों का अलग-अलग विश्लेषण किया जाये तो केवल उत्तराधिकार और सम्पत्ति का अधिकार काफी हद तक एकतरफा है और उसमें भी भिन्न-भिन्न समाजों में सम्पत्ति व उत्तराधिकार के भिन्न-भिन्न नियम हैं। मेघालय के खासी या दक्षिण के कुर्ग समाजों में सारी सम्पत्ति पुत्री को ही जाती है और वह भी छोटी पुत्री को, किन्तु यह प्रथा विशेष समाजों तक ही सीमित है।

सम्पत्ति हो या उत्तराधिकार या समान वेतन का अधिकार, ये सभी को समान रूप से मिलने चाहिए। बिना संगठित हुए तो पुरुष मजदूरों को भी न्यूनतम वेतन नहीं मिलता। भारतीय नागरिकों को काम का अधिकार प्राप्त नहीं है। दरअसल ये लड़ाइयाँ समाज और सरकार से ताल्लुक रखती हैं और ये संगठित और सम्मिलित रूप से स्त्री-पुरुष को लड़नी पड़ेंगी। स्त्रियों के लिए समान वेतन की लड़ाइयाँ, स्त्रियों के संगठन के समकक्ष ही स्त्री-पुरुषों की यूनियनों भी लड़ती हैं। राजनीतिक दल भी लड़ते हैं। विडम्बना तो यह है कि पुरुष-सत्तात्मक अधिकार के खिलाफ अधिकांश बोलने को तैयार नहीं है। जो बोलते भी हैं- वे भी अधिकार देने को तैयार नहीं होते। संसद में महिला आरक्षण बिल का टलना इसका सबसे बड़ा दृष्टान्त है।

अधिकांश पुरुष स्त्री-देह की मुक्ति या आजादी की बात करते हैं तो वे अपनी पत्नी, माँ और प्रेमिका को छोड़कर अन्य स्त्रियों की आजादी की बात करते हैं। जहाँ तक स्त्रियों की पुरुष-सत्तात्मकता से मुक्ति की बात

है, यह समाज और सरकार से भी अधिक पुरुष या स्त्री की व्यक्तिगत मानसिकता और संगठित शक्ति तथा समझ से ताल्लुक रखती है। कानून बन जाने पर भी पुरुष स्त्री की स्वायत्तता को स्वीकार कर ही लेगा, इसकी कोई गारण्टी नहीं है। भ्रूण-हत्या जारी है। शारदा एक्ट की धज्जियाँ उड़ाकर बाल-विवाह हो रहे हैं। सती-प्रथा आज भी जारी है। पाकिस्तान या दुबई में यौन-सम्बन्धों को लेकर स्त्री को पत्थरों से मारा जाना भी रुका नहीं है।

प्रश्न 13 स्त्री-पुरुष-असमानता बनाये रखने के लिए टेक्नोलॉजी ज्यादा जिम्मेदार है या धर्म? क्या समकालीन स्त्री-लेखन में इस पर विचार दिखाई देता है?

उत्तर दरअसल स्त्री-असमानता का मूल स्रोत ही धर्म है। ईसाई, इस्लाम, यहूदी, हिन्दू, बौद्ध, जैन, सिख या किसी भी धर्म में स्त्री को दोयम दर्जे का जीव माना गया है। सभी धर्मों ने पुरुष को स्त्री से दूर रहने की सलाह, हिदायत और शिक्षा दी है। सभी धर्मों ने प्रथम दृष्ट्या यह माना है कि स्रष्टा या सर्वशक्तिमान पुरुष ही होता है। ईसाई धर्म में आदम की पसली से औरत पैदा हुई। हिन्दू धर्म में स्त्री की उत्पत्ति के बारे में कुछ स्पष्ट नहीं मिलता, लेकिन उसमें सृष्टि का विस्तार स्त्री के शोषण और पुरुष के वर्चस्व पर आधारित है, जैसे ब्रह्मा का अपनी पुत्री से जबरन सम्भोग करना। धरती से सीता का पैदा होना और पुरुष-जुलम के बाद धरती में समा जाना। सिख, जैनी या बौद्ध धर्म ने स्त्री की उत्पत्ति पर कुछ कहा ही नहीं। उन्होंने प्रचलित हिन्दू धर्म के समकक्ष समानता के धर्म खड़े किये, जिसमें स्त्री-पुरुष को बराबर माना। बौद्ध धर्म छोड़कर बाकी सभी धर्म स्त्री को वर्जित क्षेत्र में मानते हैं। इस्लाम में दो स्त्रियों की गवाही एक पुरुष के बराबर मानी जाती है। इनमें से किसी भी धर्म का प्रवर्तक कोई स्त्री नहीं, पुरुष ही है। सभी धर्मों में स्त्री को पुरुष के अधीन रहने का निर्देश दिया गया है। इसलिए असली खुराफात धर्म ने ही की है, चूँकि समाज धर्म से ही चलता रहा है और विकृत होता रहा है। टेक्नोलॉजी तो

बहुत बाद की चीज है। धर्मों के सभी आडम्बर प्रायः स्त्री को ही निभाने पड़ते हैं। मुस्लिम धर्म में रोजा दोनों रखते हैं, लेकिन सबाब पुरुष को ही मिलता है। जहाँ तक सम्पत्ति के अधिकारों की बात है तो ईसाई धर्म या हिन्दू धर्म में बेटियों को सम्पत्ति नहीं दी जाती थी। कुछ वर्ष पहले भारत में एक ईसाई स्त्री ने सुप्रीम कोर्ट में केस करके स्त्री को सम्पत्ति में हिस्सेदार होने का मुकदमा जीता। इस्लाम में स्त्रियों को सम्पत्ति दी जाती है, पर बराबर-बराबर नहीं, लेकिन एक पति चार पत्नियाँ भी रख सकता है। तीन बार 'तलाक' कहकर औरत को छोड़ भी सकता है।

अरब जैसे दशों में दस-बीस पत्नियाँ रखने वाले पति की पत्नी यदि विचलित हो जाये और उसका इतर यौन-सम्बन्ध हो जाये तो उसे पत्थर खाकर मरना पड़ता है। धर्म-सत्ता पूरी की पूरी पुरुष के अधिकार में है। धर्म का आविष्कारक शायद पुरुष ही था। आदिवासी को छोड़कर विश्व के किसी धर्म का प्रमुख पैगम्बर, अवतार पुरुष ही है, स्त्री नहीं।

न्यू टेक्नोलॉजी ने रोज़गार के स्तर पर स्त्री को बेरोज़गार किया है, खासकर शारीरिक श्रम वाले रोज़गार के स्तर पर, लेकिन उसने स्त्री को मुक्त भी किया है। नई तकनीक ने तो काफी हद तक स्त्री को घरेलू काम के उबाऊपन से मुक्ति दिलायी है। किचन के नये उपकरण बनने से स्त्रियों का काम, जो वे दिन-भर बैल के जुए की तरह कन्धे पर ढोये रहती थीं, आधा हो गया है। कोई भी तकनीक लिंगभेद नहीं करती। समकालीन स्त्री-लेखन ने इस पर विचार नहीं किया, जैसा कि होना चाहिए।

अधिकांश महिलाएँ धर्मभीरु होती हैं। दलित महिला-लेखन और एक्टिविस्ट महिला-लेखन ने इस पर विचार किया। सुशीला टांकभोरे की 'स्त्री-मुखी' कविता या कहानी में, कात्यायनी की कविताओं में या खुद मेरी रचनाओं में धर्म के इस धिनौने रूप की बहुत हद तक चर्चा है। अभी इस दिशा में बहुत काम बाकी है। स्वयं स्त्री की धर्मान्धता उसे मुक्त नहीं होने देती। यदि स्त्री की धर्मान्धता उसे मुक्त नहीं होने देती। यदि स्त्री धर्म

पर खुलकर लिखे तो वह अपनी मुक्ति के साथ-साथ पुरुष-वर्चस्व को भी कम कर सकती है। आजकल सन्ध्याल आदिवासियों में भी विधवा होने पर स्त्री दूसरा ब्याह तो कर सकती है, मगर दूसरे विवाह के बाद बेटी पैदा होने पर स्त्री दूसरा ब्याह तो कर सकती है, मगर दूसरे विवाह के बाद बेटी पैदा होने पर उसे पूजा में शामिल नहीं होने दिया जाता। यह धर्म ही सिखाता है कि कन्या को वस्तु की तरह दान करो, जबकि मनुष्य को मनुष्य द्वारा दान करना अपहरण का दूसरा रूप है। तसलीमा नसरीन ने धर्म का मुकाबला किया है। दूसरी तसलीमा नसरीन पैदा नहीं हुई है, जो धर्म को चुनौती दे सके। अपने ही धर्म खिलाफ स्त्रियाँ नहीं बोलतीं, दूसरे धर्मों के प्रति वे चाहे जितना आक्रामक हों। यह आक्रामकता वे पुरुषों से सीखती हैं।

प्रश्न 14 एक महिला के रूप में ट्रेड यूनियन की राजनीति के अनुभव आपके लिए कैसे रहे? आपने ट्रेड यूनियन के पुरुष-प्रधान चरित्र की बात की थी?

उत्तर हाँ! यह सच है कि ट्रेड यूनियन पुरुष-प्रधान होती हैं—खासकर कोयला खदानों में, चूँकि वहाँ माफिया का राज ही चलता है। यहाँ मेरा सामना माफिया से हुआ पर मैं कभी भी जोखिम उठाने से नहीं डरी। मुझे घर के लोगों से प्रेरणा मिली या शुरु से ही मैं ऐसी थी— यह तो मुझे भी नहीं पता—पर मैंने कभी कुछ 'असम्भव' माना ही नहीं। मैं नेपोलियन से प्रभावित रही हूँ। जिस क्षेत्र में कोई पुरुष भी जाना पसन्द नहीं करता था। मैंने उस क्षेत्र को चुना। मैंने एक चैलेंज स्वीकार किया था। इस तरह मैं कोयला क्षेत्र की ट्रेड यूनियन में आयी, जहाँ मुझे गरीबों, दबे-कुचले लोगों, शोषितों-वंचितों से अथाह प्रेम और विश्वास मिला। महिला होने के नाते मध्यवर्गीय लोगों से मुझे नफरत मिली। वे कभी मन से एक महिला को नेता नहीं स्वीकारते। मुझे कभी सर्वहारा वर्ग के लोगों का विरोध नहीं झेलना पड़ा, लेकिन मध्यवर्गीय लोगों, चाहे नेता हों, कैडर हों या मेरे बराबर के कार्यकर्ता—का विरोध मुझे सहना पड़ा। उन्हें लगता था कि मैं केवल महिला होने के नाते अधिक महत्त्व और आदर पाती हूँ। मुझे लगता

है कि जो औरत अपने बल पर खड़ी हो सकती है, उसे मध्यवर्गीय पुरुष कभी नहीं बख़्शता। जो स्त्री पुरुष को सहारा मानकर चलना स्वीकार करे, पुरुष केवल उसे ही मान्यता देते हैं। मैं अपने सहारे, अपने बल पर लड़ती रही। मैंने उन्हें सहारा दिया, कभी सहारा लिया नहीं, साथ-सहयोग भले लिया। अकसर मेरी मुसीबतों और विरोध का यही कारण होता था। पर मैं कभी विचलित नहीं हुई।

प्रश्न 15 रमणिका जी, आप अपने दाम्पत्य और अभिरुचि के बारे में कुछ बतायें?

उत्तर हमारा प्रेम-विवाह हुआ था। यह विवाह जाति, परिवार के खिलाफ़ हुआ, इसलिए विवाह में कोई रीति-रिवाज या अनुष्ठान नहीं कराया गया। शादी से पहले भी मैं छात्र होने के बावजूद एक रंगकर्मी, कवि, कलाकार, खेल-कूद की चैम्पियन, डिबेटर तथा राजनीति में सक्रिय थी। भले मैं किसी पार्टी की कार्यकर्ता नहीं थी, लेकिन विचारधारात्मक स्तर पर गाँधी के अतिरिक्त कम्युनिस्ट विचारधारा से प्रभावित थी। मैं ईश्वर को नकार चुकी थी और मैंने सामाजिक बन्धनों से मुक्ति की जद्दोजहद अपने पिता के परिवार में ही शुरू कर दी थी।

गृहिणी बनने के बाद मेरा पहला बच्चा उमंग पैदा हुआ। मैंने दाम्पत्य जीवन के साथ-साथ अपनी अभिरुचियाँ भी जारी रखीं, साथ ही पढ़ाई भी। हाँ, राजनीतिक तौर पर मैं सक्रिय नहीं रही। बल्कि यूँ कहा जाये-कुछ अरसे के लिए मैं उन बहसों से दूर हो गयी। मैंने एम.ए. की परीक्षा 1954 में पास कर ली। इसी दौरान मेरी बच्ची शीबा का जन्म हुआ। घर में आपसी मनमुटाव भी घटते-बढ़ते रहे। 1956 में मैंने सेन्ट्रल इंस्टीट्यूट, दिल्ली से बी.एड. भी कर लिया। मैं प्रकाश (मेरे पति) के साथ रोपड़, जालन्धर, भुसावल, अजमेर, अम्बाला और फिर दिल्ली, जहाँ-जहाँ भी वे स्थानान्तरित हुए, जाती रही। मैंने अपने पापा के पास पटियाला और फरीदकोट या फिर मौसी के पास अम्बाला जाकर प्राइवेट तौर से अपनी पढ़ाई जारी रखी थी। 1956 में प्रकाश मुम्बई स्थानान्तरित होकर गये।

मैं भी गयी। वहाँ मैंने गोपीकृष्ण से कथक सीखा और अपनी नृत्य-क्षमता को बढ़ाया। फिर हम मद्रास चले गये, वहाँ मैंने भरतनाट्यम सीखा तथा तमिल भाषा बोलने का कोर्स भी पूरा किया। मद्रास से हम 1960 में धनबाद आये। अब तक मैं गृहिणी ही थी, लेकिन नृत्य और पाक कला के साथ-साथ मैंने कविता लिखना जारी रखा और उसमें काफी विकास भी हुआ। धनबाद आकर मैंने कवि-गोष्ठियों में भाग लेना आरम्भ किया और कई कवि-सम्मेलन भी आयोजित किये। यहाँ कविता के साथ-साथ मैंने राजनीति में भी सक्रिय रूप से भाग लेना शुरू किया।

1960 में मद्रास में मेरी दूसरी बच्ची तरंग पैदा हो चुकी थी और प्रकाश के विरोध के बावजूद मैंने बच्चा न होने का ऑपरेशन भी करा लिया था ताकि मैं अपना नृत्य जारी रख सकूँ। मेरे मन में सदैव एक बैलेरिना अथवा नृत्यांगना बनने का सपना पलता रहा। अभिनय में रुचि के चलते मैं फिल्म की अभिनेत्री बनने का सपना भी गाहे-बगाहे देख लिया करती थी, लेकिन ये सब सपने बचपन से गृहस्थ जीवन तक ही आया करते थे। तब तक मैं या तो अपने परिवार के लोगों से परिचित थी या अपने मित्रों से या कलाकारों से, जो अब मेरे परिचय के दायरे में शामिल हो गये थे। मित्रों की दृष्टि में सम्भवतः मैं एक युवती या स्त्री ही थी। गृहस्थ जीवन के दौरान मुझे अपनी कोई ऐसी सामाजिक भूमिका याद नहीं, जो मैंने निभायी हो। हाँ, व्यक्तिगत रूप से मैं घर में भी रुढ़ियों को तोड़ने से कभी बाज नहीं आयी। मैं सब के साथ समानता का व्यवहार करती थी पर घर या बाहर भेदभाव का कसकर विरोध ही नहीं करती थी बल्कि उसे समाप्त कराये बिना चैन से नहीं बैठती थी। शोषित वर्ग के साथ मेरा समानता और करुणा का रिश्ता ही रहा। गृहस्थ जीवन के दौरान भी मैं उन्हें समानता का दर्जा देने और दिलाने की मुहिम जोर-शोर से चलाती रही। उस दौरान किसी संगठन से जुड़ने का मौका नहीं मिला। अपनी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का प्रयास मैंने पिता और पति के घर में भी जारी रखा, जिससे मैं सदैव

घर और बाहर विवादित बनी रही। धनबाद आने के बाद मेरे सामाजिक सम्पर्कों, मित्रों की संख्या और परिचय के दायरे का विकास हुआ। रिश्ते बढ़े। राजनीतिक स्तर में भी इजाफा हुआ। मैंने धनबाद में चीन व पाकिस्तान की लड़ाई में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। नृत्य के कई शो आयोजित किये। कवि-गोष्ठियाँ और सम्मेलन कराये। झाँकियाँ निकालीं और युद्ध हेतु चन्दा जमा किया। इससे साहित्यिक, सामाजिक और राजनीतिक स्तर पर मेरी पहचान बनी। नृत्य का सपना पीछे छूट गया। कविता, समाज-सेवा और राजनीति के सपने मेरी आँखों में तैरने लगे और इन्हीं सपनों ने पहचान की ललक जगायी।

हालाँकि पहचान की लड़ाई मैं बचपन से ही घर की परम्पराओं को तोड़कर लड़ती रही। शादी के बाद भी परम्पराओं से मुक्त होकर मैंने अपनी पहचान के इस संघर्ष को कायम रखा। बचपन में भी, आजादी के पहले हुए दंगों के दौरान मैं दंगों के विरुद्ध जोखिम उठाकर डटी रही। बिना रीति-रिवाज, बिना दहेज, जाति से बाहर प्रेम-विवाह और वह भी सिविल मैरिज करना भी मेरी पहचान के संघर्ष का एक हिस्सा ही था।

धनबाद में आने के बाद इस पहचान का आयाम विस्तृत हो गया। मेरी पहचान का संघर्ष समाज-सेवा, राजनीति और साहित्य के पंख लगाकर खुले आकाश में उड़ने के लिए कटिबद्ध हो गया। वहीं से हमारे बीच, यानी प्रकाश और मुझमें यह बहस शुरू हुई कि पत्नी को बाहर जाने के लिए पति को केवल सूचना देनी चाहिए या उससे इजाजत माँगनी चाहिए। मैं इजाजत लेने को कतई तैयार न थी। मेरा मानना था कि आपस में राय तो की जा सकती है, पर परस्पर विरोध होने पर निर्णय स्त्री का अपना होना चाहिए, पति का नहीं। पति की तरह ही केवल सूचना देकर पत्नी अपना काम चला सकती है। इसी से परस्पर विवाद बढ़ा। मेरे पति प्रकाश को धनबाद से स्थानान्तरण कराकर कानपुर जाना पड़ा, क्योंकि मेरे राजनीतिक शत्रुओं का हमला प्रकाश पर होने लगा था। इस प्रकार मैं

साहित्यिक दुनिया से होते हुए सामाजिक और राजनीतिक लड़ाई में कूद गयी। मैं राजनीति से साहित्य में नहीं आयी बल्कि साहित्य के साथ-साथ समाज-सेवा का रास्ता अपनाया और समाज में बदलाव के निमित्त राजनीति में गई। तीनों प्रक्रिया साथ-साथ चलती रहीं।

मैंने राजनीतिक सत्ता को उतना जरूरी नहीं माना जितना कि संघर्ष, जनबल और संगठन को। 1968 में मैंने माण्डू विधानसभा से चुनाव लड़ा। इससे पहले धनबाद में महिलाओं और बच्चों के लिए शहर और गाँव-स्तर पर कई संस्थाएँ चलानी शुरू कीं। चुनाव के बाद भी मैंने समाज-सेवा का काम बन्द नहीं किया। मेरी रुचि जहाँ राजनीति के माध्यम से अन्याय का विरोध करने में थी, वहीं सामाजिक कार्यक्रम के माध्यम से कुछ रचनात्मक करके, समाज के हाथ में विकल्प थमाना भी था। ट्रेड यूनियन को मैंने दबे-कुचले मजदूरों के हक दिलाने का माध्यम बनाया। इसके बाद तो समस्याओं और संघर्षों के कई-कई मोर्चे खुल गये। अगर वर्षों में गिनाँ तो 1960 से सन् 2000 तक, यानी 40 वर्ष तक झारखण्ड-बिहार में इन सभी मोर्चों पर मेरी लड़ाई जारी रही। मेरा लक्ष्य सदैव यही रहा कि आदिवासी व दलित जैसी दबी-कुचली जमातें, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक स्तर पर अपनी लड़ाई स्वयं लड़ना सीखें और उन्हें मंच देने का हर सम्भव प्रयास किया। आज वे स्वयं अपनी लड़ाई लड़ने की तैयारी में हैं और लड़ भी रहे हैं। उनके लिए मेरी लड़ाई आज भी जारी है, पर अपने लेखन के माध्यम से ही। शारीरिक अस्वस्थता के कारण जमीनी आन्दोलन अब मेरे वश की बात नहीं रहा। झारखण्ड की खदानों के झोंपड़ों में बीता जीवन ही मेरा असली जीवन है, जिसने मुझे उस अनदेखे भारत से परिचित कराया, जिससे आज भी पूरा भारत या उसकी राजधानी दिल्ली अपरिचित है।

प्रश्न 16 **जीवन की किस घटना ने आपको स्त्रीवादी लेखन की प्रेरणा दी?**

उत्तर मेरा कविता-संग्रह 'खूँटे' 1980 में छपा। मुझे याद है- इसके विमोचन

समारोह में कवि शमशेर ने बहुत अच्छी टिप्पणियाँ की थीं, कथाकार और 'कादम्बिनी' के सम्पादक राजेन्द्र अवस्थी ने अध्यक्षता। यह कार्यक्रम दिल्ली में हुआ था और उस समय मेरे पिताजी भी वहाँ मौजूद थे। दरअसल, विधानसभा में एम.एल.सी. बनने या विधानसभा में चुने जाने के बाद मेरा सम्पर्क राजनीतिक पुरुषों से बहुत बढ़ा। अपने संघर्ष-क्षेत्र में मैं हजारों पुरुषों का नेतृत्व करती थी। उसमें स्त्रियाँ भी शामिल थीं, लेकिन पुरुष अधिक थे। मेरे दिशा-निर्देश पर वहाँ कुछ भी हो सकता था। विधानसभा या विधानपरिषद्, जहाँ चुनिन्दा प्रतिनिधि बैठते हैं, में चाहे सदन की अध्यक्ष औरत ही क्यों न हो, वर्चस्व पुरुषों का ही होता है। विडम्बना यह है कि सदन में औरतों या लड़कियों पर हुए अत्याचार के विरुद्ध अगर कोई पुरुष या महिला सवाल उठाते थे तो महिला होने के नाते स्त्री-सदस्या, स्त्री-प्रश्न के पक्ष में न बोलकर अपनी पार्टी, जो कि पुरुष-प्रधान ही है, के आधार पर टिप्पणी करती या चुप रहती थीं। अधिकांश पुरुष स्त्री से अन्याय करने वाले पुरुष से अपनी मित्रता, रिश्ते या सम्बन्धों को निभाते थे। ऐसी कई घटनाएँ सदन में घटी थीं।

राजनीति में मैंने स्त्रियों के प्रति पुरुषों का अपमानजनक व्यवहार देखा ही नहीं, भोगा भी है। वे लोग स्त्री को हेय नहीं बल्कि अपने लिए आरक्षित या अधिकृत वस्तु ही मानते हैं। स्त्री की सहमति की उन्हें कोई परवाह नहीं होती। उनकी अपनी इच्छा ही सर्वोपरि होती है। ऐसे ही दृष्टिकोण के शूलों से बिंधती रही हूँ मैं। हालाँकि बचपन से ही अपने सामन्ती परिवार में मैंने ऐसी बेतुकी नज़रों और सस्ती मुस्कानों को सहा और भोगा। अनेक घटनाएँ बचपन से लेकर गृहस्थ जीवन के अन्त तक मुझे सालती रहीं और मैं अपराध-बोध से त्रस्त रही, लेकिन कच्छ के आन्दोलन के बाद मैं एक नयी स्त्री बनकर निकली। मेरे भाई सत्यव्रत बेदी ने भी मेरी कई ग्रन्थियों को तोड़ने में मदद की। मेरे भीतर जमी स्त्री की हीन-भावना की परतों से उन्होंने मुझे मुक्त कराया, जिससे स्त्री के मन

में पुरुष के लिए व्याप्त पुरुष-श्रेष्ठता और उसके सुरक्षा कवच के प्रतीक की ग्रन्थि भी मेरे मन में टूटी। मैं पुरुष-श्रेष्ठता और उसके सुरक्षा कवच के प्रतीक की ग्रन्थि भी मेरे मन में टूटी। मैं पुरुष की अधीनता से मुक्त होकर उसके समकक्ष समानता के धरातल पर पहुँच गयी। हालाँकि उससे पहले भी कांग्रेस पार्टी में रहते हुए कई पुरुषों की बदसलूकियों के खिलाफ मैंने कांग्रेस के नेतृत्व से शिकायत की थी, पर हुआ कुछ नहीं। इसीलिए मैंने कांग्रेस से इस्तीफा भी दिया। मैं सोशलिस्ट पार्टी में आ गयी। वहाँ भी दो नेताओं से मेरी टन गयी। इस संघर्ष में मुझे काफी जोखिम उठाना पड़ा और मुझ पर शारीरिक हमले भी हुए। क्षेत्र में हजारों मजदूर-किसान मेरा इस हद तक साथ देते थे कि व्यक्तियों द्वारा मुझ पर किये गये हमले तुच्छ नजर आते थे।

मैं विधानपरिषद् या विधानसभा में उन हजारों लोगों का विश्वास लेकर पहुँची थी। इसी विश्वास ने मुझे एक सशक्त स्त्री बना दिया। उन पुरुषों के साथ विधानसभा में हुए मेरे द्वन्द्व, संघर्ष अथवा प्रेम व स्नेह के कटु-मधुर रिश्ते भी मेरी स्त्री-मुक्ति रचनाओं के प्रेरक बने। मैंने 'खूँटे' की कविताएँ कुछ ही दिनों में लिख डालीं। हालाँकि इनमें कई कविताएँ बहुत पहले की हैं, पर ज्यादा कविताएँ सत्तर से अस्सी के दशक की हैं। इससे पहले मेरी कविताएँ प्रेम, प्रकृति अथवा वीररस या कहीं-कहीं मृत्यु या जीवन के दर्शन आदि के गिर्द घूमी रहती थीं। सत्तर के दशक में ही दरअसल मैं जीवन्त जीवन-संघर्ष और जन से सीधे जुड़ी। अपने को डी-क्लास करके उनके झोंपड़ों में रही। उसी परिवेश में मेरे भीतर की स्त्री, एक मुक्त स्त्री बनकर उभरी और उसने अपनी शर्तों पर जीने की क्षमता हासिल कर ली। तब अपनी शर्तों पर मैं पुरुष से रिश्ता रखने लगी थी।

प्रश्न 17 आप 'सीता' और 'मौसी' उपन्यासों के माध्यम से स्त्रियों को क्या दिशा देना चाहती हैं?

उत्तर वे समाज और संगठन से जुड़कर अपनी लड़ाई लड़े और अपने फैसले खुद करना सीखें, पुरुष के दबाव या प्रभाव में आकर नहीं। अपने विवेक से प्रभावित होकर वे स्त्री-मुक्ति की लड़ाई के साथ-साथ राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक व्यवस्था तथा संस्कारों से मुक्ति की लड़ाइयाँ लड़ें और स्वालम्बी बनें। पुरुषों पर आश्रित न रहें। देश को समझें और अच्छी नागरिक भी बनें। वे केवल गृहिणी ही न बनी रहे। पत्नी और प्रेमिका के साथ-साथ एक जागरुक चैतन्य मनुष्य और सजग नागरिक भी बनें।

प्रश्न 18 'युद्धरत आम आदमी' के माध्यम से दलित और आदिवासी लेखन को सामने लाने की आपकी कोशिश आज भी जारी है। यह कोशिश आज के दिनों में किस-किस मुकाम तक पहुँची है?

उत्तर 'युद्धरत आम आदमी' के माध्यम से मैंने दरअसल हिन्दी पट्टी में दलित-साहित्य को एक राष्ट्रीय आन्दोलन बनाने की चेष्टा की है। इस पत्रिका के माध्यम से हमने गुजराती, तेलुगु, पंजाबी, मराठी, तमिल, मलयालम आदि के दलित लेखकों की रचनाएँ हिन्दी पट्टी के रुबरु रखी हैं, जिसके चलते दलित-आन्दोलन को पूरे देश में एक सूत्र में बाँधने में सुविधा हुई। इसका राष्ट्रीय स्वरूप हम प्रस्तुत कर पाए। यह अलग बात है कि हिन्दी के दलित लेखक, खासकर दिल्ली के दलित लेखक कई सिद्ध करने की मुहिम चला रहे हैं, जबकि उनका उद्देश्य समाज को दिशा देना और बदलना है। दुर्भाग्य यह है कि कुछ दलित साहित्यकार अम्बेडकर और उनके द्वारा अस्तित्व में लाये गये दलित-साहित्य के नाम को तो भुनाते हैं, लेकिन न तो वे डॉ. अम्बेडकर की विचारधारा पर अमल करने का इरादा रखते हैं और न ही उनका साहित्य दलित-आन्दोलन या साहित्य की शर्तों के अनुकूल लिखा जाता है। इसके विपरीत ऐसे कतिपय लेखक मनु की आचारसंहिता और आर.एस.एस. व उनकी हिन्दुत्ववादी सोच को हवा दे रहे हैं। वे इस सवाल पर भी एकमत नहीं हैं कि हिन्दुस्तान में राजकीय

व्यवस्था क्या हो ? समाजवादी व्यवस्था हो या पूँजीवादी व्यवस्था ? उसमें कुछ लोग तो ग्लोबलाइजेशन का भी समर्थन करते हैं ।

कुछ लोग आरक्षण को हटाकर अमेरिका की डायवर्सिटी के सिद्धान्त की माँग कर रहे हैं । वे जाति तोड़ने के बजाय जाति का उन्नयन और उसको मजबूत करने की बात कर रहे हैं । वे अन्तर्जातीय विवाह कर विरोध भी कर रहे हैं और दलित स्त्री को मनु की शुचिता जैसी आचारसंहिता में बाँधना चाहते हैं, अर्थात् वे तालिबानों की तरह औरतों का हक हड़प लेना चाहते हैं । उनकी नज़र में क्षत्रिय होने के कारण गौतम बुद्ध उनके नेता नहीं बन सकते । सन्तोष की बात यह है कि ऐसे सिरफिरे लोगों के बावजूद दलितों का एक बहुत बड़ा हिस्सा, जिसमें स्त्रियाँ भी शामिल हैं, बाबा साहेब के बताये रास्ते पर चलने को कटिबद्ध और प्रतिबद्ध है ।

प्रश्न 19 स्त्री-चेतना से आपका क्या अभिप्राय है ?

उत्तर यह विवादित प्रश्न है- सिर्फ भारत में ही नहीं, प्रायः पूरे विश्व के स्तर पर भी । औरत पितृसत्ता में पली-बढ़ी होने के कारण उससे मुक्त नहीं हो पायी है । भले कतिपय देश या समाज अथवा अपवादस्वरूप छिटपुट रूप से कुछ महिलाएँ अपने को मुक्त मानती हैं । पितृसत्ता पुरुष-प्रधान है, जो यह मानकर चलती है कि स्त्री उससे कमतर है और उसे पुरुष के नियन्त्रण में रहना है । पुरुष स्त्री की सुरक्षा की गारण्टी पुरुष को ही मानती है । जो स्त्रियाँ इस भावना से मुक्त हैं या होंगी, वे ही स्वतन्त्र होकर, कब्धे से कब्धा मिलाकर चल सकती हैं । अभी हमारे यहाँ स्त्रियाँ सही तौर पर नागरिक तक नहीं बन पायी हैं । वे सिर्फ परिवार की औरतें हैं, जिनका दायरा केवल घर-परिवार, बाल-बच्चे ही हैं । यही उनके लिए पूरा देश है । इसलिए ऐसी औरतें घर में रहते हुए न तो परिवार के शोषण से मुक्ति की चाहना कर सकती हैं और न ही आर्थिक तंगी से । जब तक उनके अपने विकास के लिए उनमें कोई सोच पैदा नहीं होगी, तब तक वे खुद भी अपनी सुरक्षा की चाह में पुरुष की गुलाम ही रहेंगी ।

प्रश्न 20 आदिवासियों की क्या प्रासंगिकता है?

उत्तर आदिवासी हिंदु नहीं है। आदिवासी जाति-पाँति नहीं मानते हैं। उनका अपना कोई धर्म ग्रंथ नहीं है। वे अपने पूर्वज को ही अपना नियन्त्रक मानते हैं। प्रकृति को माँ, सहयोगी के रूप में मानते हैं। आदिवासी प्रकृति से उतना ही लेते हैं, जितनी उन्हें जरूरत होती है और पर्यावरण की रक्षा करते हैं। प्रकृति के साथ सहजीवन की जिंदगी है उनकी। आदिवासियों की कई आस्थाएँ हैं। उनकी किसी आस्था में भगवान नहीं है, स्वर्ग व नरक नहीं है और उनकी कहानी, कथाओं व मिथकों में चमत्कार नहीं है। बल्कि एक तार्किक कल्पना है। आदिवासी समाज में स्त्री-पुरुष बराबर है। धर्म के कारण अंधविश्वास नहीं है। संस्कृति व धर्म के नाम पर दंगे नहीं होंगे।

